प्रकाशक

साहित्य निकेतन

श्रद्धानन्द पार्क, कानपूर

प्रथम आवृत्ति

जनवरी १६४२

मूल्य तीन रूपये

मुद्रक—

अवधबिहारी दीक्षित, लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, गांधीनगर, कानपुर

अनुक्रम

प्रस्तावना

विज्ञान आधुनिक सभ्यता के विकास का मूल कारण माना जाता है। विज्ञान ही के द्वारा मानव सभ्यता उन्नति पथ पर अग्रसर है। आज हम भारतीय आम तौर पर यह समझ बैठे हैं कि विज्ञान पश्चिम की देन है, पर यह ठीक नहीं। विज्ञान पश्चिमीय देशों की देन नहीं है बल्कि हमारे पूर्व पुरुषों की साधना है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व में अपना एक खास स्थान रखती है। यूनान, मिस्र तथा यूरोप के दूसरे देशों की सभ्यता से हमारी सभ्यता कहीं अधिक पुरानी है। जिस समय अन्य देश अज्ञानावस्था में थे, भारत सभ्यता के शिखर पर था। उस समय ही विज्ञान यहाँ पराकाष्ठा पर पहुंच गया था और अब से दो हज़ार वर्ष पूर्व ही गणित, ज्योतिष, रसायन, दर्शन, चिकित्सा तथा अन्य विज्ञानों के प्रकांड विद्वान् हमारे देश में अवतीर्ण हो चुके थे। इनमें आर्यभट्ट, बराहमिहिर, भास्कराचार्य नागार्जुन, रामानुज, पतञ्जलि तथा चरक एवं सुश्रुत प्रभृति के नाम बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

उस प्राचीन काल में भारतीयों ने विज्ञान सम्बन्धी जो महत्वपूर्ण कार्य किये थे, उनका क्रमबद्ध इतिहास अप्राप्य सा है। परन्तु इधर पुरातत्ववेत्ताओं तथा वैज्ञानिकों ने जो गवेषणायें की हैं उनके आधार पर यह बात भली भाँति सिद्ध हो चुकी है कि प्राचीन भारतीयों को विज्ञान की उन्नति में भी संसार में अग्रिम स्थान प्राप्त हो चुका था। प्राचीन भारतीयों की गणित और ज्योतिष सम्बन्धी श्रेष्ठता और आविष्कारिणी प्रतिभा तो संसार भर में मुक्तकण्ठ से स्वीकार की जा चुकी है। संस्कृत साहित्य के प्रमुख इतिहासकार ए० ए० मेकडानेल्ड ने अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—

विना ग्रहगत्यादि-ज्ञानं न सम्भवतीति सिद्धान्तशास्त्राध्ययनात् प्रागेव गणिताध्ययनमावश्यकम्। आर्य्यभट्ट-लल्ल-श्रीधरादिभिः कृतेऽपि गणितशास्त्रे ज्योतिषशास्त्र कमलवनग्राहोधने भुवि भास्करेणैव भास्कराचार्य्येण स्वप्रणीत-सिद्धान्तशिरोमणौ यो लीलावती-संज्ञको पाठ्यध्यायो, बीजगणितक्रामकोऽव्यक्ताध्यायश्च सन्निविष्टस्तयोरेव सर्व्वत्राऽध्ययनाऽध्यापनरूपेण बहुलप्रचारः।

अस्मिन् लीलावतीसंज्ञकपाठ्यध्याये अये! बाले! लीलावति!, बाले! बालकुरङ्गलोलनयने! इत्यादीनि पदानि दृष्ट्वा केचन मन्यन्ते जन्मकुण्डल्यां बालवैधव्ययोगं ज्ञात्वाऽविवाहितायाश्चिरकुमार्य्या लीलावतीनामिकायाः स्वकन्यायाः नाम-प्रसिद्ध्यर्थं लीलावतीतिनाम्ना ग्रन्थोऽयं भास्करेण प्रणीत इति। केचन मन्यन्ते सन्तानाऽभावेन दुःखितायाः स्वपत्न्या लीलावतीनामिकाया विनोदायेति। अत्र तु मित्र! सुवर्णगणितज्ञ! गणक! वणिग्वर! इत्यादि बहुल-सम्बोधनपदप्रयोगात् पूर्व्वोक्तमतद्वयं समीचीनं न मन्ये। डाक्टर भाउदाजी नाम्ना महोदयेन नासिकनगरसन्निधौ प्राप्तात् ताम्रफलकाद् भास्करस्य पुत्रपौत्रादय आसन् इति ज्ञायते यथा—

शाण्डिल्यवंशे कवि चक्रवर्त्ती त्रिविक्रमोऽभूत्तनयोऽस्य जातः।
यो भोजराजेन कृताभिधानो विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा॥

है। क्योंकि उसमें मोक्ष की अपेक्षा भाव स्वभाव, आयु, पुरुष, रोग आदि सृष्टि विज्ञान संबधी विषयों पर अधिक विचार किया जाता है। और इस पर से यह भी सिद्ध होता है कि अन्य दर्शनो की अपेक्षा आयुर्वेद दर्शन अधिक प्राचीन है। अन्य दर्शनों का प्रचार इसके बाद हुआ; वे अध्यात्म प्रधान है; उनका एक मात्र साध्य मोक्ष है और सृष्टि विज्ञान पर वे उतना ही विचार करते है जितना कि उनके बुद्धि-वाद के लिये आवश्यक है। हम तो यह भी कहने के लिये प्रस्तुत हैं कि भारतीय आर्ष सृष्टिविज्ञान की दृष्टि से आयुर्वेद सम्मत सृष्टिविज्ञान ही स्वीकार करने योग्य है।

उपनिषदो में भी कुछ अध्यात्म प्रधान है तो कुछ सृष्टिविज्ञान प्रधान। सृष्टिविज्ञान प्रधान उपनिषद् अधिक प्राचीन है। प्रजापति-वाद और पुरुष सूक्त, सृष्टिविज्ञानप्रधान उपनिषद् ही है जिनका कि वेदो मे उल्लेख है। इनके अतिरिक्त तीन उपनिषदो का आयुर्वेद मे उल्लेख है। इनको वातकलाकलीय, आत्रेयभद्रकाप्यीय और यज्जः पुरुषीय कहते है। इन परिषदो पर से ही आयुर्वेद दर्शन का समुचित ज्ञान हो सकता है अतः इन पर अधिक विचार करना आवश्यक है।

चरक संहितातर्गत उक्त परिषदो के काल निर्णय के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि इनका अयोजन पुनर्वसु आत्रेय के समय में और उनकी अध्यक्षता मे हुआ। पुनर्वसु आत्रेय, अग्निवेश के गुरु थे और अग्निवेश के आश्रम मे द्रोणाचार्य ने अध्ययन किया। पुनर्वसु, कृष्णात्रेय के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। व्यास ने इनको इसी नाम से संबोधित किया है। और इन परिषदों के समय वाल्हीक देश वैदिक संस्कारों से संस्कृत था।

विषय-सूची

चरित, उनकी विज्ञान साधना, अन्वेषण और आविष्कारों का सरल भाषा में रोचक और प्रामाणिक वर्णन विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत है। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में पाँच स्वर्गीय वैज्ञानिकों के तथा दूसरे खण्ड में सात वर्त्तमान वैज्ञानिकों के सचित्र जीवनचरित हैं। ये वैज्ञानिक अपनी विज्ञान साधना से अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पा चुके हैं और भारत ही नहीं कोई भी देश उन पर गर्व कर सकता है। इनमें डा० महेन्द्रलाल सरकार आधुनिक भारत में विज्ञान शिक्षा के प्रवर्तक होने के साथ ही यह अनुभव करने वाले पहले व्यक्ति थे कि देश के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग करने तथा जनता की निर्धनता दूर करने के लिए विज्ञान की शिक्षा के साथ ही मौलिक, वैज्ञानिक अनुसन्धान अनिवार्य है। आचार्य जगदीशचन्द्र बसु अपने युगप्रवर्तक आविष्कारों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले प्रथम भारतीय थे। वेतार द्वारा सन्देश भेजने में सफल होने वाले वे भारत ही नहीं समस्त संसार में प्रथम थे। उनकी गवेषणाओं के फल स्वरूप प्राणि-जगत, उद्भिजगत, यहाँ तक कि जड़ जगत में जो भेद माना जाता था, वह विलुप्त हो गया। नोबल पुरस्कार विजेता, ह्यूजेज़ और फ्रैंकलिन पदकों से सम्मानित महान प्रतिभाशाली आचार्य रामन् संसार के श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों में माने जाते हैं। सभ्य संसार के प्रायः सभी राष्ट्र उनका समुचित सम्मान करके अपने आप को गौरवान्वित कर चुके हैं। स्वर्गीय श्रीनिवास रामानुजन् और डा० गणेश प्रसाद अपने समय के संसार के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञों में थे और उनके सरीखे उत्कृष्ट गणितज्ञ भारत आज तक नहीं उत्पन्न कर सका है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय रसायन-संसार के उज्ज्वल रत्नों में हैं और भारत में आज रसायन विज्ञान की जो प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है उसका श्रेय भी आप ही को प्राप्त है। डा० मेघनाथ साहा, डा० बीरबल साहनी, प्रो० कृष्णन् और डा० भाभा अपने अपने क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पाकर रायल सोसाइटी के फैलो

वैज्ञानिकों में कालाज़ार जैसे भीषण रोग से भारतीय जनता का उद्धार करने वाले डा० सर उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी, विश्वविख्यात वयोवृद्ध इंजीनियर डा० सर मोक्षगुण्डम् विश्वेश्वरैया, भारतीय ओषधियों एवं जड़ी-बूटियों की उत्कृष्टता सिद्ध करने वाले ब्रवेट कर्नल डा० सर रामनाथ चोपड़ा, बंगलोर इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस के डाइरेक्टर डा० जे० सी० घोष, बसु विज्ञान मन्दिर के डा० देवेन्द्र मोहन बसु, युक्तप्रान्तीय शिक्षा विभाग के एसिस्टेंट डाइरेक्टर डा० नीलरत्न धर, काशी विश्वविद्यालय के डा० श्रीधर सर्वोत्तम जोशी, बम्बई रायल इंस्टिट्यूट के डा० माताप्रसाद, इंडियन लैक रिसर्च इंस्टिट्यूट के डा० एच० के० सेन, ढाका विश्वविद्यालय के बसु आयन्स्टीन स्टेटिसटिक्स प्रसिद्धि के डा० एस० एन० बसु, भूगर्भ विभाग के श्री डी० एन० वाडिया, पुरातत्व विभाग के श्री के० एन० दीक्षित, कृषि विज्ञान सम्बन्धी खोजों से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले रावसाहब विश्वनाथन, तथा आजकल अमेरिका में कार्य करने वाले डा० चन्द्रशेखर प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन वैज्ञानिकों ने स्वयं मौलिक गवेषणायें करने के साथ ही देश के असंख्य नवयुवकों को स्वतंत्र विज्ञान साधना में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया है। भारत में सैकड़ों वैज्ञानिक इनके कार्यों और उपदेशों से अनुप्राणित होकर अन्वेषण कार्य में संलग्न हैं और विज्ञान की अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवायें कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की तैयारी में इन पंक्तियों के लेखक को अनेक महानुभावों, पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं (विशेष कर विज्ञान, साइंस एंड कलचर, करैंट साइंस, कलकत्ता म्यूनिसपल गज़ट, गंगा विज्ञानांक आदि) से सहायता मिली है। पुस्तक के लिए प्रामाणिक सामग्री एकत्रित करने के लिए लेखक और उसके अनुज श्री रामनारायण कपूर बी० एस-सी० मेट् को कलकत्ता, लाहौर, दिल्ली एवं लखनऊ की कई बार यात्रायें भी

बाद लाख पैदा की जासकी है कारण कि इसकी डालियों की वृद्धि देर में होती है।

सिरिस। यह वृक्ष बहुत कर सड़कों के किनारे पाया जाता है। इस पर पीपल के समान लाख पैदा होती है। इस का रंग व दाना भी पीपल लाख के समान होता है। इस प्रकार के वृक्षों पर लाख की काश्त सुगमता से बढ़ाई जासकी है। सिरिस वृक्ष की बीहन लाख सिरिस वृक्ष पर लगाना चाहिये। किसी सिरिस वृक्ष पर एक बार लाख लगा कर फ़सल काट लेने से वह वृक्ष दो वरस बाद फिर लाख लगाने के योग्य हो जाता है।

बबूल। हिन्दुस्तान में केवल सिंध प्रान्त में बबूल वृक्ष पर लाख आप से आप उत्पन्न होती है। बिहार प्रान्त में सिंध देश से बबूल वृक्ष का बीहन लाकर लगाने से उपज अच्छी न हुई। मुख्य कारण इसका यही मालूम होता है कि बिहार प्रान्त की आब हवा सिंध देश के उपजे हुये कीड़ों के अनुकूल नहीं है।

अरहर अथवा राहर। आसाम प्रान्त के कामरूप ज़िले में अरहर पर जिसे वहां के गैरो-हिल के निवासी मिरीमाह कहते हैं लाख लगाई जाती है। गन्ने के खेतों की बांधियों पर अरहर यानी मिरीमाह के बीज बो देते हैं जब पेड़ तीन साल के होजाते हैं तो उन पर लाख लगा देते हैं। परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि अरहर का पेड़ तीन साल तक हिन्दुस्तान के अन्य प्रांतों के खेतों में नहीं रहसक्ता। कारण कि ग्रीष्म ऋतु में इतनी कड़ी धूप पड़ती है कि पेड़ सूख जाते हैं। बेर वृक्ष की बीहन लाख अरहर के पेड़ों पर रक्खी जासकी है परन्तु फ़सल अच्छी नहीं होती।

स्वच्छ न किए जायँ तो क्या दशा होगी ? इसी प्रकार यदि शरीर की स्वच्छता का कार्य किसी प्रकार रुक जाता है, तो शरीर रूपी मकान की भी वही दशा होती है। सारे शरीर पर शोथ आ जाता है। मूत्र निकलना कम हो जाता है। यूरिया इत्यादि वस्तुएँ, जो साधारणतया मूत्र के द्वारा निकला करती हैं, निकलनी बंद हो जाती है। इससे सारे शरीर में विष का संचार हो जाता है और अंत में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

किसी-किसी मनुष्य के शरीर मे दो के स्थान में एक ही वृक्क देखने मे आया है। कुछ रोगो मे भी, जैसे कि वृक्क के अर्बुद में, रोगग्रस्त वृक्क को निकालना पडता है। ऐसा करने के पूर्व इस बात की भली भाँति परीक्षा कर ली जाती है कि दूसरा वृक्क अपनी क्रिया उत्तम प्रकार से कर रहा है और कर सकता है। ऐसी अवस्थाओं में दूसरा वृक्क जो शरीर मे शेष रह जाता है, उसके आयाम मे वृद्धि हो जाती है, क्योकि उसको दो वृक्कों का काम करना पडता है। शरीर से सारा मूत्र और विषली वस्तुएँ, जो पहले दोनों वृक्को द्वारा शरीर से निकलते थे, वह अब एक ही वृक्क के द्वारा शरीर का त्याग करते है। इस कार्य की वृद्धि के कारण अंग को भी अपना आयाम बढ़ाना पडता है। अधिक काम करने के लिये अंग भी तो बडा होना चाहिए।

प्रकृति ने सारे शरीर मे यही प्रबंध रक्खा है। यदि दोनों अंगों मे से एक अंग बेकाम हो जाता है, तो दूसरा अंग तुरत ही उनका काम करने के लिये अपने शरीर को बढा देता है। फुप्फुस मे भी ऐसा होता है। कभी-कभी एक फुप्फुस को बेकाम कर देना पडता है। राजयक्ष्मा-रोग में ऐसा किया जाता है। उस समय दूसरा फुप्फुस बडा हो जाता है और वह सारे शरीर के रक्त को

चित्र नं० ९७—वृक्क, गवीनी, मूत्राशय इत्यादि।
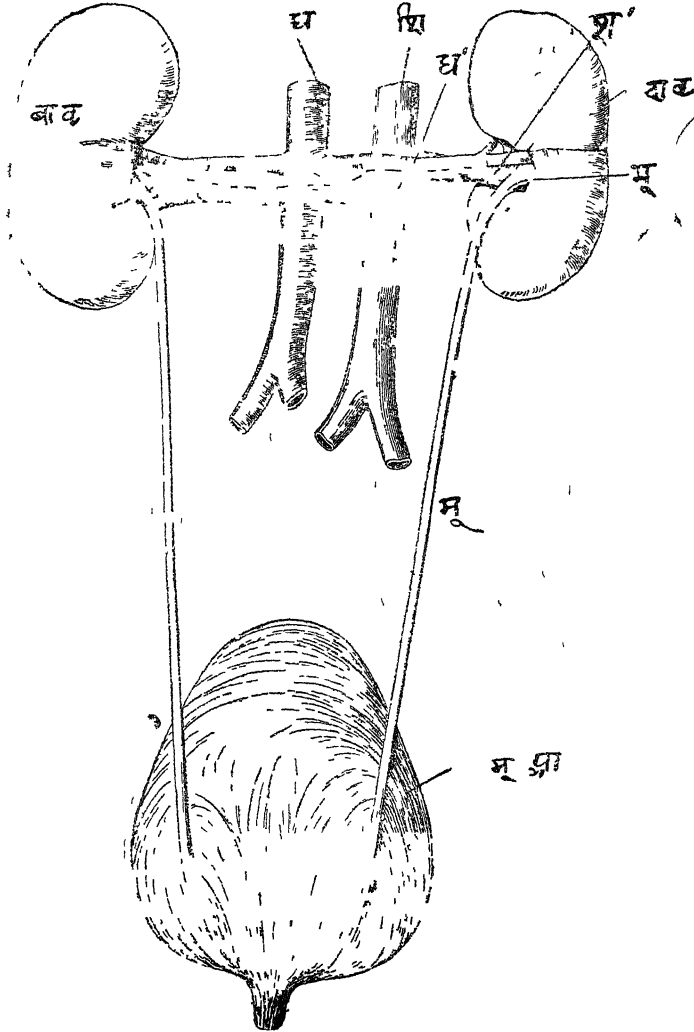
दा० वृ०—दाहना वृक्क बा० वृ०—बायाँ वृक्क ध०—बृहद् धमनी शि—महाशिरा ध०—वृक्क की धमनी शि०—वृक्क की शिरा मू०—गवीनी का मूत्राशयिक भाग मू०—गवीनी मू० आ०—मूत्राशय

करनी पड़ीं। विश्वविख्यात वैज्ञानिक डा० मेघनाथ साहा का लेखक विशेष रूप से आभारी है। उन्होंने अपने बहुमूल्य परामर्श के साथ ही आवश्यक सामग्री से भी सहायता की है। डा० श्रीनिवास कृष्णन् ने स्वर्गीय श्रीनिवास रामानुजन् तथा डा० महेन्द्रलाल सरकार के दुष्प्राप्य चित्र देकर लेखक को अनुग्रहीत किया है। डा० भाभा के जीवन-वृत्त के लिए लेखक उनके पिता तथा भाभा परिवार की मित्र मिस एवलिन गेज का कृतज्ञ है। प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टर गोरखप्रसाद ने केवल पुस्तक की भूमिका स्वरूप 'दो शब्द' लिखकर ही लेखक को प्रोत्साहित नहीं किया है, उनसे बराबर उचित और आवश्यक परामर्श भी मिलते रहे हैं। उनके अतिरिक्त लखनऊ विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार, आचार्य रामन् के शिष्य प्रो० विश्वम्भर दयाल, डा० गणेशप्रसाद के शिष्य डा० झम्मनलाल शर्मा तथा प्रो० आत्मानन्द मिश्र एम० ए० प्रभृति महानुभावों से जो सहायता मिली है उसके बिना पुस्तक का पूरा होना दुःसाध्य था। लेखक का यह प्रयास कहाँ तक सफल हुआ है इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं करेंगे।

मकर संक्रांति १९९८,
कैलाश मन्दिर, कानपुर

श्यामनारायण कपूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९०	९	पित	पित्त
१९०	१८	मुख	(मुख
१९०	२१	आभषवण	अभिषवण
१९०	२३	Enxyms	Enzyms
१९१	१९	पष्टिक	पैष्टिक
१९२	१२	रजंक	रजक
१९२	१९	अदृद	अदृष्ट
२०४	१	रक्ता	सिता, रक्ता.

शेष अशुद्धियों को कृपया तर्क से शुद्ध कर लिया जाय ।

भारतीय वैज्ञानिक

पहला खण्ड

भारतीय वैज्ञानिक
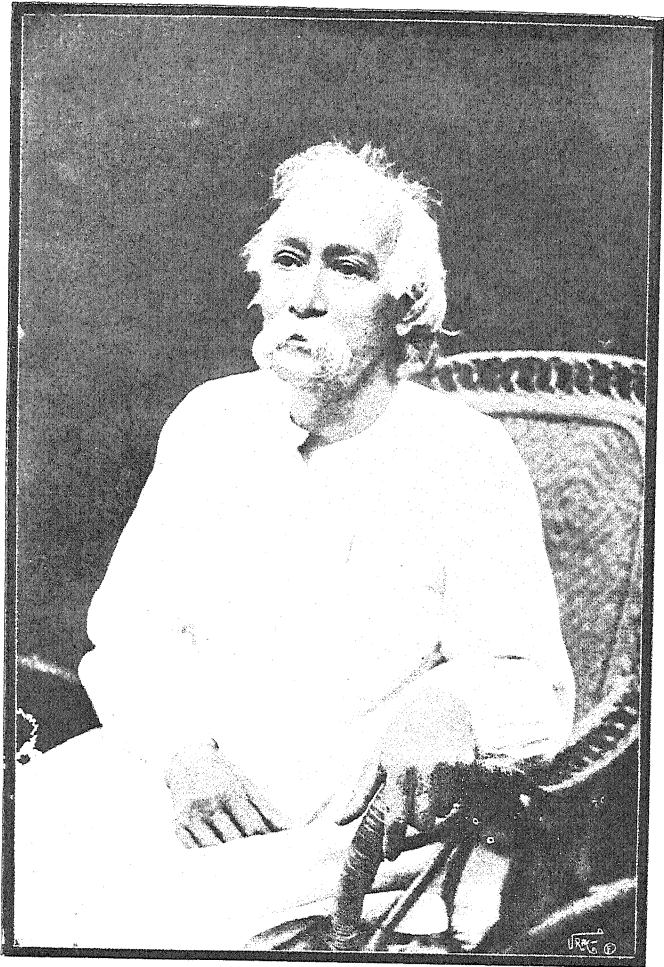
डा० महेन्द्रलाल सरकार

[१८३३ — १९०४]

बाल्यकाल और शिक्षा

बंगाल प्रांत के हावड़ा नगर के समीप पाइपाड़ा नामक एक छोटे से गांव में २ नवम्बर १८३३ ई० को इनका जन्म एक साधारण स्थिति के परिवार में हुआ। इनके पिता की आर्थिक दशा अच्छी न थी। वह खेतीबारी करते थे। बालक महेन्द्रलाल पूरे पांच साल के भी न हो पाये थे कि उनके पिता की मृत्यु हो गई, पितृ बिहीन बालक महेन्द्रलाल के लालन-पालन का भार उनके मामा महेन्द्रचन्द्र घोष ने उठाया।

होनहार बालक की प्रतिभा से प्रभावित होकर तथा उसकी ज्ञानोपार्जन की अभिरुचि देखकर श्रीयुत घोष ने भी उसकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। आरम्भ में ग्राम्य पाठशाला में मातृ भाषा 'बंगला' सिखाने का प्रबन्ध किया गया। पिता की मृत्यु को चार वर्ष भी न बीत पाये थे कि इन की माता ने भी स्वर्ग की राह ली। ९ वर्ष के बालक महेन्द्रलाल ने अनाथावस्था में, माता पिता के स्नेह से वंचित हो जाने पर भी विद्याध्ययन से निरन्तर अनुराग बनाये रखा।

शीघ्र ही इनके मामा ने इन्हें अंगरेजी भाषा की शिक्षा दिलाने के लिए श्री ठाकुरनाथ को सौंप दिया। श्री ठाकुरनाथ जी असाधारण योग्यता के पुरुष थे और उनकी योग्यता और सच्चरित्रता की छाप बालक महेन्द्रलाल के हृदय पर पूर्ण रूप से लगी। श्री ठाकुरनाथ दे की संरक्षता बालक महेन्द्रलाल के लिये ईश्वरीय देन थी। दे महाशय के प्रेम के कारण माता पिता के स्नेह का अभाव उन्हें अधिक नहीं खटका। इसी कारण वह दे महाशय के स्नेह को चिरसंगी बनाये रहे, महेन्द्रलाल

सर्वव्यापी शक्ति को विश्व का आदि मूल समझना अनुचित न होगा। वैज्ञानिकों का विशेष अनुमान है कि जिस प्रकार शक्ति अनादि काल से वर्तमान है, उसी प्रकार वस्तुमात्र का मूल परमाणु भी शक्ति के संयोग में अनादि काल से इस विश्व में व्याप्त है। शक्ति और परमाणुओं का अस्तित्व और संयोग कैसे संभव हो सका, इसको सिद्ध करना आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए एक कठिन समस्या है। जहाँ तक वैज्ञानिक अनुमान कर पाये है, उससे यही निश्चित है कि शक्ति और परमाणु दोनों ही एक दूसरे के संयोग में अनादि काल से सारे विश्व में व्याप्त रहे है। विभिन्न वस्तु-पदार्थों की उत्पत्ति एक प्रकार के परमाणुओं से होना वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा सिद्ध किया गया है। अन्यान्य वस्तु-पदार्थों का निर्माण शक्ति और परमाणुओं के संयोजक परिमाण में अन्तर पड़ने से हुआ है। उनके संयोजक परिमाण में परिवर्तन ला सकने की युक्ति प्राप्त होने पर एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में बदला जा सकता है। इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य अपने यन्त्रों के सहारे लोहा, ताँबा आदि को चाँदी, सोना आदि के रूपों में बदल सकेगा। परंतु मानव-बुद्धि का विकास अभी उस पराकाष्ठा तक नहीं हो पाया है। संभव है,

गया) में दाखिल हुए। कालेज के प्रिंसिपल और गणित के अध्यापक मि० सतलिफ परिश्रमी और मेहनती विद्यार्थियों से बड़ा प्रेम करते थे और उन्हें बड़े चाव से शिक्षा देते थे। महेन्द्रलाल जैसे अध्ययन शील और प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों का अधिक समय तक उनकी दृष्टि से छिपा रहना सम्भव न था। अस्तु शीघ्र ही महेन्द्रलाल प्रिंसपल के विश्वास-पात्र एवं स्नेहभाजन बन गये। अँग्रेज़ी और दर्शन के अध्यापक मि० जोन्स भी आपकी प्रतिभा पर मुग्ध हो गये।

अध्ययन शीलता

बाल्यकाल ही से महेन्द्रलाल को पढ़ने लिखने का बड़ा शौक़ था। अवकाश के समय वे सदैव पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त दूसरी उपयोगी पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहते थे। ज्ञानोपार्जन की उनकी यह चाह बराबर बढ़ती ही गई। स्कूल के दिनों में ही आपको विज्ञान से प्रेम उत्पन्न हो गया था। आप जहाँ कहीं भी वैज्ञानिक पुस्तक पाते उसे आद्योपान्त पढ़े बिना न छोड़ते। इन पुस्तकों का आपके जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। सन् १८४८ ई० की बात है, उस समय आप स्कूल में पढ़ते थे और १४–१५ वर्ष के रहे होंगे, मिलनर की प्रसिद्ध पुस्तक 'टूर थ्रू क्रियेशन'* आपके हाथ लग गई। उसका अध्ययन करते समय आपने उसमें सर विलियम हरशेल द्वारा वर्णित सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों का हाल पढ़ा। 'सूर्य अपने ग्रहों और नक्षत्रों सहित सदैव घूमता रहता है'। इस सूक्ष्म से सत्य कथन ने बालक महेन्द्रलाल के

---

* Millner's Tour through creation.

यह कार्तिक मास में इकट्ठा कीजाती है। कहीं कहीं वैसाखी लाख को 'रंगीन' भी कहते हैं। यह शब्द विशेष कर पलास वैसाखी लाख को इस कारण कहते हैं कि इसमें रंग का हिस्सा अधिक रहता है। वैसाखी लाख साढ़े आठ महीने में तैयार होती है और इसमें रंग का अंश काम रहता है। इस फ़सल को अन्य हानिकारक कीड़े नुक़सान नहीं पहुंचाते कारण कि इस फ़सल का अधिक भाग शरद ऋतु में व्यतीत होता है जिस समय दूसरे नुक़सान पहुंचाने वाले कीड़े सरदी के कारण सुस्त पड़े रहते हैं। कार्तिकी फ़सल साढ़े तीन महीने में तैयार हो जाती है, इस कारण इसमें रंग का हिस्सा काम रहता है। कभी कभी इस फ़सल को अन्यान्य हानिकारक कीड़ों से बड़ा नुक़सान होता है, यहां तक कि कुल फ़सल नष्ट होजाती है। इस कारण बंगाल व मध्यप्रदेश के लाख के काश्तकार इस फ़सल को बीज ही के वास्ते अधिकतर काम में लाते हैं और बाज़ार में बेचते नहीं।

प्रत्येक वृक्ष पर एक साल में एकही फ़सल प्राप्त होती है। पहिले पहिल वृक्षों को छांटना पड़ता है। लेकिन फिर इनको छांटना नहीं पड़ता कारण कि जब लाख से ढकी हुई डालियां प्रति फ़सल में काट ली जाती हैं तो वृक्ष खुद बखुद छंट जाते हैं। यदि साल में दो फ़सलें प्राप्त करना हो तो वृक्षों के दो भाग कर डालना चाहिये। पहिले भाग के वृक्षों को फ़रवरी मास में छांट कर फिर जून मास में उन पर लाख लगा देना चाहीये और उसी समय दूसरे भाग के वृक्षों को छांट देना चाहिये। फिर जब अक्टूबर मास में पहिले भाग के वृक्षों पर लाख तैयार होजावे तो उसे काट कर जून मास में छंटे हुये वृक्षों पर लगा देना चाहिये।

पेड़ों का छांटना।

वृक्षों पर लाख लगाने के पहिले यह देख लेना ज़रूरी है कि उन पर कोमल डालियां हैं या नहीं। अगर उन पर बहुतसी कोमल डालियां

ग्रंथकर्ता
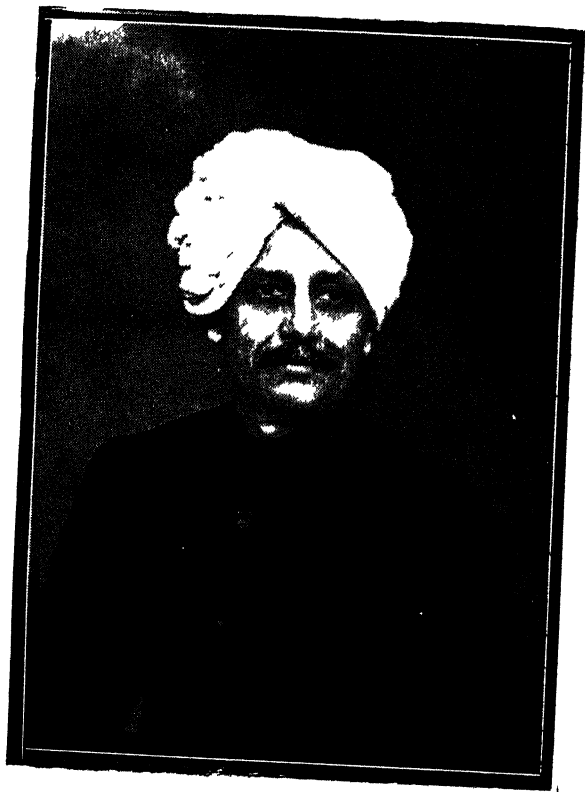
वैद्य महादेव चंद्रशेखर पाठक

न किया जा सका। अस्तु। उन्होंने उक्त कालेज छोड़ कर मेडिकल कालेज में जाने का निश्चय किया। कालेज छोड़ने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ा। प्रिंसिपल सतलिफ साहब इस बात पर बहुत नाराज़ भी हुए और इसी के कारण उन्हें अपनी सरकारी छात्र वृत्ति से भी हाथ धोना पड़ा। पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ। सरकार महोदय अपने निश्चय से डिग न सके। १८५५ ई० में उन्होंने प्रेसिडेंसी कालेज छोड़ कर मेडिकल कालेज में नाम लिखा लिया। उसी वर्ष उन का विवाह भी हो गया।

मेडिकल कालेज में

मेडिकल कालेज में भी वह शीघ्र ही सब अध्यापकों के प्रेम पात्र बन गये। उनकी प्रखर बुद्धि और अध्यवसाय से सभी अध्यापक उन से स्नेह करने लगे। इस कालेज में भी उन्होंने बहुत से पारितोषिक, पदक और छात्र वृत्तियां प्राप्त की थीं। उनकी योग्यता बनस्पति विज्ञान, औषधि विज्ञान, शल्य शास्त्र और सूति कर्म आदि सभी विषयों में समान रूप से बढ़ी चढ़ी थी। अपने पाठ्य विषय वह इतने मनोयोग पूर्वक पढ़ते थे कि चिकित्सा विज्ञान के कुछ गहन विषयों में उन्होंने अपने अध्यापकों के समकक्ष योग्यता प्राप्त कर ली थी।

एक दिन सरकार महाशय अपने एक छोटे बच्चे को कालेज अस्पताल में आँख की दवा दिलवाने ले गये। वहाँ पर डा० आर्चर पांचवें वर्ष के विद्यार्थियों को ले जाकर उन लोगों से नेत्रों की रचना, रक्षा, व्यवहार आदि के बारे में कठिन कठिन प्रश्न पूछा करते थे और उनकी योग्यता की परीक्षा लिया करते थे। उस दिन भी डा० आर्चर

अपने विद्यार्थियों सहित वहाँ मौजूद थे। उन्होंने एक विद्यार्थी से आँखों के बारे में कुछ पूछा। प्रश्न ज़रा टेढ़ा था। वह विद्यार्थी उत्तर न दे सका। महेन्द्रलाल भी वहीं निकट खड़े हुए दवा ले रहे थे। उन्हों ने भी उस सवाल को सुना, वह चुप न रह सके, और फौरन ही उस प्रश्न का ठीक ठीक जवाब दे डाला। डा० आर्चर ने उत्तर सुना और उत्तर दाता का नाम पूछा। नाम मालूम होने पर वे आश्चर्य चकित हो गये। उन्हें कभी स्वप्न में भी ध्यान न था कि एक द्वितीय वर्ष का विद्यार्थी उनके उस प्रश्न का जवाब दे सकता है। महेन्द्रलाल को अपने पास बुला कर डा० आर्चर ने और भी अधिक कठिन एवं गूढ़ प्रश्न पूछे। सभी के अत्यन्त आशा जनक उत्तर प्राप्त हुए। जवाब सुन कर डा० आर्चर बहुत खुश हुए। उस दिन से महेन्द्रलाल ने न केवल डा० आर्चर वरन् प्रिंसपल तथा अन्य प्रोफेसरों के हृदयों में भी सदा के लिए स्थान बना लिया, और कालेज में अपनी प्रतिभा के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये।

गुरु जनों की आज्ञा से और ज्येष्ठ विद्यार्थियों के अनुरोध से आपने 'नेत्र विज्ञान' पर अपने कालेज ही में कई व्याख्यान दिये। उसी वर्ष इसी विषय पर आपने बेथ्यून सोसायटी में भी एक भाषण दिया। सन् १८६० ई० में आपने मेडिकल कालेज से सम्मान पूर्वक एल० एम० एस० परीक्षा पास की। इसी वर्ष आपको एक पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ। यही आगे चल कर डा० अमृतलाल सरकार एल० एम० एस०, एफ० सी० एस०, के नाम से प्रख्यात हुए।

डा० सरकार की अद्वितीय योग्यता को देख कर उनके अध्यापकों और

हितैषियों ने उन्हें चिकित्सा विज्ञान की सर्व्वोच्च परीक्षा एम० डी० में शामिल होने की सलाह दी। तीन वर्ष के बाद १८६३ ई० में महेन्द्रलाल ने एम० डी० परीक्षा को भी प्रथम श्रेणी में पास कर लिया और कलकत्ते में डाक्टरी शुरू कर दी। एम० डी० की उपाधि और अनुपम योग्यता से आप शीघ्र ही कलकत्ते नगर भर में खूब प्रसिद्ध हो गये।

होम्योपेथी

उन्हीं दिनों डा० चक्रवर्ती के प्रयत्न से कलकत्ते में ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन की शाखा खोली गई। इस एसोसिएशन की पहली बैठक में डा० सरकार ने होम्योपेथी चिकित्सा पद्धति के खण्डन में एक अत्यन्त प्रभाव शाली भाषण दिया। तब तक यह चिकित्सा प्रणाली भारत में लोकप्रिय न हो पाई थी। जन साधारण ही नहीं बड़े बड़े डाक्टर भी इसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। इस भाषण से प्रभावित होकर उपस्थित सदस्यों ने उसी दिन आपको एसोसियेशन का उप सभापति निर्वाचित किया। उन दिनों वह होम्योपेथी चिकित्सा पद्धति के मूलतत्वों से भली भाँति परिचित न थे। अन्य डाक्टरों के समान वह भी होम्योपेथी के विरोधी थे और सम्भवत: इसी विरोध के कारण उस प्रणाली को समझने की उन्होंने चेष्टा भी न की थी। आगे चल कर वह इसी प्रणाली के ज़बरदस्त समर्थक हो गये। इस विषय की चर्चा करते हुए उन्हों ने एक स्थान पर लिखा था :—

"अपने दूसरे पेशे वालों ही की भाँति, और शायद उन से भी अधिक मैं भी होम्योपेथी चिकित्सा पद्धति का कट्टर विरोधी था। उन लोगों

ही की तरह मुझे भी इस पद्धति का ठीक ठीक ज्ञान न था। मैं जो कुछ थोड़ा बहुत जानता भी था वह इस पद्धति के विरोधियों ही से सीखा था। मुझे कभी होम्योपेथी के ग्रन्थों के अध्ययन करने की इच्छा ही न होती थी। उसकी अत्यन्त सूक्ष्म एवं स्वल्प मात्रा और समानता के नियम ने इस अनिच्छा की और भी अधिक प्रबल बना दिया था।"

थोड़े दिन बाद एक ऐसी घटना घटी कि डाक्टर साहब के विचार बिलकुल बदल गये उन्हें ऐलोपेथी चिकित्सा पद्धति में सन्देह होने लगा। यह सन्देह धीरे धीरे बढ़ कर अविश्वास के रूप में परिणत हो गया और अन्ततोगत्वा होम्योपेथी के कट्टर विरोधी डा० महेन्द्रलाल सरकार होम्योपेथी के भक्त बन गये। एक दिन आपके एक मित्र ने आपको मार्गन साहब की लिखी हुई 'फिलासफी आफ होम्योपेथी' नामक पुस्तक आलोचनार्थ दी। आपने पुस्तक को कुतूहलवश, एकाग्र चित्त होकर आदि से अन्त तक पढ़ डाला। वह पुस्तक पढ़ कर तर्क शास्त्रानुकूल वैज्ञानिक रीति से उसका खण्डन करना चाहते थे। परन्तु उसे पढ़ कर उन पर कुछ जादू सा हो गया। मार्गन के तर्कों ने उन्हें मंत्र मुग्ध सा कर दिया और वह उसे खण्डन करने की समस्त बातें भूल गये उलटे उन्हें एलोपेथी चिकित्सा प्रणाली में बहुत कुछ सन्देह हो गया। एक पुस्तक पढ़ने से उन्हें शान्ति प्राप्त न हुई। लन्दन और न्यूयार्क से होम्योपेथी के कई बढ़िया बढ़िया ग्रन्थ मँगाकर पढ़ डाले और शीघ्र ही होम्योंपेथी के पण्डित बन गये और उसकी व्यवहारिक परीक्षा करने का विचार करने लगे।

इन्हीं दिनों कलकत्ते के सुप्रसिद्ध लखपती डाक्टर राजेन्द्रलाल दत्त

होम्योपेथी पद्धति के अनुसार चिकित्सा कर रहे थे। स्वयं चिकित्सा करने के साथ ही वह उसका प्रचार भी करना चाहते थे। यहाँ डाक्टर राजेन्द्र लाल दत्त सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें बंगाल क्या सारे भारत में होम्योपेथी चिकित्सा प्रणाली के प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। डा० दत्त, महेन्द्रलाल सरकार का हाल सुन कर बहुत खुश हुए और तुरन्त आपसे मिलने दौड़े आये और उनकी सहायता करने की इच्छा प्रकट की। डा० सरकार सिद्धान्तों के पण्डित हो ही चुके थे, कुछ रोगियों पर उन सिद्धान्तों की परीक्षा करना चाहते थे। डा० दत्त ने उनको इस परीक्षा में पूरी सहायता पहुंचाई। डा० सरकार को अब होम्योपेथी की सच्चाई में पूर्णतः विश्वास हो गया और धीरे धीरे उन्होंने एलोपेथी को बिलकुल ही छोड़ दिया। ऐसा करने से उन्हें बहुत काफी हानि भी उठानी पड़ी। उन दिनों लोग होम्योपेथी पर बिलकुल ही विश्वास न करते थे। जहाँ पहिले डाक्टर साहब के पास रोगियों की भीड़ लगी रहती थी, दो-चार रोगियों का पहुंचना भी मुहाल हो गया और जो किसी तरह पहुंच भी जाते वे भी पुरानी दवा ही मांगते। परन्तु डाक्टर साहब अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। उन्हें विश्वास था कि वह ठीक रास्ते पर चल रहे हैं और अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। होम्योपेथी के व्यवहार से वह आर्थिक कठिनाइयों में फँस गये परन्तु फिर भी बराबर प्रसन्न चित्त बने रहते और एकाग्र मन से अपने काम में लगे रहते। उनकी कर्तव्य निष्ठा देख कर फिर रोगियों के झुन्ड के झुन्ड उनके पास चिकित्सा के लिए आने लगे, और डाक्टर साहब का यश और कीर्ति फिर से चारों ओर फैल गई।

सन् १८६७ ई० में मेडिकल एसोसियेशन की बैठक में आपने एक भाषण और दिया। यह भाषण होम्योपेथी के विरोध में न होकर उसके पक्ष में था। एसोसिएशन के सदस्य होम्योपेथी के पक्ष में कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वे डाक्टर साहब का भाषण सुन कर बहुत क्रुद्ध हुए। लाचार होकर डाक्टर साहब को एसोसियेशन छोड़ देना पड़ा। उन दिनों की स्थिति का वर्णन करते हुए डाक्टर सरकार ने स्वयं लिखा है:—

"इस अधिवेशन के बाद से मेरी गणना विजातीयों में होने लगी। लोगों में चारों ओर गरम अफवाह फैल गई कि मेरा दिमाग़ खराब हो गया है। मैंने संसार की अत्यन्त गन्दी चिकित्सा पद्धति को ग्रहण कर लिया है। धीरे धीरे मेरे सब रोगियों ने मेरे पास आना छोड़ दिया। छै मास तक मेरे पास एक भी रोगी नहीं आया। आमदनी बिलकुल बन्द हो गई। जो लोग मुझ से मुफ्त दवा पाते थे अथवा मुझ से सलाह मशविरा लिया करते थे, मेरे पास केवल पुरानी दवा लेने आते थे। मेरी ऐसी दशा देख कर मेरे मित्रों ने मुझे पुरानी पद्धति का अनुकरण करने की सलाह दी। परन्तु मैं तो निश्चय कर चुका था कि चाहे डाक्टरी करना छोड़ दूं पर सत्य मार्ग से विचलित नहीं हो सकता।" इन कठिनाइयों से डाक्टर साहब की सत्य निष्ठा और ईश्वर भक्ति और भी अधिक बढ़ गई।

विज्ञान प्रेम

डाक्टर साहब के विज्ञान प्रेम का उल्लेख कई स्थलों पर किया जा चुका है। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने कोई महत्वपूर्ण

वैज्ञानिक शोध अथवा आविष्कार किया था। वास्तव में उन्होंने विज्ञान संसार के सम्मुख न तो कोई नवीन सिद्धान्त ही रक्खा और न कभी कोई नवीन तत्व ही खोजने का प्रयत्न किया। वह वैज्ञानिक अनुशीलक भी न थे। वह विज्ञान की अद्भुत शक्ति पर मुग्ध अवश्य थे और इसी लिए उससे प्रेम करते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि पाश्चात्य देशों की उन्नति का मूल विज्ञान की उपासना ही है। अतः वह भारत में भी विज्ञान का समुचित प्रचार चाहते थे। इसके लिए उन्होंने समुचित प्रयत्न भी किये। वास्तव में डाक्टर सरकार की प्रेरणा ही से भारत में विज्ञान की शिक्षा का सूत्रपात हुआ। आज भारत में आधुनिक विज्ञान की शिक्षा का जो समुचित प्रबन्ध देख पड़ता है वह आप ही के सदु-द्योगों का फल है।

विज्ञान का मुख्य उद्देश्य रहस्यमय एवं गूढ़ तत्वों की तह में पहुंच कर सत्य की खोज करना है। डाक्टर साहब का विज्ञान प्रेम वास्तव में सत्य के अनुसन्धान की अभिलाषा थी। वह विज्ञान का अध्ययन केवल विज्ञान सीखने की अभिलाषा से न करते थे। उनका विश्वास था कि किसी भी विज्ञान अथवा शास्त्र का उद्देश्य केवल उस विज्ञान अथवा शास्त्र के परिज्ञान ही तक परिमित नहीं है। उसका उद्देश्य अत्यन्त गूढ़ होता है। विज्ञान अथवा शास्त्र का अध्ययन मनुष्य को सत्य के ज्ञान की ओर ले जाता है। सत्य का जितना अधिक ज्ञान होता जाता है, मनुष्य की मानसिक वृत्तियो का विकास भी उतना ही अधिक होता जाता है। सत्य का पूर्ण ज्ञान मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाता है। डाक्टर साहब को पूर्ण विश्वास हो गया था कि केवल विज्ञान ही के अध्ययन

आकर्षण-शक्ति इतनी क्षीण हो जायगी कि यह वायुमण्डल को अपने आकर्षण में नहीं रख सकेगी । भाप पदार्थ को अपने आकर्षण में रखने के लिए किसी ग्रह का व्यास ३००० मील से अधिक होना आवश्यक है । चन्द्र, जिसका व्यास ३००० मील से कम है, वायुमण्डल को अपने आकर्षण में रखने के लिए असमर्थ सिद्ध हुआ है । वायुमण्डल का दबाव न होने के कारण बर्फ भी बहुत जल्द भाप के रूप में परिणत हो जाती है । इस कारण चन्द्रमा जल और वायु दोनों से रहित एक अति ठंडा और ठोस पदार्थ है, जो बराबर अधिकाधिक ठंडा होता जा रहा है । वह सूर्य से प्रकाश पाने पर प्रकाशित होता है, इस कारण उससे शीतल प्रकाश मिलता है ।

प्रकृति के नियमानुसार इस विश्व का निर्माण किस प्रकार हुआ, इसका संक्षेप में वर्णन किया गया । विश्व-निर्माण के विषय में यह अनुमान करना कि यह आदि से ही ऐसा है और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा, बुद्धि-संगत नहीं मालूम पड़ता । एक विशेष चैतन्य ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व में विश्वास कर, सृष्टि-निर्माण उसकी इच्छा से होना मान, उसमें विश्वास करने में भी सार्थकता नहीं झलकती । सृष्टि-निर्माण अवश्य ही प्रकृति में व्याप्त

यह सेल का भौतिक और रासायनिक स्वरूप हुआ। किंतु सबसे आश्चर्यजनक जो बात है, वह सेल की शक्तियाँ हैं। आठ व दस निर्जीव जड़-वस्तुओ का संग्रह सेल उन सब शक्तियो का समूह है, जो जड़ को चेतन से व निर्जीव को जीवित से भिन्न करती हैं। सेल मे क्रिया करने की शक्ति है, वह गतिशक्ति-संपन्न है। वह भोजन का आत्मीकरण कर सकता है। वृद्धि उसका गुण है। हमारी भाँति वह भी शुद्ध वायु को ग्रहण करता है और अशुद्ध वायु को निकालता है। यह सब क्रियाएँ मृतक व जड़ पदार्थों मे नही होती। भिन्न-भिन्न क्रियाओ मे सेल के परमाणु बराबर टूटते रहते हैं। अर्थात् उनमे ह्रास होता रहता है, किंतु सेल मे यह शक्ति है कि वह उनको फिर बना लेता है। वृद्धि के काल मे विशेषकर सेलो का बनना अधिक होता है और ह्रास कम होता है जिसका परिणाम वृद्धि है। यह सेल को, अथवा यो कहना चाहिये कि प्रोटोप्लाज्म की एक अद्भुत शक्ति है कि वह साधारण जड भोजन पदार्थ ग्रहण करके अपने नष्ट भाग को फिर पूर्ववत् बना लेता है। अथवा अपनी संख्या अधिक बढा लेते हैं। अर्थात् नवीन सेल व प्रोटोप्लाज्म बन जाता है। सेल शर्करा से कार्बन ले सकता है, वसा व चर्बी घृत-तैल इत्यादि से कार्बन और हाइड्रोजन ले सकता है, दूध से नाइट्रोजन ग्रहण कर सकता है और अपनी अद्भुत शक्ति से इन जड वस्तुओं से जीवन के मूल प्रोटोप्लाज्म को बना लेता है।

जैसा ऊपर लिखे हुए वर्णन से विदित है। सेल एक प्रोटोप्लाज्म के समूह का नाम है, जिसमें केंद्र भी स्थित रहता है। जैसे कागज़ के एक लिफाफ़े मे कोई और वस्तु भरी जा सकती है, इसी प्रकार सेल के आवरण के भीतर प्रोटोप्लाज्म और केंद्र भरे रहते हैं। किंतु मुख्य वस्तु प्रोटोप्लाज्म ही है। केंद्र भी एक प्रकार के प्रोटोप्लाज्म

अच्छा प्रभाव पड़ा। गवर्नर की सहायता से रुपया जमा करना कुछ आसान हो गया। छै वर्ष के अनवरत परिश्रम के बाद डाक्टर साहब अपने उद्देश्य में सफल हुए और १५ जनवरी १८७६ ई० को बंगाल के छोटे लाट द्वारा भारतीय विज्ञान परिषद* की स्थापना हो गई। यह दिवस भारत वर्ष के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

डाक्टर सरकार का कहना था कि आधुनिक सभ्यता और उसकी उन्नति की कुंजी विज्ञान ही है। अस्तु। वह भारत में भी विज्ञान का समुचित प्रचार करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि विज्ञान का प्रचार हो जाने पर भारतीय विद्वान पाश्चात्य वैज्ञानिकों के आविष्कारों और अनुसन्धानों का लाभ उठाने के साथ ही उनमें अपने आविष्कार और अनुसन्धान जोड़कर विज्ञान के इतिहास में भारत वर्ष के नाम को भी चिरस्थायी बना देंगे और अपने देश को गौरवान्वित करेंगे। डाक्टर साहब के उपरोक्त विचार आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

डाक्टर सरकार आपने भाषणों द्वारा जनता को बराबर वैज्ञानिक विषयों में अभिरुचि लेने को उत्साहित करते रहते थे। अन्य देशों के उदाहरणों एवं अपने देश के प्राचीन गौरव के दृष्टान्त देकर वह अपने भाषणों को रोचक और उत्साहवर्धक बना देते थे। गूढ़ से गूढ़ वैज्ञानिक विषयों को अत्यन्त सरलतापूर्वक समझा देना उनका स्वाभाविक गुण था। उनके वैज्ञानिक भाषणों को सुन कर और वैज्ञानिक तत्वों के समझाने के ढंग को देख कर अकसर लोग कहा करते थे कि वह किसी विज्ञानशाला के

---

* Indian Science Association

लाख लगाने के पहिले की तैयारियां।

लाख का काम शुरू करने में इस बात का जानना अत्यावश्यक है कि लाख के बच्चे किस स्थान में किस तारीख़ को निकलते हैं। जैसा हम ऊपर कह आये हैं उत्तरीय हिन्दुस्तान में इनके निकलने की तारीख़ में स्थानानुसार फेरफार हुआ करता है। इस कारण किसी स्थान में बच्चों के निकलने की तिथि या तारीख़ जानने का सहल उपाय यही है कि प्रथम बार कुछ वृक्षों पर लाख लगाकर बैसाखी (मई-जून) फ़सल में मई से लेकर अगस्त तक बच्चों का निकलना उन वृक्षों पर देखा जावे और कार्तिकी (सितम्बर-अक्टूबर) फ़सल में सितम्बर से लेकर जनवरी तक बच्चों का निकलना देखा जावे। एक बार निश्चय होजाने से फिर दूसरे सालों में इनके निकलने में बहुत कम अन्तर पाया जावेगा, अर्थात् यदि किसी स्थान में १६ जून को बैसाखी फ़सल में और ५ अक्टूबर को कार्तिकी फ़सल में बच्चे निकलते पाये जावेंगे तो आइन्दे सालों में बच्चे या तो इन्हीं तारीखों को निकलेंगे या इनसे ६ या ७ दिन पहिले या पीछे इससे ज्यादा अन्तर कभी न पड़ेगा। इस बात का निश्चय होजाने उपरान्त लाख से ढकी हुई डालियों को बच्चों के निकलने के १२ दिन से लेकर १५ दिन पहिले काट लेना उचित है यदि बहुत से वृक्षों पर लाख लगाना हो या बीज—जिसे बीहन भी कहते हैं—एक स्थान से दूसरे स्थान को रेल या डाक द्वारा भेजना हो। यदि कम वृक्षों पर लाख लगाना हो तो बच्चे निकलने के १२ या १५ दिन पहिले बीहन काटने की आवश्यकता नहीं। इस दशा में केवल ५ या ७ दिन पहिले काट लेना बस होगा। जब लाख भली भांति पक कर तैयार होगई हो और बच्चों के निकलने में केवल एक हफ़्ता बाक़ी रह गया हो—यदि थोड़े ही वृक्षों पर लाख लगाना हो—तो कुली हाथ में तेज़, लम्बा सीधा चाकू (आकृति १ प्लेट ३) लेकर वृक्ष पर चढ़ कर (आकृति ८ प्लेट ८) लाख से ढकी हुई डालियों

कृष्णन सरीखे वैज्ञानिक इसी संस्था में सन्धान कार्य करके भारत की कीर्ति पताका देश देशान्तरों में भी फैला रहे हैं।

विज्ञान परिषत् डा० सरकार ही के प्रयत्नों द्वारा पालित पोषित हुई। वही उसके जन्मदाता, संयोजक, व्यवस्थापक और अवैतनिक प्रधान मंत्री थे। अवकाश मिलने पर वह स्वयं ही उसमें वैज्ञानिक विषयों पर रोचक व्याख्यान भी दिया करते थे। भारतीयों की शोचनीय दशा और विज्ञान की अपेक्षा देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता था। जब वह और देशों के वैज्ञानिकों के गौरव पूर्ण वर्णन पढ़ते और उनमें भारतीयों का नाम न पाते तब मन ही मन बहुत लज्जित होते। वह सदैव इसी प्रयत्न में लगे रहते कि भारतीय युवक शीघ्र ही विज्ञान का अध्ययन कर अपने महत्वपूर्ण आविष्कारों और अनुसन्धानों द्वारा संसार को चमत्कृत कर दें। एक वार भाषण देते हुए इसी सम्बन्ध में उन्होंने कहा भी था :—

"विभिन्न कारणों से इस समय भारतीय विज्ञान संसार से विलग रहने लगे हैं। ऐसा मलूम होता है मानों विज्ञान संसार में उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। सारा का सारा देश बंजर पड़ा है। क्या सदैव यही दशा बनी रहेगी? क्या भारतीय युवक विज्ञान के चमत्कारों को सदैव उसी दृष्टि से देखा करेंगे जैसे बाजीगर के तमाशे को……
………।"

अस्तु डाक्टर साहब ने भारतीय-युवकों में विज्ञान के प्रति प्रेम-उत्पन्न कराने के लिए यथा सम्भव सभी प्रयत्न किये। डाक्टर सरकार ही के प्रयत्नों का फल है कि भारतीय युवकों में एक वार फिर विज्ञान

और उसके आत्मीकरण करने मे बहुत से रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जो बहुत ही गूढ हैं।

प्रोटोप्लाज्म न केवल भोजन करके स्वय ही वृद्धि को प्राप्त होता है, किंतु इसमे उत्पत्ति की भी शक्ति है। प्रकृति ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि उसने जिन श्रेणियों, जातियो व वंशो का निर्माण किया है, वे किसी भाँति नष्ट न होने पावे। यह प्रकृति का पहला नियम है कि वह सब प्रकार से निर्मित जातियो का सरक्षण करती है। एक छोटे से छोटा जीव जैसे अमीबा भी सतानोत्पत्ति करता है। उससे भी छोटे जीव जैसे बहुत से रोगोत्पादक जीवाणुओ मे भी उत्पत्ति होती है। ऊँची श्रेणी और नीची श्रेणियो की उत्पत्ति विधि मे अतर है। नीची श्रेणियो मे, जैसे कि अमीबा, स्त्री-पुरुष का कोई भेद नही होता, क्योकि वहाँ सारे कार्य एक ही सेल द्वारा पूरे होते है। उत्पत्ति होते समय सेल के आवरण मे एक स्थान पर हलका सा गढा हो जाता है। यह गढा धीरे-धीरे सेल के चारो ओर फैलता है। इस प्रकार कुछ समय मे सेल के चारो ओर एक गहरी लकीर बन जाती है, जो समय पाकर और गहरी होती चली जाती है। इसी समय केंद्र कुछ लबा होकर दो भागो मे विभाजित हो जाता है। अत मे एक केंद्र के स्थान मे दो केंद्र हो जाते हैं। आवरण मे जो गहरी लकीर पड गई थी, वह और गहरी हो जाती है। यहाँ तक कि दोनो ओर की लकीरे आपस मे मिल जाती हैं। इस प्रकार एक सेल के दो सेल हो जाते हैं। कुछ समय तक यह दोनो सेल आपस मे जुडे रहते हैं। अंत मे दोनो अलग होकर अपना-अपना जीवन स्वतत्रता से व्यतीत करते हैं।

ऊँची श्रेणी के सदस्यो मे उत्पत्ति भिन्न प्रकार से होती है। यहाँ मैथुनी सृष्टि होती है। स्त्री और पुरुष दोनो भिन्न होते है। स्त्री

जब दूसरे दिन तीसरे पहर वह फिर समाचार पत्र-कार्यालय गया तो क्या देखता है कि लड़कों के बीच में खड़ा हुआ अमरनाथ डींगें मार रहा है कि कल मैंने बात-की बात में छः दरजन अखबार बेच डाले फिर अमरनाथ ने सुरेश की ओर पलट कर कहा कि इस बुद्धू ने सारा रुपया खो दिया, जरा सा झूठ बोलने से डर गया। सारे लड़के सुरेश पर हँसने लगे। यह बात सुरेश को बहुत बुरी लगी, पर करता क्या वह एक, और ये इतने। उसके आँसू टपकने लगे। इस पर लड़के और भी ठट्ठे मार-मार कर चिल्लाने लगे-"रोतड़िया, है, रोतड़िया, डरपोक कहीं का . . . . , . सुरेश की सिसकियाँ बंध गईं। लड़कों ने उसे बुरी तरह घेर लिया और लगे तरह-तरह से छेड़ने और चिढ़ाने।

इतने में उधर एक भला आदमी आ निकला और लड़कों की भीड़ को चीरता हुआ कार्यालय में जाने लगा कि उसकी दृष्टि रोते हुए सुरेश पर जा पड़ी। वह रुक गया और फिर सुरेश के पास जा कर बोला, "क्या हुआ, भई?"

लड़कों में सन्नाटा छा गया। सब की आँखें उस व्यक्ति की ओर उठ गईं। उनमें से एक शरारत से बोल उठा, "साहब यह बहुत सच्चा लड़का है हम सब इसे इसी बात की शाबाशी दे रहे थे कि रोने लगा।"

उस व्यक्ति ने इन शैतानों की ओर घूर कर देखा। फिर सुरेश को अलग ले जा कर पूछने लगा—"क्या हुआ बेटा? तुम बताओ।"

सुरेश ने सुबकते हुए आरम्भ से अन्त तक सारी बात कह सुनाई।

"शाबाश बच्चे"—प्रसन्न होकर उस सज्जन ने कहा, "तुमने बहुत ही अच्छा किया कि झूठ नहीं बोला।"

श्री रामदास शहर के बहुत बड़े कारबारी आदमी थे पर उनके हृदय में दया तो कूट-कूट कर भरी थी और वह सच्चाई और ईमानदारी पर जान देते थे। वह मन ही मन कुछ निश्चय करके बोले, "ठीक है, हमें तुम्हारे ही जैसा लड़का चाहिए था, हम बहुत दिन से तुम जैसे सच्चे और ईमानदार लड़के की खोज में थे, तुम काम करोगे, न?"

सुरेश ने आश्चर्य और प्रसन्नता के मिले जुले भाव से कहा, "ज-जी—जी हाँ।" उसकी आँखों से कृतज्ञता झाँक रही थी।

एक सप्ताह बाद सुरेश ने अपना नया काम आरम्भ कर दिया। निस्सन्देह झूठ न बोलने के कारण उसका सब रुपया जाता था, परन्तु उसे अपनी सच्चाई और ईमानदारी का फल मिल गया। सच्चे बच्चे बड़े होकर भी सच बोलते हैं—टेढ़ी डाल बढ़कर भी टेढ़ी ही रहती है।

और रामन् महोदय को पाकर इस संस्था की चिरवांछित अभिलाषायें पूर्ण हो गईं! रामन् महोदय के सहयोग से संस्था में एक नवीन जागृति और स्फूर्ति का जन्म हुआ और संस्था में अनुसन्धान संबंधी कार्य आरम्भ हो गया। आपकी खोजों के द्वारा यह समिति विदेशों में भी काफी प्रसिद्ध हो गई, और इसकी गणना संसार की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं में की जाने लगी।

१६१६ में डा० अमृतलाल सरकार की मृत्यु हो जाने पर प्रो० रामन् महोदय ने इस संस्था के अवैतनिक मंत्री का पद ग्रहण किया। उस समय से भारत के कोने कोने से विद्यार्थी और शिक्षक इस संस्था में में आकर वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य में जुटने लगे, और अनुसन्धान कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। संस्था का कार्य विवरण अब बुलेटिनों में प्रकाशित न होकर एक स्वतंत्र पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगा। बाद में यही पत्रिका इंडियन जर्नल आफ फिज़िक्स* के नाम से प्रख्यात हुई। रामन् महोदय की 'रामन् प्रभाव' सम्बन्धी खोज—जिस पर बाद में उन्हें संसार प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया—का सविस्तर विवरण सर्वप्रथम इसी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

यह संस्था तो केवल वैज्ञानिक शिक्षा और अनुशीलन आदि ही के लिए थी। इसकी देखा देखी कलकत्ते में शीघ्र ही कुछ ऐसी संस्थाएं भी स्थापित हो गईं जहां विद्यार्थियों को शिल्पकला और इंजीनियरी आदि की भी शिक्षा दी जाने लगी। और अब तो देश में अनेक महत्वपूर्ण अन्वेषण शालायें काम कर रही हैं।

---

* Indian Journal of Physics.

सरकार द्वारा सम्मानित

डाक्टर सरकार अपनी निःस्वार्थ सेवाओं से जनता और सरकार दोनों ही के प्रियपात्र हो गये थे। तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन ने उनकी योग्यता पर प्रसन्न होकर उनको 'डाक्टर आफला' की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया कुछ समय के बाद वह आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाये गये। उन दिनों आज कल की तरह आनरेरी मजिस्ट्रेटों की भरमार न थी। आनरेरी मजिस्ट्रेटों को बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु डाक्टर सरकार की सेवाओं को देखते हुए यह सम्मान नहीं के बराबर था। अस्तु शीघ्र ही वह बंगाल प्रान्त की सरकारी कौंसिल के सदस्य भी नामज़द किये गये। भारत सरकार ने भी उन्हें सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिंडीकेट के सदस्य भी बनाये गये। तत्कालीन प्रायः सभी प्रमुख प्रमुख सभा सोसाइटियों के वे सम्मानित सदस्य थे।

डाक्टर साहब स्वभाव ही से बड़े नम्र थे। आत्मश्लाघा उन्हें छू तक न गई थी। जब कभी वह किसी महत्वपूर्ण विषय का पक्ष ग्रहण करते, इस बात के लिये बराबर चिन्तित रहते थे कि उनका बड़प्पन उनके उद्देश्य के महत्व को छिपा न दे। वह सदैव अपने उद्देश्य को सम्मुख रख कर काम करते थे। उनका कहना था कि दो बातें एक साथ ही सिद्ध नहीं हो सकतीं। वह उद्देश्य सिद्धि को प्रमुख स्थान देते थे और अपने यश एवं भलाई को गौण। विज्ञान के प्रचार और हित के लिए वे बिलकुल निस्स्वार्थ भाव से कार्य करते थे। विजयानगर प्रयोगशाला की स्थापना के अवसर पर वाइसराय तथा अन्य गण्यमान्य

सज्जनों की उपस्थिति में आपने जो भाषण दिया था उससे आपकी नम्रता पर अच्छा प्रकाश प्रकाश पड़ता है:—

'मैं विद्वान नहीं हूं। मुझे ज्ञानोपार्जन की पिपासा अवश्य है। अध्ययन करने में मुझे विचित्र आनन्द प्राप्त होता है और उत्साह का अनुभव होता है। इस आनन्द और उत्साह का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। हां यह इच्छा अवश्य होती है कि मेरे दूसरे साथी भी इस आनन्द का अनुभव करें।'

१८६१ ई० में वह इन्फ्लुएंजा से पीड़ित हुए, इस रोग का उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर हुआ और वह सदा के लिए रोगी बन गये। परन्तु उस रुग्णावस्था में भी वह बराबर अपने काम किया करते। अधिक कमज़ोर हो जाने पर वह अपना अधिकांश समय घर पर ही बिताने लगे थे। उन दिनों उनका अधिकांश समय लेख लिखने और लिखवाने ही में खर्च होता था। १८६६ ई० में वह फिर बीमार पड़े। इस बीमारी से उनको जन्म भर छुटकारा न मिला।

सन् १६०४ में बड़े धूमधाम से उनकी ७० वीं वर्ष गांठ मनाई गई। उस अवसर पर उन्होंने अपने सब इष्टमित्रों को भली भांति समझा कर बतला दिया कि उनका अन्त काल आ गया है और उन्हें सालभर पूरा करना भी मुश्किल हो जायगा। और हुआ भी ऐसा ही १६०४ में आपकी मृत्यु हो गई। मृत्यु शैय्या पर पड़े पड़े आपने अपने मित्रों और सम्बन्धियों को बुलाकर केवल इतना ही कहा 'ईश्वर और धर्म में विश्वास रखना।'

महान गणितज्ञ

श्री निवास रामानुजन् एफ० आर० एस०

(१८८७-१९२०)

श्री निवास रामानुजन् की गणना संसार के उन थोड़े से महापुरुषों में हैं जिनका जीवन अलौकिक प्रतिभा और चमत्कार से परिपूर्ण होता है। वह भारत ही नहीं वरन् समस्त संसार की उन थोड़ी सी महान् आत्माओं में से हैं जिनके कार्य संसार में युगान्तर उपस्थित कर देते हैं। और जिनका नाम विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। छोटी ही आयु में संसार को चमत्कृत कर देने वाली आत्माएं बहुत कम दिखलाई पड़ती हैं। इधर बहुत दिनों से भारत क्या समस्त संसार में रामानुजन् के टक्कर के महापुरुष ने जन्म न लिया था। २७ वर्ष ही की अवस्था में उन्होंने गणित विज्ञान सम्बन्धी अत्यन्त प्रौढ़ सिद्धान्त स्थापित कर दिये थे। उन के सिद्धान्तों का वर्णन करते समय सुप्रसिद्ध गणित विशारद प्रो० हार्डी ने एक स्थल पर कहा था:—

'यह अत्यन्त विस्मय जनक प्रतीत होता है कि श्री निवास रामानुजन् ने इतनी छोटी अवस्था में इतने महत्वपूर्ण और कठिन प्रश्नों को सिद्ध कर दिया हो। स्वप्न में भी ऐसे प्रश्नों को हल करना

भारतीय वैज्ञानिक

श्रीनिवास रामानुजन् एफ० आर० एस०

[१८८७—१९२०]

आश्चर्य से रहित नहीं मालूम होता। इन्हीं प्रश्नों को हल करने में यूरोप के बड़े से बड़े गणितज्ञों को १०० वर्ष से अधिक लग गये और तिस पर भी उनमें से बहुत से तो आज तक भी हल नहीं किये जा सके हैं।

जन्म और बाल्यकाल

श्री निवास रामानुजन् का जन्म मद्रास प्रान्त अन्तर्गत इरोद नामक एक छोटे से गांव में, एक उच्च किन्तु निर्धन ब्राह्मण परिवार में, २२ दिसम्बर सन् १८८७ ई० को हुआ था। उनके पूर्वजों में कोई ऐसी बात न थी जिसमें उनकी महानता का बीज ढूंढा जा सके। उनके पिता और पितामह कुम्भकोनम ग्राम के निवासी थे और वहीं पर कपड़े के व्यापारियों के यहाँ मुनीमी किया करते थे। उनके नाना इरोद में रहते थे और मुन्सफी में अमीन थे। रामानुजन् का जन्म सामाजिक रीत्यानुसार अपने नाना के घर इरोद ग्राम ही में हुआ। उनके जन्म के संबंध में एक किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि विवाह हो जाने के कई वर्ष उपरान्त तक उनकी माता के कोई सन्तान नहीं हुई। इससे वह सदैव चिन्तित रहा करती थीं। अपनी पुत्री को चिन्ताकुल देखकर रामानुजन् के नाना ने नामक्कल नामक गांव में जाकर वहां की नामगिरी देवी की आराधना की। उसी के फलस्वरूप श्री निवास रामानुजन् का जन्म हुआ।

पाँच वर्ष के होने पर बालक रामानुजन् को ग्रामीण पाठशाला में पढ़ने भेजा गया। वहां पर दो वर्ष तक पढ़ते रहने के उपरान्त वह

कुम्भकोनम हाई स्कूल में पढ़ने भेजे गये। कहते हैं कि वह स्कूल में बिलकुल शान्त रहते थे और बराबर कुछ न कुछ सोचा ही करते थे। उनकेविचार और कार्य अपने सहपाठियों से सर्वथा भिन्न होते थे। १८९८ ई० में वह प्राइमरी परीक्षा में सर्वोच्च पास हुए। पुरस्कार स्वरूप आगे के दर्जों में फीस आधी कर दी गई।

बाल्यकाल में गणित-प्रेम

गणित से रामानुजन् को बाल्यकाल ही से अगाध प्रेम था। गणित के संबंध में वह सदैव कुछ न कुछ सोचा ही करते थे। अपने सहपाठियों और अध्यापकों से कभी वह नक्षत्रों के बारे में कुछ पूछ बैठते और कभी पृथ्वी परिधि के बारे में। यद्यपि उनके शिक्षक अत्यन्त साधारण योग्यता के थे फिर भी वह बराबर गणित सम्बन्धी असाधारण बातों के जानने ही में लगे रहते थे।

जब वह तीसरे दर्जे में पढ़ते थे, एक दिन एक अध्यापक समझा रहे थे कि यदि किसी संख्या को उसी संख्या से भाग दिया जाय तो भजनफल एक होता है। रामानुजन् ने फौरन ही अपने अध्यापक से पूछा—क्या यह नियम शून्य के लिये भी लागू होता है? [शून्य को शून्य से भाग देने पर भजनफल एक न होकर अपरिमित अथवा अनिर्दिष्ट * होता है।]

इस तरह के प्रश्न वह अक्सर ही पूछा करते थे। उनके अध्यापक और सहपाठी उनको झक्की समझते थे। उन्होंने कभी स्वप्न में भी यह

---

* Indeterminate.

न सोचा था कि उनका यही विद्यार्थी या सहपाठी आगे चलकर संसार का महान् गणितज्ञ होगा। घर वालों का ध्यान भी कभी इस ओर आकर्षित न हुआ था। उन लोगों को भी बालक रामानुजन् से कोई विशेष आशा न थी। इधर रामानुजन् बराबर अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने में मग्न रहते थे। तीसरे दर्जे में ही पढ़ते हुए उन्होंने बीज गणित की सुप्रसिद्ध तीनों श्रेणियों का अभ्यास कर लिया था। ये तीनों ही श्रेणियां* कालेज की इन्टरमीडिएट कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं। चौथे दरजे में आकर उन्होंने त्रिकोणमिति† का अध्ययन आरम्भ कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि उन दिनों बालक रामानुजन् ने बी० ए० के एक छात्र से उसकी त्रिकोणमिति की पुस्तक देखने को मांगी। उसे बालक राजानुजन् की कर्तृत्व शक्ति पर विश्वास न हुआ। विश्वास करने को प्रकट रूप से उसे कोई कारण भी न देख पड़ा। उसने बालक की इस अनोखी एवं असाधारण मांग को हँसी में टाल देना चाहा परन्तु रामानुजन् इस तरह से शान्त होकर बैठ जाने वाले नहीं थे। विशेष आग्रह पर, उस छात्र को लाचार होकर लोनी की सुप्रसिद्ध त्रिकोणमिति की पुस्तक इन्हें देनी ही पड़ी। वह इनकी प्रश्न हल करने की रीति और तेज़ी देखकर दंग रह गया। जब उसने देखा कि यह बिना किसी सहायता के प्रश्न पर प्रश्न हल किये चले जा रहे हैं तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यहां तक कि भविष्य में उस विद्यार्थी को

---

* Arithmetic Geometric and Harmonic Progressions

† Trigonometry.

जब कभी त्रिकोणमिति के संबंध में कोई कठिनाई पड़ती अथवा वह कोई कठिन प्रश्न हल न कर पाता तो सीधा बालक रामानुजन् के पास जाकर अपनी कठिनाइयां हल करवा लेता। बालक रामानुजन् ने १२ वर्ष ही की अल्प आयु में सारी त्रिकोणमिति हल कर डाली थी!

पांचवे दर्जे में पहुंच कर रामानुजन् ने 'ज्या' और 'को ज्या'* का विस्तार भी कर डाला। यह विस्तार† सर्व प्रथम आयलर‡ नामक पाश्चात्य गणितज्ञ ने किया था। उन्होंने जिस समय इन विस्तारों को हल किया था वह आयलर के विस्तार से सर्वथा अनभिज्ञ थे। उतने उच्च कोटि के गणित को समझाने के लिए उन्हें न तो कोई गुरु ही नसीब था और न उपयुक्त सहायक ग्रन्थ ही उपलब्ध थे। वह जो कुछ भी कार्य करते थे वह पूर्णतया मौलिक और स्वत: प्रेरित होता था अस्तु उन्होंने अपने बालकाल्य ही में जो गणित संबंधी कार्य कर लिया था वह किसी भी गणिताचार्य की स्वतंत्र खोज से कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

बालकपन में रामानुजन् ढूंढ ढूंढ कर गणित की उच्च कोटि की पुस्तकें पढ़ा करते। परन्तु उन्हें पुस्तकों का मिलना यदि असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य था। जब कभी गणित की कोई अच्छी पुस्तक मिल जाती उसे पाकर वह निहाल हो जाते। जब वह सातवीं या आठवीं कक्षा के विद्यार्थी थे उनके एक मित्र ने उनको 'कार' लिखित एक गणित ग्रन्थ * लाकर दिया। पुस्तक पाकर उनकी प्रसन्नता का ठिकाना

---

* Sine and cosine. † Expansion. ‡ Euler.

* Car's Synopsis of Pure Mathematics

न रहा। एक नवीन संसार की सृष्टि हो गई। अपने समस्त कार्यों को भूलकर वह उस पुस्तक के अध्ययन में निमग्न हो गये। उसके प्रश्न हल करने में वह इतने अधिक लीन हो जाते कि तन बदन की भी सुध न रह जाती। कहते हैं कि जो प्रश्न आप जाग्रत अवस्था में न हल कर पाते वे प्रश्न स्वप्न में आप ही आप हल हो जाया करते थे। लोगों को विश्वास था कि उनकी इष्टदेवी नामगिरी उनकी सहायता करती थीं। उनके पास कोई दूसरी पुस्तकों की सहायता न थी इसलिए प्रत्येक हल एक नवीन अनुसन्धान था।

'वास्तव में रामानुजन् ने १६ वर्ष की अवस्था से पहिले गणित की कोई ऊँची किताब नहीं देखी थी। विटेकर और वाटसन की सुप्रसिद्ध गणित पुस्तक 'माडर्न एनेलिसिस' * का भारत तक प्रचार नहीं हुआ था। ब्रोमविच की 'इनफिनिट सीरीज़' (अनन्त श्रेणियाँ) ‡ का जन्म तक नहीं हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि ये पुस्तकें रामानुजन् में महान् अन्तर डाल देतीं। रामानुजन् की शक्तियों को जाग्रत करने वाली पुस्तक कार की सिनाप्सिस एक दूसरे प्रकार की पुस्तक थी। यह पुस्तक अब नहीं मिलती। इस की एक प्रति केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है और किसी भाँति एक प्रति कुम्भकोनम के कालेज में पहुंच गई थी और वहाँ से उसे एक मित्रने रामानुजन् के लिये ला दिया था। यह पुस्तक किसी तरह महान नहीं है लेकिन रामानुजन् ने

---

* Wittakar & Watson : Modern Analysis

‡ Bromwitch: Infinite series.

उसे प्रसिद्ध कर दिया है निस्सन्देह इस पुस्तक ने रामानुजन् पर गम्भीर प्रभाव डाला और उनके जीवन कार्य की एक प्रकार की नींव डाली।'

कालेज जीवन

१६०३ ई० में १७ वर्ष की आयु में रामानुजन् ने मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास की। इस परीक्षा को योग्यता पूर्वक पास करने के उपलक्ष में उनको सरकारी छात्रवृत्ति प्रदान की गई। यह प्रायः उन विद्यार्थियों को दी जाती थी जो अंग्रेजी और गणित में चतुर हों। परन्तु कालेज के फर्स्टईयर क्लास तक पहुंचते पहुंचते वह गणित में इतने अधिक लवलीन हो गये थे कि गणित के अतिरिक्त और किसी विषय में उनकी रुचि ही न रह गई थी। वह गणित के सिवा और किसी काम ही के न रह गये थे! अंग्रेजी बहुत कमज़ोर हो गई, दर्जे में क्या पढ़ाया जा रहा है इसका उनको तनिक भी पता न रहता। दर्जे में चाहे जो कुछ पढ़ाया जाय वह बराबर गणित ही में मग्न रहते। अस्तु रामानुजन् फर्स्टईयर क्लास ही की वार्षिक परीक्षा में फेल हो गये। उनकी छात्रवृत्ति बंद कर दी गई। विवश हो उन्हें अपने कालेज जीवन को भी यहीं समाप्त कर देना पड़ा। न तो उनको कालेज की पढ़ाई में कोई दिल-चस्पी ही थी और न उनकी आर्थिक स्थिति ही इस योग्य थी कि वह अपनी पढ़ाई जारी रख सकते।

कालेज छोड़ने के बाद रामानुजन् को अपना सारा समय गणित में लगाने का अच्छा मौका मिला। वह दिन भर गणित के सिद्धान्तों की व्याख्या करने और प्रश्न हल करने में लगाने लगे। १६०६ ई०

शरलोमा का सत्ववाद

शरलोमाः—पारीक्षिमौद्गल्य के बाद शरलोमा ने कहा किः—

शरलोमातुनेत्याह न ह्यात्मात्मानमात्मना ।
योजयेद्व्याधिभिर्दुःखैर्दुःखद्वेषी कदाचन ॥
रजस्तमोभ्यांतुमनः परीतं सत्वसंज्ञकम् ।
शरीरस्य समुत्पत्तौ विकाराणांच कारणम् ॥

अर्थात आत्मा को शरीर का तथा रोगों का उत्पादक कहना उचित नहीं है; क्योंकि दुःखद्वेषी आत्मा अपने आपको कदापि दुःख में नही डाल सकता । वास्तव में सत्व—संज्ञक मन ही जब रजोगुण तमोगुणों से व्याप्त होता है तब वह शरीर तथा रोगों की उत्पत्ति में कारण बन जाता है ।

इस पर से ज्ञात होता है कि सत्ववादी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते हुए भी उसको कर्ता नही मानते बल्कि उदासीन मानते हैं । इस तरह एक को उदासीन व दूसरे को कर्ता मानना यह भी व्यक्त करता है कि सत्ववादी, आत्मा व सत्व दोनो को अनादि मानते हैं ।

उक्त श्लोकद्वय पर से सत्ववाद के विषय मे इससे अधिक अनुमान नही होसकता और यह भी निश्चय पूर्वक

पी० वी० शेषुअय्यर के पास मद्रास भेज दिया। श्री शेषु अय्यर कुम्भकोनम् कालिज में गणित के शिक्षक रह चुके थे। इसलिए वे रामानुजन् से पहिले ही से परिचित थे। उनके प्रयत्न से रामानुजन् को एक अस्थायी पद पर काम मिल गया। उसके बाद कुछ दिन प्राइवेट ट्यूशन करके गुज़र की। पर जब इससे भी काम न चला तो श्री शेषुअय्यर ने उन्हें दीवान बहादुर श्री आर० रामचन्द्र राव के पास भेजा। श्री राव उन दिनों नैलोर में कलक्टर थे। वे रामानुजन् के असाधारण गणित ज्ञान को देखकर चकित रह गये। उन्होंने रामानुजन् से अपनी पहिली मुलाक़ात का ज़िकर करते हुए अपने संस्मरण में एक स्थल पर लिखा है—

'बहुत दिन हुए, मेरे भतीजे ने आकर मुझ से कहा कि एक अपरिचित सज्जन आये हैं और गणित सम्बन्धी बातें करते हैं। [मेरा यह भतीजा गणित बिलकुल भी न जानता था।] मेरी समझ में तो कुछ आता नहीं आप चलकर देखिये उनकी बातों में कुछ तत्व भी है या योंही ग़प्प हांक रहे हैं। मैंने अपने भतीजे से उस अपरिचित व्यक्ति को अपने कमरे में लाने को कहा। एक नाटा, तन्दुरुस्त, मैले से कपड़े पहने हुए चमकीली आँखोंवाला युवक आकर मेरे सामने उपस्थित हो गया। यही युवक श्री निवास रामानुजन् थे। युवक की सूरत ही से ग़रीबी टपक रही थी। एक मोटी सी कापी वह बग़ल में दबाये हुए था और गणित के अध्ययन के लिये कुम्भकोनम से मद्रास भाग आया था। धन और यश का भूखा न था। चाहता था कि उसके गणित के अध्ययन में कोई बाधा न पड़े। कोई उसके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कर दे और वह निश्चिन्त होकर अपना अध्ययन जारी रक्खे।

'वह युवक अपनी कापी खोलकर मुझे अपनी कतिपय नवीन खोजें समझाने लगा। मैं तत्काल ही समझ गया कि युवक कुछ असाधारण बातें बतला रहा है, परन्तु अज्ञानतावश यह निश्चित न कर सका कि वे सब बातें कितनी महत्वपूर्ण हैं। अस्तु मैंने उससे इस संबंध में कुछ भी न कहा, हां उससे कभी कभी अपने पास आ जाने के लिए ज़रूर कह दिया। वह मेरे पास आने जाने लगा और धीरे धीरे मेरी गणित सम्बन्धी योग्यता को भी बखूबी समझ गया। उसने मुझे अपने कुछ सरल सिद्धान्त बतलाये। वे भी वर्त्तमान पुस्तकों से आगे बढ़े हुए थे। इन सिद्धान्तों की व्याख्या इतनी उत्तमता पूर्वक की गई थी कि मैं देख-कर दंग रह गया और मुझे यह बात मन ही मन स्वीकार करनी पड़ी कि रामानुजन् एक असाधारण योग्यता का युवक है। धीरे धीरे उसने मुझे अपनी कुछ और महत्वपूर्ण खोजों* का हाल बतलाया और अन्त में केन्द्र विचल श्रेणियों† के सिद्धान्त का भी जिकर किया। मैं क्या, समस्त संसार इस सिद्धान्त से उस समय तक अनभिज्ञ था।"

श्रीरामचन्द्र राव रामानुजन् की असाधारण योग्यता और गणित प्रेम से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने रामानुजन् को इस बात का आश्वासन दिया कि जब तक कोई अन्य अधिक सन्तोषजनक प्रबन्ध न हो जाय वह रामानुजन् के खर्च को स्वयं बरदाश्त करेंगे। यह आश्वासन देकर

---

* Elliptic Integrals and Hypergeometric series.

† Theory of Divergent series.

उन्होंने रामानुजन् को फिर मद्रास वापस भेज दिया। वहां रामानुजन् को छात्रवृत्ति दिलाने के सभी प्रयत्न बेकार हुए। इधर रामानुजन् ने भी अधिक समय तक किसी पर भार स्वरूप होकर रहना स्वीकार न किया विवश होकर श्री राव ने रामानुजन् को मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में ३०) मासिक वेतन की नौकरी दिला दी। इसके साथ ही उन्होंने मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के चैयरमैन सर फ्रांसिस स्प्रिंग तथा मद्रास इंजीनियरिंग कालेज के मि० ग्रिफिथ को निजी पत्र लिखकर रामानुजन् में दिलचस्पी दिलाने के सफल प्रयत्न किये। उन्होंने निजी पत्र लिखकर सर फ्रांसिस स्प्रिंग से यह अनुरोध भी किया कि वह रामानुजन् के लिए कुछ ऐसा प्रबन्ध कर दें जिसमें रामानुजन् की असाधारण योग्यता संसार में भली भांति प्रकट हो सके और दफ्तर में क्लर्की करते करते नष्ट न हो जाय। अस्तु स्वयं दिलचस्पी लेने के साथ ही उन्होंने सरकारी वेधशालाओं* के डाइरेक्टर जनरल डा० जी० टी० वाकर एफ० आर० एस०, के मद्रास आने पर उन्हें भी रामानुजन् के कुछ नवीन सिद्धान्त दिखलाए। उन्हें देखकर डा० वाकर बहुत चकित हुए और उन्होंने रामानुजन् की सहायता करने का निश्चय किया।

विश्वविद्यालय की छात्र वृत्ति

इन्हीं दिनों कुछ मित्रों की सहायता से रामानुजन् के कई लेख मद्रास की इण्डियन मैथमेटिकल सोसाइटी के मुखपत्र में प्रकाशित हुए। उनका सर्वप्रथम लेख प्रश्नों के रूप में था। ये प्रश्न श्री शेषुअय्यर द्वारा पत्र को

---

* Observatories.

भेजे गये थे और १९११ के फरवरी अंक में प्रकाशित हुए थे। उनका प्रथम लम्बा पर्चा उसी वर्ष के दिसम्बर अंक* में प्रकाशित हुआ था। दिसम्बर १९१२ में एक लेख के साथ उन्होंने अपने कुछ और प्रश्न भी प्रकाशित कराये। इन लेखों और प्रश्नों के प्रकाशन से गणित संसार में रामानुजन् की काफी ख्याति होगई।

इधर डाक्टर वाकर ने भी मद्रास विश्वविद्यालय के रजिष्ट्रार को आपके बारे में एक ज़ोरदार पत्र लिखा। उसके कुछ अंश यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

' + + + मैंने मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के एक क्लर्क श्री निवास रामानुजन् के गणित सम्बन्धी कार्य देखे हैं। मैं उस युवक की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता। उसकी गम्भीरता और मौलिकता पर केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का कोई भी फेलो अभिमान कर सकता है। मुझे विश्वस्त रूप से पता लगा है कि अभी उस क्लर्क की आयु २२ वर्ष से अधिक नहीं है। यह भी मालूम हुआ है कि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। अस्तु यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालय उस युवक की सहायता करे और उसे एक छात्रवृत्ति प्रदान कर उसे निश्चिन्त होकर अपना सब समय गणित के अध्ययन एवं अनुशीलन में लगाने का अवसर दे।" यह पत्र काम कर गया।

डाक्टर वाकर के प्रयत्न से रामानुजन् को मद्रास विश्वविद्यालय से दो वर्ष के लिए ७५) मासिक की छात्रवृत्ति मिल गई। क्लर्की से छुट-

---

* Some properties of Bernoulle's Numbers.

रंगना हो उसको फिटकरी मिले हुये पानी में भिगा, सुखा लेना चाहिये। यहां पर इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ठंडे पानी में इतनी फिटकरी डालना चाहिये जितनी कि पानी में मिल जावे। जब पानी में फिटकरी का गलना बन्द होजावे तो समझना चाहिये कि पानी अब काम में लाने के योग्य होगया है। फिर सूत को लाख के छने हुये रंग में डाल कर उबालना चाहिये जब तक कि खूब तेज़ लाल रंग सूत पर न आजावे। जब ऐसा होजावे तो आग पर से उतार कर, ठंडा कर, ठंढे पानी में खूब धोकर, साया में सूखने के वास्ते फैला देना चाहिये। यदि खूब तेज़ लाल रंग रंगना हो तो ठंढे धोने के पानी में थोड़ासा निम्बू का रस डाल देना चाहिये।

चपरे का बनाना।

जब लाख को पानी में भिगा कर धोते हैं तो रंग और लाख का दाना जिसे "दाल" कहते हैं प्राप्त होते हैं। दाल को तब धूप में खूब सुखा कर चाल लेते हैं और उसे तीन हिस्सों मे अलग कर चाल लेते हैं :—

१—बड़ा दाना—जिससे सब से बढ़िया चपरा बनाया जाता है।

२—छोटा दाना—जिससे दूसरे दर्जे यानी टी. एन. मार्क का चपरा बनता है।

३—बहुत ही छोटा दाना या गर्द—जिसे दूसरे नम्बर के साथ मिला कर काम में लाते हैं।

फिर पहिले या दूसरे नम्बर की दाल में २ से ३ फ़ी सैकड़ा हरताल मिला देते हैं जिससे चपरे का रंग खुल जावे। फिर इसके साथ ४ से ५ फ़ी सैकड़ा राल मिला देते हैं जिससे दाल जल्दी गले। जब तीनों जुज़ों को हाथ से अच्छी तरह मिला देते हैं तब उसे १० से १२ गज़

हैं। मैंने एक ऐसी राशिमाला खोजी है जो वास्तविक परिणाम के अत्यन्त निकट है। उसमें जो अशुद्धि आती है, वह नाम मात्र और त्याज्य है। मैं आपसे इस पत्र के साथ के काग़ज़ों को पढ़ने का अनुरोध करूंगा। मैं निर्धन हूं। यदि आपकी दृष्टि में इनका कुछ मूल्य हो तो मैं चाहूंगा इन्हें प्रकाशित करा दिया जावे। मैंने वास्तविक अन्वेषण नहीं दिये हैं केवल उस मार्ग की ओर संकेत किया है जिस पर मैं जा रहा हूं। अनुभव न होने के कारण आपकी प्रत्येक सम्मति मेरे बड़े काम की होगी।'

प्रो० हार्डी तथा दूसरे अंग्रेज़ गणितज्ञ आपके लेखों को देखकर बहुत अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि रामानुजन् ने जिस विधि से अपने परिणामों को स्थापित किया था वह इतनी सूक्ष्म और मौलिक थी कि उसे भली भांति समझना भी कठिन था। फिर भी रामानुजन् द्वारा स्थापित सभी सूत्र प्रायः निर्दोष और अत्यन्त उच्चकोटि के थे। अतएव ये लोग रामानुजन् को शीघ्र से शीघ्र केम्ब्रिज बुलाने के प्रयत्न करने लगे। उन्होंने रामानुजन् के पास फौरन ही सहानुभूति पूर्ण एवं प्रशंसात्मक पत्र भेजा। लेखों के प्रकाशन् का समुचित प्रबन्ध कर दिया। इस सम्बन्ध में रामानुजन् ने २७ फरवरी १९१३ को डा० हार्डी को अपने दूसरे पत्र में लिखा:—

"आप में मैंने एक ऐसा मित्र पा लिया है जो मेरे कार्य को सहानुभूति की दृष्टि से देखता है यह मेरे लिए प्रोत्साहन है। अपने दिमाग़ को ठीक बनाये रखने के लिए मुझे भोजन की भी आवश्यकता है और मैं पहिले उसी विषय की सोचता हूं। आपका एक सहानुभूतिमय पत्र यह

विश्वविद्यालय से अथवा सरकार से मुझे छात्रवृति दिलाने में सहायक हो सकेगा।"

इस पर डा० हार्डी ने भी मद्रास विश्वविद्यालय से रामानुजन् को छात्रवृत्ति दिलाने की पूरी कोशिश की।

आर्थिक कठिनाइयों के हल हो जाने पर डा० हार्डी रामानुजन् को इंगलैंड बुलाने में सफल न हो सके। रामानुजन् के परिवार एवं बिरादरी के लोग समुद्र यात्रा के पक्ष में न थे। उन लोगों ने समुद्र यात्रा करने पर आपको जाति से बहिष्कृत करने की भी धमकी दी। परन्तु केम्ब्रिज बुलाने में असफल होने पर भी डा० हार्डी बराबर इनकी सहायता करते रहे। वह रामानुजन् को पाश्चात्य गणितज्ञों के साथ कुछ समय तक रहने और काम करने की आवश्यकता और लाभ आदि के बारे में बराबर ज़ोर देकर पत्र लिखते रहे। दूसरे उपायों द्वारा भी उन्हें इंगलैंड आने के लिए राजी करने की कोशिशें कीं। वास्तव में यह डा० हार्डी जैसे विद्वान् ही की कोशिशों का फल था जिससे रामानुजन् सरीखा अमूल्य रत्न पहचाना जा सका और उसकी समुचित रूप से प्रतिष्ठा की जा सकी। नहीं तो भारत जैसे अभागे देश में जिसकी नसनस में गुलामी की भावनायें अपना घर कर चुकी हैं रामानुजन् ३०) मासिक की क्लर्की ही करता रह जाता। अस्तु मद्रास विश्वविद्यालय से छात्रवृत्ति मिल जाने से रामानुजन् की आर्थिक कठिनाइयां बहुत कुछ हल हो गईं और वह निश्चिन्त होकर अपने अध्ययन में लग गये। विश्वविद्यालय के नियमानुसार वह अपनी अध्ययन एवं अनुशीलन रिपोर्ट

बालकों पर इस का प्रयोग किया गया, तो उन के लिये भी यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। इस नई दिशा में जो परिणाम इस पद्धति ने दिखाये, वे सचमुच आश्चर्यजनक थे। यही कारण है कि बाल-शिक्षा के लिए यह पद्धति आज इतनी सर्वप्रिय बन गई है।

[४]

इस पद्धति के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने यह भ्रम फैला रखा है कि यह बालकों को सामाजिकता से दूर ले जाती है और व्यक्तिवाद का पोषण करती है। जो इस पद्धति का थोडा भी ज्ञान रखते है, उन्हे ऐसे आलो-चकों पर हँसी आये बिना न रहेगी। सामाजिकता इस पद्धति का प्राण है। जिस दिन से बालक शाला मे कदम रखता है उसी दिन से वह सामाजिकता का पाठ पढ़ने लगता है। मोण्टीसोरी सिद्धान्तों पर सञ्चालित शाला मे सब बालक एक साथ नाश्ता आरम्भ करते है और एक साथ उठते है। सामूहिक खेलों मे सब बालक भाग लेते हैं। सब मिल कर गायन गाते है। सब मिल कर अनेक प्रवृत्तियाँ करते है। मोण्टीसोरी शाला मे एक भी ऐसी प्रवृत्ति नहीं मिलेगी, जिसमें सामाजिकता का ध्यान न रक्खा जाता हो। साधनों के उपयोग में भी सामाजिकता

के अधिकारियों को श्री रामानुजन् को विलायत जाने के लिए एक छात्रवृत्ति प्रदान करने को पत्र लिखा। इस पत्र के कुछ वाक्य विशेष उल्लेखनीय हैं:—"श्री रामानुजन् की प्रतिभा का संसार के समक्ष उद्घाटन, गणित संसार में हम लोगों के समय की सर्वोत्कृष्ट घटना होगी।·········रामानुजन् को गणित सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों और नवीन विधियों की शिक्षा देना और उन का ऐसे विद्वानों के सम्पर्क में आना जो यह भली भांति जानते हैं कि गणित में कितना कार्य किया जा चुका है और क्या काम अभी करने को बाकी है, कितना अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी होगा इसका केवल अनुमान भर किया जा सकता है।

'पश्चिम के उच्चकोटि के उत्कृष्ट गणितज्ञों के सम्पर्क में आने से रामानुजन् को जो प्रेरणा मिलेगी उससे वह निश्चय ही बहुत अधिक प्रोत्साहित होंगे और उनका नाम भी गणित के इतिहास में महान और सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञों में लिखा जायगा। रामानुजन् को गहन अन्धकार से निकाल कर विश्वव्यापी प्रसिद्धि प्रदान करने के लिए मद्रास नगर और विश्वविद्यालय को सदैव उचित गर्व करने का अच्छा मौका मिलेगा।'

फलस्वरूप विश्व विद्यालय के अधिकारियों ने सरकार की अनुमति से एक सप्ताह के भीतर ही रामानुजन् को २५० पौंड वार्षिक की छात्रवृत्ति देने के अतिरिक्त आरम्भिक व्यय और सफर खर्च देना भी मंजूर कर लिया। शुरू में यह छात्रवृत्ति दो वर्ष के लिए मंजूर की गई। पीछे इसकी अवधि बढ़ाकर ३१ मार्च १९१९ कर दी गई। इसमें से

६०) प्रति मास अपनी माता आदि को देने का प्रबन्ध करके रामानुजन् १७ मार्च १६२४ ई० को मि० नेविल के साथ इंगलैंड को रवाना हो गये।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के आचार्यों ने आपको सहर्ष अपने विद्यालय में स्थान दिया और ६० पौंड वार्षिक की एक छात्रवृत्ति देना भी स्वीकार किया। केम्ब्रिज में रामानुजन् को अध्ययन और अनुशीलन का पूरा मौका मिला। वह डा० हार्डी और प्रो० लिटिलवुड की सहायता से उत्तरोत्तर उन्नति करने लगे। एक वर्ष बाद प्रोफेसर हार्डी ने उनके सम्बन्ध में जो रिपोर्ट मद्रास विश्वविद्यालय को भेजी थी उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

'लड़ाई छिड़ जाने के कारण रामानुजन् की उन्नति में बहुत कुछ बाधा पड़ गई है। प्रो० लिटिलवुड लड़ाई पर चले गये हैं। मुझे अकेले ही रामानुजन् को पढ़ाना पड़ता है। रामानुजन् जैसे कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी के लिये एक शिक्षक काफी नहीं हो सकता। निस्सन्देह रामानुजन् आधुनिक समय के सर्वश्रेष्ठ भारतीय गणितज्ञ हैं।······उनके प्रश्नों के चुनाव में अथवा उन्हें हल करने में सदैव कोई न कोई विलक्षणता ज़रूर रहती है। रामानुजम् की अलौकिक योग्यता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। कई प्रकार से वह मेरे जान पहचान के सभी गणितज्ञों से अधिक प्रतिभाशाली हैं।'

सन् १६१७ ई० तक श्री रामानुजन् इंगलैंड में सफलतापूर्वक अध्ययन करते रहे। इस बीच में डा० हार्डी और दूसरे आचार्य आपके बारे में प्रशंसा सूचक पत्र बराबर मद्रास विश्वविद्यालय के अधिकारियों के

पास भेजते रहते थे। इसी अर्से में उनके १२-१३ लेख यूरोप की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इनसे उनका और अधिक सम्मान होने लगा।

विलायत पहुंचकर भी रामानुजम् ने अपने रहन सहन के ढंग में कोई परिवर्त्तन न किया। विलायत में वह जिस ढंग से रहते थे वह वहाँ के जलवायु के अनुकूल न था। वह स्वयं भोजन बनाते थे और उसमें भी दाल, चावल और शाक के अतिरिक्त कुछ नहीं होता था। दिन भर वह मानसिक परिश्रम ही करते रहते थे, शारीरिक परिश्रम की ओर तो कभी ध्यान ही नहीं देते थे। उनके मित्रों, शुभेच्छुओं ने कई बार इस रहन सहन को बदल देने का अनुरोध किया, परन्तु आपने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया। इन सब बातों का उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा। वह बीमार रहने लगे। १९१७ ई० में उनको तपेदिक को शिकायत मालूम होने लगी। वास्तव में इंगलैंड जैसे शीत प्रधान देश में भी रामानुजन् के अपने प्रान्तीय भोजन वस्त्रों के व्यवहार, अनवरत परिश्रम और किसी भी प्रकार के व्यायाम आदि न करने से इस प्राणघातक रोग को और अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

महायुद्ध के कारण उन दिनों समुद्र यात्रा करना निरापद न था अतः वह भारत आने में असमर्थ थे। अस्तु उनको केम्ब्रिज के अस्पताल में रक्खा गया और उचित सेवा शुश्रूषा का प्रबन्ध कर दिया गया। केम्ब्रिज के बाद वे इंगलैंड के और भी कई अस्पतालों में भेजे गये। १९१८ तक यही क्रम रहा धीरे धीरे उनका स्वास्थ्य कुछ सम्हलने लगा।

रायल सोसायटी के फेलो

२८ फरवरी १९१८ ई० को आप रायल सोसायटी के फेलो बनाये गये। यह सम्मान प्राप्त करने वाले आप पहले ही भारतीय थे। इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है—रायल सोसायटी ने आपको तीस वर्ष की आयु में और पहिली ही नामज़दगी में अपना फेलो बनाना स्वीकार कर लिया था। वास्तव में यह सम्मान उनकी प्रतिभा के प्रति पहली और अन्तिम महत्वपूर्ण श्रद्धाञ्जलि थी। इस महान सफलता से भी उनकी सहज सरलता में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। इस विषय में २६ नवम्बर १९१८ के एक पत्र में रामानुजन् के रायल सोसायटी और ट्रिनटी कालेज के फेलो चुने जाने के कई महीने बाद डा० हार्डी ने लिखा था "सफलता से उनकी सहज सरलता में कोई अन्तर नहीं आया है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें अनुभव कराया जाय कि वह सफल हुए हैं।"

इस सफलता से उत्साहित होकर और अपने स्वास्थ्य की विशेष परवा न करते हुए रामानुजन् ने एक बार फिर उत्साह-पूर्वक अनुशीलन कार्य आरम्भ किया। आपके कार्यों की महत्ता स्वीकार करने और आपके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिये ट्रिनिटी कालिज के अधिकारियों ने भी आपको अपने कालिज का फेलो नियुक्त किया और बिना किसी शर्त के आपको २५० पौंड सालाना देना स्वीकार किया। यह छात्र वृत्ति आपको ६ वर्ष तक मिलती रही। इस बारे में पत्र लिखते हुए डा० हार्डी ने मद्रास विश्वविद्यालय के अधिकारियों को लिखा था:—

'रामानुजन् इतने बड़े गणितज्ञ होकर भारत लौटेंगे, जितना आज तक कोई भारतीय नहीं हुआ है। मुझे आशा है कि भारत इन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझ कर उचित सम्मान करेगा।'

स्वदेश आगमन और मृत्यु

महायुद्ध की समाप्ति के बाद २७ फरवरी १९१९ को श्री रामानुजन् लन्दन से स्वदेश के लिये रवाना हुए और २७ मार्च को बम्बई पहुंचे। विदेश में रहने और जलवायु आदि के अनुकूल न होने के कारण वह बहुत दुबले हो गये थे। स्वास्थ्य अच्छा न रहता था और उनका चेहरा पीला पड़ गया था। शरीर में अस्थि पञ्जर के अतिरिक्त और कुछ शेष न रह गया था। स्वदेश वापस आते ही उनके मित्रों ने बढ़िया से बढ़िया इलाज का प्रबन्ध किया। मद्रास से उन्हें कावेरी के किनारे कोदूमंडी ग्राम में रहने को ले जाया गया। वहाँ से वह अपनी जन्म भूमि कुम्भकोनम ले जाये गये। औपधि उपचार से उनको बड़ी घृणा थी। पथ्य और दवा पानी से बहुत घबड़ाते थे। अतएव उनका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ता ही गया। परन्तु मस्तिष्क का प्रकाश अन्त तक मन्द नहीं हुआ। मृत्यु तक वह काम में लगे रहे Mock Theta Functions पर उनका सब काम मृत्यु शय्या पर ही हुआ था। हालत ज्यादा खराब होती देख वह मद्रास वापस आ गये। मद्रास में भी उनको विशेष लाभ न हुआ और अन्त में २६ अप्रैल १९२० ई० को मद्रास के पास चेतपुर ग्राम में इस महापुरुष का स्वर्गवास हो गया। बीमारी के दिनों में कितने ही उदार सज्जनों ने उनकी सहायता की। एस० श्री निवास आयंगर और राय बहादुर नुम्बरुलचेट्टी के नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय

हैं। श्री आयंगर ने इलाज का अधिकांश व्यय उठाया और श्री चेट्टी ने अपना मकान इस कार्य के लिए दिया। मद्रास विश्व विद्यालय के सिंडीकेट के सदस्यों ने भी व्यक्तिगत रूप से खर्चे के लिए धन दिया।

रामानुजन् का स्वभाव बहुत ही शान्त और सरल था। माता-पिता में उनको अविरल भक्ति थी। समाज के नियमों का वह यथाशक्ति भली भाँति पालन करते थे। उनकी धारणा थी कि जात-पांत और छून छात के नियम ईश्वरीय नहीं हैं और इनका पालन करना भी अनिवार्य नहीं है। फिर भी वह स्वभाव ही से बड़े धर्म भीरु थे और ब्राह्मणोचित कर्त्तव्यों का विधिवत पालन करते थे। अभिमान तो उनको छू तक न गया था। एफ० आर० एस० जैसी महत्वपूर्ण माननीय प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी उनकी सरलता में कोई विशेष अन्तर न पड़ा था। जब से उन्होंने होश सँभाला तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त वह बराबर गणित के अध्ययन और अनुशीलन ही में लगे रहे। गणित के सामने उन्होंने अपने स्वास्थ्य तक की परवाह न की। स्वास्थ्य खराब हो जाने से उनके अनुशीलन कार्य में बड़ी रुकावट पड़ गई थी परन्तु फिर भी मृत्यु से चार दिन पहिले तक वह इसी कार्य में लगे रहे। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व तक उनकी मानसिक वृत्तियों में कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ था। ईश्वर में उनका अनन्त विश्वास था और अन्त तक बना रहा।

उनके स्वभाव में हद दर्जे की सादगी थी। धन सञ्चय और आमोद प्रमोद की ओर उनकी अभिरुचि कभी हुई ही नहीं। एक बार (११ जनवरी १९११) उन्होंने मद्रास विश्व विद्यालय के रजिस्ट्रार को लिखा भी था कि उनकी छात्र-वृत्ति में से ५० पौंड वार्षिक उनके माता पिता

न खाएँ, तो भी उनके शरीर मे बसा का भाग निरतर बढता ही जाता है। वह जो कुछ खाते है, उसका अधिक भाग बसा के रूप में परिणत हो जाता है। ऐसी दशा स्वास्थ्य के लिये चिता जनक है।

अन्य वस्तुओ की भाँति बसा भी भोजन ही से प्राप्त होती है। ठडे देशो मे इसकी अधिक आवश्यकता होती है, जहाँ बाहर का वायु-मंडल बहुत शीतल होता है। इन स्थानो मे बाह्य-शीत के प्रभाव को दूर करने के लिये ऐसी वस्तुएँ अधिक खाना आवश्यक होता है, जिनसे उष्णता अधिक उत्पन्न हो। बसा से उष्णता बहुत उत्पन्न होती है। कर्बोज की अपेक्षा बसा से ढाई गुणा उष्णता बनती है। जाडे के दिनो मे प्रत्येक मनुष्य की घृत-मक्खन खाने की रुचि होती है। गरमी का मौसम आते ही वह रुचि जाती रहती है। ठंडे दिनो में घृत इत्यादि सुगमता से पच भी जाता है, किंतु उष्णकाल मे नही पचता। कारण यह है कि शीतकाल मे शरीर को अधिक बसा की आवश्यकता होती है, किंतु गरमी के दिनो मे बसा उलटी हानि करती है। क्योंकि उससे उष्णता की अधिक उत्पत्ति होती है, जिससे शरीर की भीतरी उष्णता बाह्य वायु-मंडल की प्रचंड उष्णता के प्रभाव को और भी बढा देती है।

प्रकृति ने शरीर की रक्षा के लिये नाना भाँति के प्रयत्न किए है। उसने शरीर मे ऐसे-ऐसे यन्त्र लगाए है और उसको ऐसी शक्ति दी है कि वह जैसा समय पडे, उसी के अनुसार अपनी रक्षा के स्वयं साधन कर ले। शरीर मे ऐसी शक्ति है कि यदि वायु-मंडल उष्ण हो तो वह आतरिक उष्णता की उत्पत्ति को बहुत कम कर दे और यदि वायु-मंडल बहुत ठडा है तो वह आतरिक उष्णता को अधिक उत्पन्न करे, जिससे शरीर पर शीत और उष्णता के अधिक

पर भी हल न कर पाते उन्हें हल करने में भी रामानुजन् को अधिक समय न लगता। गणित संबंधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना और उनके फलों एवं परिणामों का ठीक ठीक अनुमान कर लेना उनके लिए अत्यन्त साधारण सी बात थी। बीज गणित के सूत्रों और अनन्त श्रेणियों के रूपान्तर में तो वह पूर्णतः दक्ष थे, उनकी स्मरण एवं गणना शक्ति अत्यन्त विलक्षण थी। इस बारे में डा० हार्डी ने एक स्थल पर लिखा था:—

'मैंने आज तक श्रीनिवास रामानुजन् सरीखा कोई गणितज्ञ नहीं देखा। मैं आपकी तुलना आयलर और जैकोनी ही से कर सकता हूं। अङ्कों और संख्याओं से आपकी गहरी दोस्ती थी।

एक बार डा० हार्डी रोगी रामानुजन् से मिलने गये। अस्पताल में इनके निवास स्थान का नम्बर १७२९ था। हार्डी साहब इस संख्या को देखकर बोले—कैसे मनहूस कमरे में रहते हो? कमरे का नम्बर बड़ा वाहियात है। देखिये न तीन विषम संख्याओं [७ × १३ × १९] का गुणनफल है।'

रामानुजन् हार्डी की बात सुन कर हँसे और कहा—'नहीं साहब यह संख्या बड़ी ही मनोरंजक है। यह वह सब से छोटी संख्या है जो दो भिन्न भिन्न प्रकार के दो घनों के योग के रूप में प्रकट की जा सकती है। [$१७२९ = १०^3 + ९^3 = १२^3 + १^3$] श्री हार्डी ने इस कुतूहल जनक उत्तर की बड़ी सराहना की और वे रामानुजन् की गणित सम्बन्धी दूरदर्शिता से चकित हो गये।

रामानुजन् इसी प्रकार बड़े बड़े मौलिक परिणामों को बिना प्रमाण

के अन्तर्ज्ञान ही से हल कर दिया करते थे। बहुत से गणितज्ञों की समझ में यह बात आज तक नहीं आई कि वह ऐसा कैसे करते थे। वास्तव में रामानुजन् की गणित प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त थी। उनके अन्तर्ज्ञान की व्याख्या पूर्व संस्कार और पुनर्जन्म के सिद्धान्त ही द्वारा कदाचित की जा सकती है। जैसा कि पहिले भी बतलाया जा चुका है रामानुजन् अपने धार्मिक सिद्धान्तों में बड़े दृढ़ थे। नामक्कल की देवी नामगिरि में वह विशेष श्रद्धा रखते थे। उनका विश्वास था कि स्वप्न में इन्हीं नामगिरि देवी की प्रेरणा से गणित ज्ञान हुआ करता था। बहुधा देखा भी जाता था कि वह सोते सोते उठकर, गणित के परिणामों को बिना प्रमाण जल्दी जल्दी लेख बद्ध कर लिया करते थे। ऐसे परिणामों के प्रमाण देने के लिए पीछे प्रयत्न करते थे। इन परिणामों में कितने ही तो ऐसे हैं जिनके प्रमाण न तो स्वयं रामानुजन् ही दे सके और न अभी तक कोई अन्य गणितज्ञ ही दे सका है।

महत्वपूर्ण खोजें

श्रीरामानुजन् की अधिकतर खोजें संख्याओं की मीमांसा* से सम्बन्ध रखती हैं। संख्याओं और अंकों की मीमांसा और गूढ़यौगिक संख्याओं† पर उन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख लिखे थे। विषम बीज गणित सम्बन्धी लेखों और वर्गों के योग द्वारा संख्याओं की प्रदर्शन विधि से उनका पांडित्य भली भांति प्रकट होता है। उनके अधिकांश

* Theory of Numbers.

† Highly Composite Numbers.

लेख लन्दन की मैथेमेटिकल सोसाइटी और केम्ब्रिज की फिलासाफिकल सोसाइटी की मुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अपसृत श्रेणियों के नवीन सिद्धान्त को जन्म देने और उन्नत बनाने का श्रेय भी श्रीरामानुजन् ही को प्राप्त है।

रामानुजन् के सब छपे मौलिक निबन्धों का संग्रह बड़े आकार के ३५५ पृष्ठों के ग्रन्थ में १९२७ में केम्ब्रिज यूनिवर्सटी प्रेस से प्रकाशित हुआ था। इसका सम्पादन डा० हार्डी, डा० बी० एम० विलसन और और श्री शेषु अय्यर ने किया था। इस ग्रन्थ के अध्ययन के लिए बड़े उच्च और नूतन गणित के ज्ञान की आवश्यकता है। वैसे तो रामानुजन् के समीकरण सिद्धान्त,* सीमित अनुकूल,† अनन्त श्रेणियाँ,‡ आदि आदि सभी काम निराले थे, परन्तु उनके संख्या सिद्धान्त,/ विभजन सिद्धान्त,|| दीर्घ वृत्तीय फल+ और वितत भिन्न × सम्बन्धी गवेषणायें उनके सर्वोत्कृष्ट कार्य समझे जाते हैं। रामानुजन् के बहुत से गवेषणा कार्य ऐसे भी थे, जो उनकी मृत्यु पर्यन्त प्रकाशित नहीं हो पाये थे। इन गवेषणाओं के परिणाम उन्होंने कहीं सूत्रवत्, कहीं अस्पष्ट और कहीं बिना प्रमाण के इधर उधर लिख दिये थे। मद्रास विश्वविद्यालय ने उनके इन समस्त गवेषणाकार्यों को एक सूत्र में आबद्ध कर प्रकाशित कराने का प्रबन्ध किया है। इनके सम्पादन

---

* Theory of Equations. † Difinite Integrals.

‡ Infinite Series. / Theory of Numbers.

|| Theory of Partitions. + Elliptic Functions.

× Continued Fractions.

का कार्य लिवरपूल विश्व विद्यालय के प्रो० डा० विलसन और बर्मिंघम के प्रोफेसर जी० एन वाटसन को सौंपा गया है। प्रो० वाटसन ने रामानुजन् की समस्त अप्रकाशित गवेषणाओं का विधिवत अध्ययन करके उनके प्रकाशित कार्य पर उपोद्घात रूप में लन्दन की मैथेमेटिकल सोसाइटी के सामने कुछ वर्ष पूर्व एक विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया था। इस भाषण में डा० वाटसन ने रामानुजन् के बाल्यकाल से लेकर अन्तिम दिनों तक के प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डाला था और उनका महत्व बतलाया था। रामानुजन् ने इन सब लेखों को अपनी हस्तलिखित प्रति में लिखा था। इस हस्त लिखित कापी में करीब ८०० से अधिक पृष्ठ हैं। यह प्रति आजकल मद्रास बिश्वविद्यालय के अधिकार में है। इसमें लगभग ४००० ऐसे नियम* हैं जिनको उन्होंने बिना प्रमाण लेखबद्ध कर दिया है। रामानुजन् के यह कार्य इतने अधिक और महत्व के हैं कि दो विद्वान् गणितज्ञों के, सम्पादन कार्य में परिश्रम करने पर भी इनके प्रकाशन में ५ साल से कहीं अधिक समय लग जायगा। वैज्ञानिक पत्रिकाओं में, रामानुजन् के गवेषणा कार्य, उनके विज्ञापित परिणाम इत्यादि के सम्बन्ध में अब तक बराबर लेख प्रकाशित होते रहते हैं। यूरोप के बहुत से प्रसिद्ध गणितज्ञों का कहना है कि समय के प्रवाह के साथ रामानुजन् के कार्य को अभी और भी अधिक महत्व और सम्मान मिलेगा।

रामानुजन् की खोज की विलक्षणता का ज़िकर करते हुए डा० हार्डी कहते हैं—

---

* Theorems.

'श्री रामानुजन् की खोज किस दर्जे की हुई, किस आदर्श को सामने रख कर उनके काम की आलोचना की जाय अथवा भविष्य में गणित शास्त्र पर उनकी खोजों का क्या असर पड़ेगा इन सब बातों में मतभेद हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी खोज सरल और स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु फिर भी उसमें एक बड़ी भारी विशेपता है—अखण्ड एवं अद्वितीय मौलिकता। यदि विद्यार्थी अवस्था में उन्हें ठोंक पीट कर आधुनिक नियम और शैली के अनुसार आगे बढ़ाया जाता तो इतना ज़रूर है कि गणित संसार में इनको जो स्थान प्राप्त हुआ है उससे कहीं अधिक ऊँचा स्थान मिलता और उनकी खोज भी कहीं अधिक महत्व पूर्ण होती परन्तु ऐसी हालत में रामानुजन् अपना सब अस्तित्व खो बैठते और निरे योरुपियन प्रोफेसर रह जाते, इस परिवर्त्तन से गणित विज्ञान को लाभ के बदले हानि ही अधिक होती !'

रामानुजन् की मृत्यु के बाद सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में उनके बारे में जो मृत्यु विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी उसके अन्तिम वाक्य से उनके कार्यो का महत्व और भी स्पष्ट हो जाता है। 'इस समय से बीस वर्ष पश्चात् जब कि रामानुजन् के कृत्य से उत्पन्न हुए सब गवेषणा कार्य पूरे हो जायेंगे तब सम्भवत: उनका काम आज की अपेक्षा कहीं अधिक आश्चर्यमय और महत्व पूर्ण प्रतीत होगा।'

श्री रामानुजन् के प्रयत्न से गणित विज्ञान में खोज के लिए अनेक नये मार्ग खुल गये हैं। इण्डियन में मेथेमेटिकल सोसाइटी के मुख पत्र में उन्होंने लगभग ६० प्रश्न किये थे इनमें से २० अभी तक हल नहीं हो सके हैं। डा० हार्डी, श्री वी० वी० शेषु अय्यर और श्री बी० एम०

विलसन आदि के प्रयत्न से रामानुजन् के समस्त प्रकाशित लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो गये हैं। इनके प्रकाशन में रायल सोसाइटी, ट्रिनिटी कालिज, और केम्ब्रिज एवं मद्रास विश्वविद्यालयों ने काफी आर्थिक सहायता पहुंचाई है। उनके बहुत से लेख अभी तक अप्रकाशित हैं। विलायत जाने के पूर्व उन्होंने अपनी नोटबुक में जो लेख लिखे थे वे भी अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

रामानुजन् की असाधारण प्रतिभा सहज थी। संसार उनकी श्रेणी के मनुष्यों की प्रशंसा कर सकता है, उनका कृतज्ञ हो सकता है, परन्तु उन्हें और उनकी मानसिक क्रियाशीलता को समझने के प्रयत्न अभी विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। ३१ अगस्त १९३६ को डा० हार्डी ने अमेरिका में कला विज्ञान की फारवर्ड त्रिशतक कानफरेंस में रामानुजन् पर भाषण देते हुए इस सम्बन्ध में कहा था:—'इस भाषण में मेरा कार्य वास्तव में कठिन है और यदि मैं अपनी असफलताओं के लिए बहाने करना शुरू करूं तो मैं उसे असम्भव भी कह सकता हूं। गणित के आधुनिक इतिहास के सब से विचित्र पुरुष के विषय में मुझे किसी प्रकार का बुद्धि संगत अनुमान लगाना है और आप लोगों को भी ऐसा करने में सहायता देना है। रामानुजन् का जीवन विचित्रता तथा विरोधों से भरा जान पड़ता है। एक दूसरे की बूझ की प्रायः सभी रीतियाँ उनके विषय में असफल रहती हैं। उनके विषय में हम कदाचित इसी एक बात में एक मत रखते हैं कि वह एक महान गणितज्ञ थे।'

रामानुजन् की वंश परम्परा और शिक्षा दीक्षा को ध्यान में रखते हुए उनके कार्य का महत्व और भी अधिक हो जाता है। उनकी शिक्षा

बहुत ही साधारण हुई थी। उन्हें अर्ध शिक्षित भारतीय कहना भी असंगत न होगा। वास्तव में उन्हें भारतीय शिक्षा—चाहे वह कैसी भी हो—से कभी लाभ उठाने का अवसर न मिला। वह भारतीय विश्व विद्यालय की प्रथम परीक्षा भी न पास कर सके।

अपने जीवन के अधिक भाग में यूरोपियन गणित से लगभग अज्ञानता की दशा में कार्य करते रहे और ३३ वर्ष की अवस्था में जब कि उनकी शिक्षा कुछ अर्थों में कठिनता से प्रारम्भ हुई कही जा सकती थी, वे चल बसे। उन्होंने जो कुछ कार्य किया उसमें कुछ नवीनता है परन्तु डा० हार्डी के शब्दों में "उससे भी अधिक पुनर्खोज है और प्राय: अधूरी। कभी कभी यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि रामानुजन् को उन बातों की खोज करनी भी चाहिये थी जब कि वे उन्हें कहीं से सीख सकते थे। अब तक किसी ने यह नहीं कहा है कि वह कितने बड़े गणिताचार्य थे* और यह तो और भी कम कहा गया है कि वे कितने बड़े हुए होते।"

---

*American mathematical monthly. pp. 137-155-1937

विज्ञान भाग ५३, सं० १, अप्रैल १९४१-१-१९

गणित विज्ञान विशारद

डा० गणेश प्रसाद एम० ए० डी० एस-सी०

[१८७६-१९३५]

डा० गणेश प्रसाद श्रीनिवास रामानुजन् ही की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के गणितज्ञ थे। भारत ही नहीं संसार के उत्कृष्ट गणितज्ञों में उनकी गणना की जाती थी। अपने समय के वह भारत के सर्वोत्कृष्ट गणितज्ञ थे। वास्तव में विगत ३०० वर्षों में भारत में उनका सरीखा गणित का प्रकाण्ड पण्डित पैदा नहीं हुआ था। संसार प्रसिद्ध, भारत के इस सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ के जन्मस्थान होने का गौरव युक्त प्रान्त के सब से छोटे नगर बलिया को प्राप्त हुआ था। गणेश प्रसाद के पिता मुन्शी रामगोपाललाल बलिया के प्रसिद्ध कानूनगो थे। उनके दादा और परदादा भी प्रसिद्ध कानूनगो थे। मुन्शी जी की पहली शादी शाहाबाद के कायस्थों के प्रसिद्ध गावँ मुरारपट्टी के निवासी मुन्शी रामजियावन लाल मुख्तार की पुत्री से हुई थी। इन्हीं से गणेश प्रसाद का जन्म सम्वत् १९३३ के अगहन मास की अमावस्या, तदनुसार १५ नवम्बर १८७६ ई० को हुआ था। मुन्शी जी का दूसरा विवाह श्रीपालपूर जिला बलिया के निवासी बाबू महादेव प्रसाद वकील की पुत्री से हुआ। इस विवाह से तीन पुत्र रघुनन्दन प्रसाद, उमाशंकर और रमाशंकर हुए। इनमें से प्रथम दो डा० गणेश प्रसाद के सामने ही इस लोक से विदा हो चुके थे।

प्रख्यात गणितज्ञ डा० गणेशप्रसाद
[१८७६—१९३५]

प्रारम्भिक शिक्षा

गणेश प्रसाद की पढ़ाई बलिया ज़िला स्कूल में आरम्भ हुई। पाँचवें क्लास में वे फेल हो गये थे। कहा जाता है कि वे इस दर्जे में गणित में फेल हुए थे। वास्तव में यदि यह बात सत्य है तो आगे चलकर उनके महान गणितज्ञ होने का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। अंग्रेज़ी मिडिल की परीक्षा, जो इस समय शिक्षाविभाग की ओर से होती थी, द्वितीय श्रेणी में पास की। उसके बाद उत्तरोत्तर उन्नति करते गये। नवें दर्जे में अव्वल रहे। दसवाँ दर्जा गवर्नमेंट हाई स्कूल बलिया से प्रथम श्रेणी में पास किया। बाल्यावस्था से ही वे पढ़ने में अधिक परिश्रम करते थे। खेल कूद में उन्हें विशेष रुचि न थी। इन्ट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के साथ ही उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति भी मिली। स्कूल के हेडमास्टर बाबू रामनारायण सिंह की सम्मति में वह प्रशंसायोग्य छात्र थे। परिश्रम करते हुए भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा होगा। आठवें दर्जे में साल भर में केवल एक दिन ग़ैर हाज़िर रहे थे और दसवें दर्जे में ५ दिन। नवें दर्जे में तो एक भी नागा न हुआ। इससे सिद्ध होता है कि विद्यार्थी जीवन में भी वह नियमपूर्वक रहते थे। स्कूल छोड़ने के बाद म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग में भर्ती हुए और कालेज में भी समय के सदुपयोग का ऐसा अच्छा अभ्यास किया कि उनके सहपाठियों ने उनके परिश्रम और अध्ययन को देखकर उनको फिलासफ़र की उपाधि से विभूषित किया था। कालेज में भी वह दिन पर दिन उन्नति करते गये और सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास कीं।

विवाह

बड़े ज़मीदार और ख़ानदानी कानूनगो के पुत्र होने के कारण गणेशप्रसाद का विवाह केवल ६ * साल की उम्र ही में लोदीपूर ज़िला शाहाबाद के वकील मुंशी डोमनलाल की पुत्री नन्दकुमारी से हुआ था। उनका वैवाहिक जीवन बहुत ही सूक्ष्म रहा। सोलह वर्ष की अवस्था में प्रथम तथा अन्तिम सन्तान कृष्णाकुमारी का जन्म हुआ और कुछ समय के बाद ही कृष्णाकुमारी मातृ हीन हो गई। इस समय गणेश प्रसाद म्योर सेन्ट्रल कालिज में एम० ए० में गणित पढ़ रहे थे।

गणेशप्रसाद को उस समय ही गणित से इतना प्रेम हो चुका था कि दूसरे विवाह का भाव उनके हृदय में अंकुरित ही नहीं हुआ और शायद अपनी पत्नी का वियोग भी अत्यधिक न अखरा। वह अपनी पुत्री कृष्णा कुमारी को बहुत प्यार करते थे। परन्तु वह भी अधिक दिनों तक उनके गणित के अध्ययन में बाधक न रही। १६ वर्ष की आयु ही में अपनी माता के लोक को चली गई। उसकी स्मृति में बाद में डा० गणेश प्रसाद ने कलकत्ता और आगरा विश्वविद्यालयों में प्रति वर्ष कृष्णा कुमारी पारितोषिक दिये जाने के लिए यथेष्ट रुपया जमा कर दिया था।

विश्वविद्यालय के प्रथम डी० एस-सी०

एम० ए० पास करने के बाद गणेशप्रसाद ने प्रयाग विश्वविद्यालय से गणित में डाक्टरी की परीक्षा पास करने की अनुमति माँगी। उस

---

* राम इकबाललाल श्रीवास्तव : डा० गणेशप्रसाद का वंश और जन्म। —विज्ञान भाग ४१, ६–२०२.

समय तक इस परीक्षा का केवल नाम मात्र का आयोजन भर था। कोई विद्यार्थी इस परीक्षा में शामिल न हुआ था और न इसके लिए कोर्स ही बना था। कई बार प्रार्थना करने पर भी उनको इस परीक्षा में बैठने की अनुमति न मिल सकी। परन्तु वह बराबर प्रयत्न करते ही रहे और अन्त में अधिकारियों को उन्हें अनुमति देनी ही पड़ी। दिसम्बर या जनवरी में; परीक्षा में बैठने की इजाज़त मिली और मार्च में परीक्षा हुई। फिर भी वह परीक्षा में योग्यता पूर्वक पास हो गये। प्रयाग विश्वविद्यालय से गणित में डी० एस-सी० की उच्च परीक्षा पास करने वाले गणेश प्रसाद प्रथम व्यक्ति थे।

उनके विद्यार्थी जीवन के बारे में उनके कालिज के सहपाठी मुन्शी ईश्वर शरण के कुछ वाक्य यहां उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा:— "घन्टा बजा नहीं और गणेश प्रसाद होस्टल से क्लास की ओर दौड़ते दीखते थे। छुट्टी के घन्टे के बजते ही छतरी लेकर होस्टल के कमरे की ओर भागते दीखते थे। एक मिनट भी खोना या बरबाद करना उन्हें मंजूर न था। * * वह कालिज में पढ़ते ही थे कि चारो ओर कालिजों में उनका नाम मशहूर हो चुका था और कुतूहल वश उन्हें देखने को बाहर के छात्र आया करते थे। परन्तु वह किसी से बोलते न थे। अपने काम से काम। कोई ज़रूरी बात पूछी जाती तो वह जवाब दे देते थे। उनके पास शुद्ध कुतूहल के प्रश्नों का उत्तर देने का समय न था। हर मिनट की कीमत थी। खोने को एक न था। * * * वह आदर्श विद्यार्थी थे। उनका जीवन बेतरह सादा और बड़ी कड़ाई के संयम का था। घोर परिश्रम करने की उनकी अद्भुत शक्ति एक दैवी

घटना थी। वह बड़े सच्चे और स्नेही मित्र थे। अपने मित्रों की वह घोर से घोर विपत्ति में भी सहायता करते थे। उनके लिए कोई बात उठा न रखते थे।"

विदेश यात्रा और बिरादरी

डी० एस-सी० पास करने के बाद डा० गणेशप्रसाद को भारत सरकार का स्टेट स्कालरशिप प्राप्त हुआ। वह १८९९ ई० में गणित के ऊंचे दर्जे के विद्यार्थी बन कर केम्ब्रिज गये। उन दिनों भारत में केवल ५ विश्वविद्यालय थे। पांचों विश्वविद्यालयों में बारी बारी से हर पांचवें साल एक सरकारी छात्र वृत्ति मिलती थी। डी० एस-सी० पास करने के बाद यही छात्र वृत्ति डा० गणेशप्रसाद को प्राप्त हुई।

आज से लगभग ४१-४२ वर्ष पूर्व जिस समय डा० गणेशप्रसाद सरकारी वजीफा पाकर अध्ययन के लिए विलायत जाने वाले थे, जाति पांत की कट्टरता का बन्धन आजकल के समान ढीला न हुआ था। लोगों के विचार बहुत ही संकीर्ण और अनुदार थे। कायस्थ जाति इस मामले में खास तौर पर पिछड़ी हुई थी और उसके पंचों का विश्वास था कि समुद्र यात्रा से जाति भ्रष्ट हो जाती है। अस्तु डा० गणेशप्रसाद को विलायत भेजने में उनके पिता को बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। विलायत से वापस आने पर उन्हें बिरादरी में शामिल करने की चेष्टायें भी निष्फल हुईं। उस अवसर पर बिरादरी के लोगों ने तथा उनके रिश्तेदारों ने उनके साथ जो रूखा और अशिष्ट व्यवहार किया उसका डाक्टर साहब के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा। वह उसे अपनी ज़िन्दगी में कभी भी न भुला सके।

बिरादरी में झगड़ा होने पर भी उनके पिता जी ने प्रायश्चित्त का बंदोबस्त किया। हवन कराया गया, कथा हुई। ब्राह्मण पण्डितों ने भक्ष्याभक्ष्य दोष निवारणार्थ पञ्चगव्य प्राशन का प्रस्ताव किया। डाक्टर साहब ने ऐसा करने से दृढ़ता पूर्वक इनकार कर दिया। जिसने सिगरेट तक मुंह से न लगाई, मांस मदिरा हाथ से भी न छुई, स्त्री के मरने के बाद से यहीं से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करता रहा, वह जब केवल विद्याध्ययन के लिए विलायत जावे और वहाँ भी दृढ़ता पूर्वक इन व्रतों का पालन करे तो उसे पञ्चगव्य प्राशन की आवश्यकता ही क्या है? पण्डितों ने आग्रह किया कि शुद्ध रहते भी प्राशन में हर्ज क्या है? इस पर डाक्टर गणेशप्रसाद ने कहा था:— भारी हर्ज है और वह हर्ज है कि मानों मुझे अपना ही विश्वास नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता।"

अस्तु। बिरादरी के भोज में शामिल न होने से डाक्टर साहब के स्वाभिमान को बड़ा धक्का लगा और उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अपने काम से काम रखूंगा। समाज में बिरादरी गैर बिरादरी, किसी से कोई सम्बन्ध न रखूंगा। डाक्टर साहब ने किसी के साथ बैठ कर खाना ही त्याग दिया, चाहे वह फल ही क्यों न हो। घोर तपस्या और संयम का जीवन अपना लिया। ब्रह्मचर्यव्रत, एकान्त वास और शुद्धाचरण से अपना समय व्यतीत करने लगे। समाज से अलग रहने लगे। देशी विदेशी, छोटा बड़ा, किसी से भी मिलना जुलना रवा न रखा।

विदेशों में अध्ययन

विलायत में वह तीन साल रहे। पहिले ही से वह केम्ब्रिज के शिक्षकों और विद्यार्थियों में एक योग्य गणितज्ञ की हैसियत से प्रसिद्ध

और लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। स्वर्गीय क्नापमैन* सरीखे उद्भट गणितज्ञ उनकी योग्यता के कायल हो गये थे और उनको श्रेष्ठ गणित शास्त्री मानने लगे थे। जब वह केम्ब्रिज की डिग्री के लिए तैयारी कर रहे थे, तभी उनके अध्यापक प्रख्यात डा० हाब्सन ने केम्ब्रिज की फिलासफिकल सोसाइटी और लन्दन की मैथेमेटिकल सोसाइटी के सामने उनसे खोज सम्बन्धी निबन्ध पढ़वाये थे। वह केम्ब्रिज से भारत में अपने अध्यापकों से बराबर पत्र व्यवहार करते रहते थे। अपने पत्रों में वह विस्तार से लिखा करते थे कि कहां किन किन विषयों पर किन किन विद्वानों के व्याख्यान हो रहे हैं जिनमें वह जाते थे और वह स्वयं खोज सम्बन्धी क्या क्या निबन्ध लिख रहे थे। अपने प्रोफेसर स्वर्गीय होमर्सहामकाक्स के पास वह इस प्रकार की चिट्ठियाँ खास तौर पर भेजा करते थे। गणित सम्बन्धी तर्क में जहाँ कहीं भूल छिपी होती थी उसको तुरन्त पकड़ लेने का उनमें एक विशेष गुण था। अपनी छात्रावस्था ही में उन्होंने बड़े बड़े गणिताचार्यों की भूलें दिखलाई थीं और बाद में भी यही क्रम जारी रहा।

प्रमुख गणिताचार्यों का सत्संग

केम्ब्रिज की डिग्री लेकर डाक्टर गणेशप्रसाद जर्मनी के गाटिंजन नगर के विद्यापीठ में जाकर क्लैन, हिलबर्ट और ज़ोमरफील्ड सरीखे गणिताचार्यों के पास गणित का परिशीलन करने लगे। डा० गणेशप्रसाद का यह अपूर्व सौभाग्य था कि उन्हें केम्ब्रिज में

---

* Knapmar.

हाब्सन, फार्सिथ, लारमर, टामसन और बेकर सरीखे गणित के प्रकाण्ड विद्वान् शिक्षक मिले और गाटिजन में उन्हें क्लैन, हिलबर्ट, जोमरफील्ड और कान्टोर ने पढ़ाया और उनके हृदय को गवेषणात्मक कार्यों के लिए अनुप्राणित किया। डा० गणेशप्रसाद की प्रतिभा भी असाधारण थी और वह अपने आचार्यों की शिक्षा का पूरा लाभ उठा सकते थे। इन अग्रणी विद्वानों का सत्संग ही एक भारी शिक्षा थी। एक दिन शाम के प्रीतिभोज में डा० गणेशप्रसाद भी सम्मिलित हुए। वहाँ उनकी सुप्रसिद्ध गणिताचार्य डाक्टर कान्टोर से भेंट हुई। कान्टोर था सो सत्तर बरस से अधिक बूढ़ा, परन्तु लम्बा तड़ंगा, हट्टा-कट्टा और मानसिक शक्ति के यौवन से पूर्ण ओत प्रोत था। उसने अपना परिचय इन्हें स्वयं जर्मन भाषा में 'इख बिन ग्यार्ग कान्टोर' [मैं ही जार्ज कान्टोर हूं] कह कर दिया। इस परिचय के ढंग से स्पष्ट है कि डा० गणेशप्रसाद का यश कान्टोर तक पहुंच चुका था और गुरु के मन में अपने भावी शिष्य के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। बाद के जीवन में तो उनका ऐसा यश फैला कि संसार के विश्व विख्यात प्रमुख गणिताचार्यों ने उन्हें अपना समकक्ष मानने में अपने को गौरवान्वित समझा।

गणित के प्रोफेसर

विलायत से लौटने पर वह प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में गणित के अतिरिक्त प्रोफेसर नियुक्त किये गये। उस समय उनके गुरु मि० होमरशमकाक्स भी वहीं प्रोफेसर थे। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और

इटालियन भाषाओं में जितनी उच्च गणित की पुस्तकें डा० गणेशप्रसाद ने पढ़ी थीं, उन सब का जिकर होने लगा। प्रोफेसर काक्स ने उस समय तक उनमें से अधिकांश पुस्तकों को पढ़ा भी न था। वह उस समय प्रयाग की पब्लिक लाइब्रेरी के सेक्रेटरी थे। दस बारह हज़ार रुपये खर्च करके उन्होंने लाइब्रेरी में उच्च गणित की उन सभी पुस्तकों को मंगवा कर पढ़ डाला।

डा० गणेश प्रसाद की प्रयाग विश्वविद्यालय में नियुक्ति के एक साल के भीतर ही काशी के क्वींस कालेज के गणित के प्रोफेसर महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने पेंशन ली। डा० गणेशप्रसाद को उनके स्थान पर नियुक्त करके बनारस भेजा गया। वहाँ डाक्टर साहब ही गणित के एक मात्र प्रोफेसर थे और उन्हें चार कक्षाओं को अकेले ही चार घन्टे रोज़ाना गणित पढ़ाना होता था। दस बजे से दो बजे तक वह कालेज में पढ़ाते थे। कालेज जाने से पहिले सुबह के समय दो विद्यार्थियों को गणित की डी० एस-सी० परीक्षा की तैयारी में सहायता पहुंचाते थे। वह जिस दर्जे को पढ़ाते थे, उसके हरेक विद्यार्थी पर अलग अलग ध्यान रखते थे, सो भी इस हद तक कि हर एक लड़का दर्जे में घंटे भर कस कर काम करके थक जाता था। प्रत्येक विद्यार्थी रोज़ ही इतनी शिक्षा पा जाता था कि परीक्षा में एक भी गणित में फेल न होता था। वह घूम घूम कर हर लड़के का काम देखने में काफी वक्त लगाते थे और हरेक के काम पर टीका टिप्पणी करते, समझाते, राह बताते और तैयारी की कमी पर नसीहत करते थे।

नियमों के पाबन्द और सादा जीवन

अपने नियमों की वह कड़ी पाबन्दी करते थे। कड़े से कड़ा जाड़ा पड़ता हो, या मूसलाधार पानी ही क्यों न बरसता हो उनके कार्यक्रम में कोई अन्तर न पड़ता था। वह दो घोड़ों से जुती हुई गाड़ी में कालेज जाया करते थे। कभी संयोग से गाड़ी वाले को देर हो गई तो पैदल चल देते थे और अपने छोटे छोटे मगर तेज़ कदमों से ठीक समय पर कालेज निश्चय ही पहुंच जाते थे। गाड़ी वाले को ऐसे समय पर हाज़िर होना पड़ता था कि यदि उसके आने में देर हो जाय तो डाक्टर साहब पैदल कालेज अवश्य पहुंच सकें।

डाक्टर साहब एक प्याला चाय, सेर भर दूध और कुछ बिस्कुट खाकर कालेज पहुंच जाते थे। और किसी प्रकार के बढ़िया या सुस्वादु भोजन की उन्हें दरकार न थी। शाम को वह हलवाई के यहाँ से चार पूरियाँ मँगवाकर खाते थे। एक ख़ास हलवाई निश्चित समय पर उनके लिए ख़ास तौर पर उसी समय पूरियाँ तैयार करता था, नौकर चायवाली मेज़ पर दोना और प्याला भर पानी रख देता था। इससे ज़्यादा उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत ही न होती थी। इस भोजन के बाद वह कुछ देर आराम ज़रूर करते थे। उनकी यह आदत आदि से अन्त तक रही।

उनका निजी सामान भी बहुत थोड़ा था। रसोई, चौके, चूल्हे और बर्तन की ज़रूरत न थी। बँगले के कमरे खाली पड़े रहते थे। सामान या सजावट का नामोनिशान भी न था। जिस कमरे में वह स्वयं रहते थे उसकी भी सजावट क्या थी—किताबों की एक अल्मारी,

एक चारपाई, किताबों से भरे हुए कुछ बक्स और लैम्प के बदले मोमबत्ती। चारपाई पर भी फैले हुए अखबार बिस्तर का काम देते थे और किताबें तकिये का। डाक्टर साहब की दिनचर्या का यह क्रम छै बरस तक चला। यह बड़े संयम और तपस्या की जीवनी थी। इस बीच में उन्होंने उच्च गणित की कई पाठ्य पुस्तकें लिखीं। बाद में भी, यथेष्ट धन उपार्जित करने लगने पर, उनके सादा रहन सहन में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

गणित ही के काम से मिलते

जब डाक्टर साहब प्रयाग में थे तब कभी कभी खास खास लोगों से मिल भी लेते थे, परन्तु काशी में पहुंच कर उनके नियम अधिक कड़े हो गये। लिखकर पूर्व-नियुक्ति करा लेने वाला ही ठीक समय पर जाकर मिल सकता था। उनके बंगले में, साधारण आने जाने वालों को हुक्म ही न था। जिस कमरे में वह स्वयं रहते थे केवल उसी की खिड़कियाँ खुली रहती थीं, बाकी सब इस तरह बन्द रहता था मानों खाली ही हो। कहीं कोई आदमी भी न देख पड़ता था। केवल एक नौकर रहता था। बिना पूर्व-नियुक्ति के यदि कोई जाता भी तो सन्नाटा पाता। खोजकर आदमी तक पहुंचता भी तो उसे जो आदेश मिला रहता था उसके अनुसार उत्तर दे देता था—"डाक्टर साहब गणित ही के काम से मिलते हैं और उसके लिए भी तब मिलते हैं जब पहिले ही से समय तय कर लिया जाता है। और किसी काम से आपका और अपना समय बरबाद न करेंगे। आपका हठ बृथा है।" इतने पर भी यदि कोई विशेष आग्रह करता तो नौकर डाक्टर साहब के पास कार्ड

ले जाता था। डाक्टर साहब बड़ी कठिनाई से दो एक मिनट दे देते थे। मिलने वाला मिलकर भी प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं होता था और न मिलने पर निराश हो लौट जाता था। कई बड़े बड़े प्रतिष्ठित मिलने वाले निराश हो लौट गये। डाक्टर साहब इस रूखेपन के लिए बदनाम हो गये थे।

जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है उनकी पत्नी का देहान्त उनकी इंगलैंड यात्रा के पहिले ही हो गया था। विलायत से लौटने पर मित्रों के बहुत कुछ अनुरोध करने पर भी उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया। वास्तव में उन्होंने अपना जीवन जो इतने कठिन रूप में नियम बद्ध किया था वह अपनी चरित्र रक्षा और ब्रह्मचर्य ही के लिए। अपने अन्तिम दिनों में वह कहा करते थे कि अब मैं पचास के ऊपर हो गया, अब बचे हुए दिन निबाहना मुश्किल नहीं है। पहले मैं काम, क्रोध, लोभ से बिलकुल दूर रहने के लिए और संयम के लिए अपने चारों ओर एक प्रकार का किला सा बनाया करता था। कोई स्त्री मेरे बंगले के फाटक के अन्दर नहीं आ सकती थी। समाज से मुझे अपना सम्बन्ध तोड़ देना पड़ा था। लोगों के यहाँ आना जाना एक प्रकार से बिलकुल बंद था। कोई रिश्तेदार मेरे यहां आकर रहता तो मेरे सामने कठिन समस्या आ पड़ती थी, इसी से लोग मुझे अमिलनसार तथा घमण्डी भी कहने लगे थे। पर वास्तव में मेरे ऐसे स्वरूप का कारण ही दूसरा था।

इसी बीच डाक्टर साहब की एक मात्र कन्या कृष्णाकुमारी की १६१२ में असामयिक मृत्यु हुई। इससे उनके जीवन में घोर मान-

सिक परिवर्त्तन हो गया। इस दुर्घटना से वह ऐसे शोकमग्न रहे कि उनका पढ़ना लिखना छूट सा गया। उनका जीवन कटु हो गया और उन्हें किसी भी काम में कोई रस न रह गया। इस अवस्था से निकलने में महीनों लग गये। परन्तु उनका आपा सा बदल गया और वह पहले से गणेशप्रसाद न रहे।

कलकत्ते में प्रोफेसर

उनका एकान्त वास प्रायः समाप्त हो गया। अब वह विभिन्न विषयों पर बात-चीत करने लगे थे फिर भी सिवाय कालेज जाने के वह घर छोड़ कर बाहर न जाते थे। कलकत्ते के गणितज्ञों से अलबत्ता उन्होंने अपना घनिष्ट सम्बन्ध जोड़ लिया था। वह कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसाइटी में भी दिलचस्पी लेने लगे और उसके अधिवेशनों में सम्मिलित होने के लिए कलकत्ता जाना भी शुरू कर दिया। १९१० ई० में उन्होंने वहाँ की गणित परिषद में अपना पहला निबन्ध पढ़ा। १९१२ में दूसरा। फिर तो वह कलकत्ते के विद्वत्समाज में काफी प्रसिद्ध हो गये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर सर आशुतोष मुखोपाध्याय भी शीघ्र ही उनकी विद्वत्ता के कायल हो गये और १९१४ में उन्होंने आपको विश्वविद्यालय के नवस्थापित साइंस कालेज में प्रयुक्त गणित* के आचार्य की रास बिहारी घोष वाली गद्दी पर नियुक्त किया। चार वर्ष तक कलकत्ते में रहने के बाद १९१८ ई० में वह फिर काशी वापस आगये। इस बार आपको काशी विश्वविद्यालय के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया।

* Applied Mathematics.

इस कालेज में उन्होंने गणित विज्ञान की अध्यापन प्रणाली का नये ढंग से संगठन किया। वहाँ पहुंचते ही आपने गणितसम्बन्धी अनुसन्धान के लिए ७५) मासिक की दो छात्रवृत्तियाँ दिलाने का प्रबन्ध कराया। गणित की विशेष उन्नति तथा उसके अनुसन्धान के लिए उन्होंने बनारस मैथेमेटिकल सोसाइटी नाम की एक विशेष संस्था की स्थापना की। यह संस्था आज तक बराबर अनुसन्धान कार्य कर रही है।

हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल

हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल पद पर रहते समय उन्हें ६ बजे प्रातःकाल से ७-८ बजे रात तक लगातार काम में लगे रहना पड़ता था। कभी कभी विश्वविद्यालय की विविध समितियों और संस्थाओं जैसे सीनेट, फैकल्टी, कौंसिल आदि के अधिवेशन के दिनों में तो १०-११ बजे रात तक घर जाना मामूली सी बात रहती थी। इतना कठिन परिश्रम करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और वह बीमार रहने लगे पर उनके कार्य क्रम में फिर भी ज़रा सा फरक नहीं पड़ा। वह अक्सर तेज़ बुखार की दशा में भी बराबर काम करते रहते थे। इष्ट मित्रों के आराम करने और छुट्टी लेकर उचित औषधि सेवन के लिए अनुरोध करने पर वह कह देते कि यह सम्भव नहीं है। मैं अपने काम से नहीं हट सकता। पठन पाठन का काम तो मेरे लिए टानिक का काम करता है। दर्जे में आने से मेरी तबीयत बहल जाती है।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने की है कि डा० गणेश प्रसाद हिन्दू कालेज में अवैतनिक प्रिंसिपल थे। उन्हें विश्वविद्यालय से केवल

गणित विज्ञान के आचार्य ही का वेतन मिलता था। प्रिंसिपल के काम के लिए वह कालेजसे एक भी पैसा न पाते थे। उनकी कर्त्तव्य परायणता ही उन्हें काम में लगे रहने के लिए प्रोत्साहित करती थी। प्रोफेसरी का काम सप्ताह में २४ घंटे से अधिक न था, परन्तु प्रिंसिपल का काम वह सुबह ६ बजे से शाम के ६ बजे तक और कभी कभी उससे भी अधिक समय तक करते रहते थे। इतने अधिक व्यस्त रहने पर भी वह नियमित रूप से गणित पढ़ाते, गवेषणा के लिए आदेश देते और स्वयं अनुसन्धानकार्य करते। लगातार इतना अधिक परिश्रम करने से उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। उनको विवश होकर डेढ़ वर्ष बाद प्रिंसिपली का काम छोड़ देना पड़ा। इसके बाद वह केवल गणित के आचार्य रहे, परन्तु फिर भी विश्वविद्यालय के संचालन में बराबर सक्रिय भाग लेते रहे। विश्वविद्यालय की प्रत्येक समिति में उनकी सलाह की ज़रूरत पड़ती थी। १९२३ में विश्वविद्यालय के अधिकारियों से कुछ मनमुटाव हो जाने के कारण उन्होंने हिन्दू कालेज के आचार्य का पद भी त्याग दिया। उस समय से अन्तिम समय तक ९ मार्च १९३५ तक वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में उच्च गणित के हार्डिंज प्रोफेसर बने रहे।

इस बीच में भारतवर्ष के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के सर्व-श्रेष्ठ गणित के विद्यार्थी अनुसन्धान कार्य के लिए बराबर डा० गणेशप्रसाद ही के पास जाते थे। कभी कभी तो ८–१० विश्वविद्यालयों के एम० ए० अथवा एम० एस-सी० में गणित लेकर प्रथम आने वाले छात्र उनके पास एक साथ आकर इकट्ठा हो जाते थे। डाक्टर साहब बड़ी

योग्यता एवं प्रसन्नता के साथ उन सभी को विभिन्न विषयों में अनुसन्धान कार्य करने में परामर्श देते और बड़ी खुशी के साथ उनके अनुसन्धान कार्य का संचालन करते। वास्तव में ८–१० विद्यार्थियों को सर्वथा नवीन समस्याओं पर मौलिक कार्य करने के लिए एक साथ परामर्श देना और उनके मौलिक अनुसन्धानों में सहायता देने के साथ ही स्वयं विभिन्न अत्यन्त गूढ़ समस्याओं पर कार्य करना डा० गणेशप्रसाद जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति ही का काम था।

गवेषणायें और रचनायें

डा० गणेश प्रसाद ने गणित सम्बन्धी मौलिक गवेषणायें अपने विद्यार्थी जीवन ही से आरम्भ कर दी थीं। केम्ब्रिज में अध्ययन करते समय ही उन्होंने केम्ब्रिज की फिलासाफिकल सोसाइटी और लन्दन की मैथेमेटिकल सोसाइटी के सामने अपने खोज-निबन्ध पढ़ना शुरू कर दिया था। उनके एक अध्यापक प्रख्यात डा० हाब्सन उन्हें इस तरह की बातों में भाग लेने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित करते रहते थे। वास्तव में जब से उन्होंने होश संभाला तब से मृत्यु पर्यन्त गणित उनका जीवन और प्राण रहा। जो लोग उन्हें अच्छी तरह जानते थे उन्हें खूब मालूम था कि उनका उठना बैठना, सोना, सांस लेना सब कुछ गणित ही था। केम्ब्रिज से अपनी विद्यार्थी अवस्था में उन्होंने अपने अध्यापक स्वर्गीय प्रो० हानर्सहामकाम्स के नाम अपनी मौलिक गवेषणाओं के बारे में कई पत्र लिखे थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि "आजकल मेरा ध्यान दैर्घ्यफलों* और गोलीय हरात्मकों† पर लगा हुआ है और

* Elliptic Functions, † Spherical Harmonics.

मैं एक विशेष समस्या के सुलझाने में एकदम ब्यस्त हूं।" इस समस्या का स्पष्टीकरण और सुलझाव कुछ काल पीछे १६०० ई० में मैसेंजर आफ मैथमेटिक्स* नामक पत्र में छपा था। डाक्टर साहब का यह पहला खोज निबन्ध था। डाक्टर रौट जैसे विद्वान् ने स्थिति विद्या पर एक स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थ में उस लेख को आदर पूर्वक प्रमाण माना है। इस निबन्ध में उन्होंने प्रख्यात गणिताचार्य केले† की भूल दिखलाई थी। वास्तव में अपने गणित शास्त्रीय जीवन के आरम्भ में ही गणित की किसी गूढ़ समस्या की जड़ तक पहुंचने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। गणित सम्बन्धी तर्क में जहाँ कहीं भूल छिपी होती थी उसको तुरन्त पकड़ लेने का उनमें विशेष गुण था। अपनी छात्रावस्था से लेकर अन्त तक उन्होंने बड़ी निर्भीकता पूर्वक बड़े बड़े गणिताचार्यों की भूलें दिखलाईं और इस प्रकार उन्हें जीवन पर्यन्त अपना मित्र बना लिया। अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पहिले उन्होंने एक फ्रान्सीसी गणिता-चार्य प्रो० लेवेंस्ग को बतलाया कि उनके नाम से प्रसिद्ध प्रमेयोपपाद्य 'लेवेस्ग का प्रतिमान'‡ जिस तरह व्यक्त किया जाता है ठीक उसी रूप में नहीं किया जाता जो उन्होंने उसे आरम्भ में दिया था। गणिताचार्य लेवेस्ग ने अपनी भूल स्वीकार की और डाक्टर गणेश प्रसाद के परामर्श के अनुकूल उसका संशोधन किया।

---

* Messenger of mathematics Vol 30, pp. 8-15-1900

† Cayley

‡ Lebesgue's critereion

अस्तु, केम्ब्रिज में अध्ययन करते समय ही उन्हें उच्च-गणित सम्बन्धी मौलिक अनुसन्धान करने की चाट लग गई थी। अध्ययन करते समय जब जब उन्हें छुट्टी मिलती वह जर्मनी के सुप्रसिद्ध गाटिंजन विश्वविद्यालय में अध्ययन करने चले जाते थे। केम्ब्रिज ही में उन्होंने बड़े परिश्रम से एक और गवेषणात्मक निबन्ध 'ताप के गुण और परमाणुओं पर उसका प्रभाव' * लिखा। इस निबन्ध को उन्होंने केम्ब्रिज के प्रख्यात गणिताचार्यों को दिखलाया। निबन्ध इतना गूढ़ था कि उनकी निगाह में जंचा नहीं। डाक्टर साहब अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने उस निबन्ध को गाटिंजन जाकर डाक्टर क्लैन को दिखलाया। एक महीने की जांच पड़ताल के बाद डा० क्लैन ने उत्तर दिया कि उनका प्रश्न और उसका उत्तर निर्विवाद सही है। बाद में डा० क्लैन ने उस निबन्ध को गाटिंजन की विज्ञान परिषद के मुखपत्र † में छपवा कर डाक्टर गणेश प्रसाद का विशेष सम्मान किया। यह लेख भी बाद में कई उच्चकोटि के ग्रन्थों में प्रमाण माना गया है। उसके बाद आपके कई मौलिक निबन्ध जर्मनी की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक ‡ पत्रिकाओं में और प्रकाशित हुए। काशी के क्वीन्स कालेज में रह कर उन्होंने अध्यापन काल से समय निकालकर अनुसन्धान कार्य जारी रक्खा और कई महत्वपूर्ण गवेषणायें कीं। इनमें से कई तो निबन्ध रूप में कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसाइटी के बुलेटिनों में प्रकाशित की गईं और कुछ जर्मनी

---

* Properties of Heat & Constitution of matter.

† Gottingen Abhandlungen vol 2, No. 467 pp. 1903.

‡ Gottingen Nachrichten pp. 201-204, 1904.

की प्रतिष्ठित गणित पत्रिका * में प्रकाशित हुई। बाद में तो फिर यह गवेषणा कार्य इतनी तीव्र गति से चला कि गणित संसार आश्चर्य चकित हो गया। भारत के अतिरिक्त इंगलैंड, फ्रांस, जर्मन, अमेरिका, इटली और जापान प्रभृति प्रायः सभी देशों की प्रतिष्ठित गणित एवं वैज्ञानिक पत्रिकायें आपके मौलिक गवेषणात्मक निबन्धों को प्रकाशित करना अपना गौरव समझने लगी थीं।

डाक्टर साहब क्वींस कालेज में १९०५ से १९१४ ई० तक रहे। इस बीच उनके कई मौलिक निबन्ध कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसाइटी के बुलेटिन में भी प्रकाशित हुए। इससे वह कलकत्ते के गणितज्ञों में बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखे जाने लगे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइसचांसलर सर आशुतोष मुकर्जी उनके मौलिक कार्य से विशेष रूप से प्रभावित हुए और फलस्वरूप उन्होंने आपको कलकत्ता विश्वविद्यालय में गणित का आचार्य बनाकर बुला लिया। कलकत्ते में भी उनका गवेषणा कार्य अबाध्य गति से चलता रहा। इस बीच में उनके मौलिक निबन्ध कलकत्ते की गणित परिषद के अतिरिक्त कई विदेशी पत्रिकाओं † में भी प्रकाशित हुए।

---

* Mathematische Annalan vol 61, pp. 203-210, 1905.
    „ „ vol 64, pp. 136-141, 1907.

† The Philosophical Magazine (sixth series) vol 34, pp. 138-142, 1918
    „ „ vol 36, pp. 475-76, 1918.

Rendiconti circolomatemdi. Palermo vol 42, pp. 127, 1917.

'बनारस मैथमेटिकल सोसाइटी' की स्थापना

१६१८ में वह फिर काशी लौट आये। काशी में उनको कालेज के काम में कभी कभी १५-१६ घंटे तक लगातार लगा रहना पड़ता था, लेकिन फिर भी गणित के लिए समय निकाल ही लेते थे। वास्तव में गणित सम्बन्धी कार्य किये बिना उन्हें सन्तोष और शान्ति प्राप्त ही न होती थी। विश्वविद्यालय में गणित की गवेषणा का उचित प्रबन्ध करने के साथ ही उन्होंने काशी में एक स्वतंत्र गणित समिति * की भी स्थापना की। मृत्यु पर्यन्त वह इस सोसाइटी का संतानवत् संरक्षण और पालन पोषण करते रहे और आजीवन उसके सभापति भी रहे। यह संस्था अब भी बराबर काम कर रही है और डाक्टर साहब के शिष्यगण इसे उन्नति पथ पर अग्रसर रखने के लिए बराबर प्रयत्न शील रहते हैं। उनके प्रिय शिष्य प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० गोरख प्रसाद इसके वर्त्तमान सभापति हैं।

यह कहना असंगत न होगा कि डा० गणेश प्रसाद गणित प्रेम के साक्षात् स्वरूप थे। स्वयं तो अहर्निश गणित ही का चिन्तन किया करते थे और चाहते थे कि उनके विद्यार्थी भी उन्हीं के समान गणित के काम में निरन्तर लगे रहें। वह जहाँ कहीं भी रहते अपने चतुर्दिक गणित प्रेमियों और विद्वानों का लगातार बढ़ने वाला एक मण्डल तैयार कर लेते थे। बनारस की मैथमेटिकल सोसाइटी उनके ऐसे ही

---

* The Benares Mathematical Society.

प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप स्थापित हुई। इस सोसाइटी की मुख पत्रिका में उनके अनेक मौलिक गवेषणापूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुए। वास्तव में उनके अनुसन्धानों से उनकी कीर्ति भारत ही में नहीं अपितु समस्त संसार में व्याप्त हो गई थी। गणित संसार के ५-६ चुने हुए विद्वानों में उनकी गणना की जाती थी। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आज हमारे देश में गणित विज्ञान में जो कुछ खोज हो रही है उसका अधिकतर श्रेय डाक्टर गणेश प्रसाद ही के व्यक्तित्व को है।

काशी विश्व विद्यालय में ५ वर्ष तक गणिताचार्य का काम करने के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय में उच्च गणित की हार्डिज गद्दी स्थापित किये जाने पर वह फिर वहाँ बुला लिये गये और उच्च गणित के हार्डिज प्रोफेसर नियुक्त किये गये। इस पद पर नियुक्ति के लिए गणित के बड़े बड़े विदेशी आचार्यों ने आप ही के नाम की सिफारिश की थी। इस पद पर आप मृत्यु पर्यन्त काम करते रहे। दुबारा कलकत्ता पहुंचने तक आपकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। अस्तु दूर दूर से विद्यार्थी गणित के अध्ययन के लिए आपके पास पहुंचने लगे। कलकत्ते की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाएँ भी डाक्टर साहब की उपस्थिति का पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए उतावली हो उठीं।

थोड़े ही दिन के बाद आप कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसाइटी के सभापति नियुक्त किये गये। कलकत्ते की दूसरी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक सस्था 'एसोसियेशन फार कल्टिवेशन आफ साइंस' के आप उपसभापति बनाये गये और अपने अन्तिम समय तक इस पद पर बने रहे।

अपने प्रयत्नों और मौलिक गवेषणाओं से आपने कलकत्ता-मैथमेटिकल सोसाइटी में प्राण फूँक दिये। अपनी अधिकांश गवेषणाओं के विवरण आपने इसी संस्था के बुलेटिनों में प्रकाशित कराये। इसके अलावा कुछ खोज निबन्ध अमेरिकन मैथमेटिकल सोसाइटी के बुलेटिन, क्रेले जनरल* और जापान के 'तोहकू मैथमेटिकल जरनल' में (१९३२) में भी प्रकाशित हुए।

१९३२ में आप भारतीय विज्ञान कांग्रेस के गणित और भौतिक विज्ञान विभाग के सभापति मनोनीत किये गये।

कलकत्ते और बनारस की वैज्ञानिक संस्थाओं में अभिरुचि लेने के साथ ही आप प्रयाग की विज्ञान परिषद में भी उसके जन्म से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त समुचित सक्रिय अभिरुचि लेते रहे। उस परिषद की अध्यक्षता में आपने समय समय पर गणित और महान् गणितज्ञों की जीवनियों के सम्बन्ध में हिन्दी में भाषण दिये और यथाशक्ति आर्थिक सहायता भी दी।

विज्ञान कांग्रेस के निश्चय पर जब अखिल भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान परिषद† का संगठन किया गया तो उसमें भी आपने यथेष्ट भाग लिया। इस संस्था की विधान निर्मातृ परिषद के आप सभापति भी रहे थे और प्रमुख संस्थापक सदस्य एवं फैलो‡ भी थे।

---

* Crelle's Journal vol 160, 1928.

† National Institute of Sciences India.

‡ Foundation member and Fellow.

मौलिक खोज निबन्धों के अतिरिक्त डाक्टर गणेश प्रसाद ने उच्च कोटि के ११ गणित ग्रन्थों* की भी रचना की थी। इनमें से कई तो

---

*1. Text Book on Differential calculus, 1909.
2. Text Book on Integral calculus, 1910
3. The Place of Partial Differential Equations in Mathematical Physics 1924.
4. An introduction to the theory of Elliptic Functions & Higher Transcendentals, 1928.
5. Lecturs on recent researches on the theory of Fourier series, 1928.
6. A Treatise on spherical Harmonics & the Functions of Bessel and Lame (in 2 parts) 1930, 32.
7. Lectures on recent researches in the mean value Theorem of the Differential calculus 1931.
8. Some Great mathematicians of the nineteenth century, their lives & works vol I, 1932, vol II-1933
9. Introduction to the theory of Difference Equations; 1934.
10. Fundamental theorems of the theory of Functions of a complexvariable, discussed critically and Historically (In press at the time of his death)
11. Some Great mathematicians of the Nineteenth century vol, III.—he was engaged in writing this book of the time his death.

आज दिन भी भारत ही में नहीं वरन् विदेशी विश्व-विद्यालयों में भी उच्च श्रेणियों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाये जाते हैं। उच्च गणित की पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी में '१६वीं शताब्दि के कुछ महान् गणितज्ञ' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के भी तीन भाग तैयार किये थे। प्रथम और द्वितीय भाग तो उनके सामने ही प्रकाशित हो चुके थे और तीसरा छपना शुरू हो गया था।

उनका एक और महत्व का ग्रन्थ* उनकी मृत्यु के पूर्व छपने को दिया जा चुका था किन्तु प्रकाशित न हो पाया था। इन पुस्तकों के अलावा उन्होंने कई और पुस्तकों की रूपरेखा भी तैयार की थी। इनमें से एक अनन्त श्रेणियों† के सम्बन्ध की विशेष महत्वपूर्ण है। मृत्यु से कुछ समय पूर्व उन्होंने अपने कई मित्रों और शिष्यों के अनुरोध से एक महत्वपूर्ण जर्मन गणित ग्रन्थ का सम्पादन करना भी स्वीकार कर लिया था, परन्तु उसे वह पूरा न कर सके।

हिन्दी के हिमायती

हिन्दी के वह बड़े हिमायती थे। प्रयाग की विज्ञान परिषद में उसके जन्म से लेकर अन्तिम समय तक बराबर सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। समय समय पर उसमें स्वयं उच्च गणित के भाषण भी दिये। काशी विश्व विद्यालय में हिन्दी को उच्च श्रेणियों में पाठ्य विषय का स्थान

* A treatise on Difference Equations.

† On the summation of Infinite Series of Legendre's Functions having non-integral Parameters.

दिलाने और हिन्दी के अध्यापक को प्रोफेसर का उचित सम्मान दिलाने में उनका विशेष हाथ था। विश्व विद्यालय के अधिकारीवर्ग हिन्दी के अध्यापक को प्रोफेसर कहने से बहुत हिचकते थे, परन्तु डा० गणेश प्रसाद इसके लिए खूब लड़े और उचित सम्मान दिला कर ही शान्त हुए। वह बराबर जी जान से इस बात का समर्थन करते थे कि ऊँचे से ऊँचे दरजे की पढ़ाई अपनी मातृ भाषा हिन्दी में हो। पराई भाषा में शिक्षा देना वह अस्वाभाविक, विषम और अपमान जनक समझते थे।

अपनी गणिताचार्यों की जीवनियाँ वह हिन्दी में भी प्रकाशित कराना चाहते थे। अपने ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने उसे स्वर्गीय रामदास गौड़ से लिखवाना भी शुरू कर दिया था। एक भाग श्री गौड़ उनके सामने ही समाप्त भी कर चुके थे। इस पुस्तक की अंग्रेज़ी की दोनों जिल्दें उन्होंने अपने माता-पिता को समर्पित की थीं। हिन्दी की पुस्तकों को भी वह अपने माता-पिता ही को समर्पित करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने गौड़ जी से बड़े आग्रह के साथ निम्न लिखित दो सोरठे लिखवाये भी थे:—

पूज्य चरन प्रिय तात, राम राम गोपाल सिंह।
सिय सी सनेही मात, जूठन देबी पद युगुल ॥
सुमिरि उभय कर जोरि, विनय विहित अर्पन करों।
छमिय लरकई मोरि, बालक लघु कृत लीजिए ॥

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा विश्वविद्यालय की नीव डालने वालों में डाक्टर साहब प्रमुख व्यक्ति थे। १९२५ ई० में जब संयुक्तप्रान्तीय कौंसिल ने आगरा

विश्व विद्यालय को स्थापित करने के बारे में विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी, उस समय डाक्टर साहब भी कौंसिल के सदस्य थे और कौंसिल की ओर से उक्त कमेटी के सदस्य चुने गये थे। कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने में आपका बहुत कुछ हाथ था। आगरा यूनीवर्स्टी एक्ट पास हो जाने पर १९२७ ई० में जब यूनीवर्स्टी के प्रथम सीनेट का चुनाव हुआ तो ग्रेजुएटों की ओर से आप भी सीनेट के सदस्य चुने गये। सीनेट ने आपको अपनी एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल का मेम्बर भी चुना। तब से अन्त समय तक अर्थात् ९ मार्च १९३५ तक बीच में एक वर्ष को छोड़कर, आप बराबर सीनेट और कौंसिल के मेम्बर बने रहे। यूनीवर्स्टी के बोर्ड आफ इंसपेक्शन में कई साल तक काम किया और बीसियों ही कमेटियों के सदस्य रहे। जितनी कमेटियों और कौंसिलों में आप काम करते थे उनकी बैठकों में आप बराबर पूरी तैयारी के साथ जाते थे। यूनीवर्स्टी की इतनी ज्यादा सेवा करते हुए भी उन्होंने कभी यूनीवर्स्टी से आर्थिक लाभ की इच्छा नहीं की। जब जब वह परीक्षक हुए उन्होंने परीक्षा शुल्क तक स्वीकार नहीं किया। परीक्षा सम्बन्धी विशेष कार्य सौंपे जाने पर भी कोई शुल्क स्वीकार नहीं करते थे। अकसर वह कलकत्ते से आगरे जाते थे, परन्तु नियमानुसार उन्हें बनारस से आगरा तक का किराया मिलता था। प्रश्न पत्रों के संशोधन के लिए उन्हें कलकत्ता से आगरा तक का किराया मिलता था। परन्तु वह कलकत्ता से बनारस तक का किराया यूनीवर्स्टी को दान कर देते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यूनीवर्स्टी को दो स्वर्ण पदकों के लिए चौबीस सौ के साढ़े तीन की सदी के सरकारी कागज भी दान में

दिये थे। ये दोनों पदक उनकी पुत्री के नाम से हैं। एक 'कृष्णकुमारी देवी स्वर्ण पदक' प्रति वर्ष आर्ट और साइंस विभागों में मिलाकर बी० ए० और बी० एस-सी० में गणित में सब से अधिक नम्बर पाने वाले छात्र को दिया जाता है और दूसरा 'कृष्णकुमारी देवी गणित स्वर्ण पदक' एम० ए० और एम० एस-सी० परीक्षाओं में गणित में सब से अधिक नम्बर पाने वाले छात्र को, ६० फी सदी से अधिक नम्बर पाने पर दिया जाता है। डाक्टर साहब का इरादा आगरा विश्व-विद्यालय को कुछ और भी देने का था। परन्तु दैव गति विचित्र है; उन्हें विश्वविद्यालय की सेवा करते करते अपने प्राण ही दे देने पड़े।

मृत्यु

उस दिन (६ मार्च १६३५) को आगरा में यूनिवर्स्टी कौंसिल की बैठक ११ बजे से थी। डाक्टर साहब इलाहाबाद से ८ मार्च की शाम को रवाना होकर ६ मार्च को सुबह आगरा पहुंचे। होटल में भोजन आदि करके पौने ग्यारह बजे यूनीवर्स्टी पहुंच गये। मीटिंग में वह एक बजे तक सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। उस दिन भी परोपकार का लक्ष्य उनके सामने था। कानपूर एग्रीकलचर कालिज के दो विद्यार्थियो को बी० एस-सी० परीक्षा में बैठने की अनुमति दिलवाना था। इस विषय पर उन्हें दो तीन बार काफी ज्यादा बोलना पड़ा। इसके बाद उन्हें परीक्षकों की नियुक्ति के बारे में भी कई बार बोलना पड़ा। परन्तु उनके लिए ऐसा करना बिलकुल साधारण सी बात थी। वाद विवाद से फुरसत पाकर वह कुर्सी पर बैठ गये। कौंसिल का एजेण्डा

उस वक्त भी उनके हाथ में था। बस उसके बाद वह स्वयं कुर्सी से उठ न सके। यथासम्भव सभी उपचार किये गये, पर कोई फल न निकला। उस दिन शाम को ७॥ बजे आगरे के टामसन अस्पताल में उनका शरीरान्त हो गया।

बनारस की दुर्घटना

मृत्यु से कोई साढ़े तीन साल पहिले वह रात को ढाई बजे की एक्सप्रेस से आगरा से बनारस पहुंचे। उतरने में ज़रा देर हो गई कि गाड़ी चल दी। ठिगने क़द के आदमी; पैर ज़मीन से नहीं लगा। गाड़ी की रफ्तार बढ़ी। एक हाथ में रेल का डण्डा, दूसरे में छड़ी, एक पैर रेल के पावदान पर और दूसरा पैर ज़मीन की खोज में। जब प्लेटफार्म पर पैर पहुंचा तो दूसरा पैर सम्भालने की कोशिश में निर्बल शिथिल हाथ से रेल छूट गई और वह नीचे आ गिरे। प्लेटफार्म और रेल के बीच में। डाक्टर साहब तुरन्त प्लेटफर्म की दीवार से चिपक गये और हाथ प्लेटफार्म पर फैला दिये। इतने दुबले थे कि गाड़ी कुछ दूर तक चली गई और उन्हें खंरोच तक न लगी। जब जंजीर खींच कर गाड़ी रोकी गई और डाक्टर साहब बाहर निकाले गये तो ईश्वर को धन्यवाद दिया और घर चल दिये। ऐसे कुअवसर पर धीर से धीर भी घबरा कर पिस जाता। उन्होंने असाधारण धैर्य्य का परिचय दिया। हम तो इसे उनका धैर्य ही कहते हैं, परन्तु वह कहते थे यह मेरा धैर्य न था बल्कि ईश्वर की ओर से मेरी रक्षा थी।

उसी दिन से डाक्टर साहब राम राम का जप करने लगे। माला उनके जेब में पड़ी रहती और रात्रि के अंधेरे में भी उन्हें अकसर माला

जपते देखा जाता। तुलसीकृत रामायण बराबर पढ़वा कर सुनने लगे थे, इस दुर्घटना से पहिले वह कर्त्तव्य पालन ही को सर्वोत्तम प्रकार की उपासना बतलाते थे परन्तु बाद में वह अकसर कहा करते थे कि "हमारे संकट के समय में जो भगवान हमें नहीं भूलता, अपने सुख के समय उसे हम याद न करें तो हमारी नालायकी है।"

वास्तव में इस दुर्घटना के बाद से धर्म की ओर उनकी बड़ी अभिरुचि हो चली थी। वह अपने प्रिय शिष्य हिन्दू गणित विज्ञान के इतिहासज्ञ—डा० विभूति भूषण दत्त—से जिन्होंने वैराग्य ले लिया है बराबर कहा करते थे कि हार्डिंज प्रोफेसरी छोड़ने के बाद मैं भी संयास ले लूंगा। परन्तु वस्तुतः वह तो अपनी छात्रावस्था ही से हृदय से संयासी थे। उन्हें वैराग्य का रूप धारण करने की ज़रूरत न थी। उन्हें तो निष्काम कर्म करते हुये ही शरीर त्यागना था।

विलक्षण स्मरण शक्ति

डाक्टर साहब की स्मरण शक्ति अद्भुत थी। वह केवल गणित-तथ्य ही नहीं वरन् और भी बातों को आश्चर्यजनक रूप से याद रखते थे। जब वह सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के प्रिंसपल थे उस समय वहां लगभग एक हज़ार छात्र पढ़ते थे। वह उनमें से प्रत्येक को व्यक्तितः जानते थे। उनके नाम ही नहीं वरन् उनके बारे में कई और व्यौरे भी याद रखते थे। कौन कहां से आया, किस श्रेणी में पास किया, पिता का क्या नाम है, आदि बातें भी उन्हें स्मरण रहती थीं। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि केवल एक बार ऐसे व्यौरों को सुन

लेने पर उन्हें ये सभी बातें अपने आप याद हो जाती थीं। भरती होते समय वह अकसर लड़कों से ऐसी बातें पूछ लिया करते थे। महीनों बाद यदि कभी उस लड़के से भेंट हो गई तो पूछ बैठते 'मिस्टर फलां—आपके पिता......अच्छे तो हैं ? आपने तो अमुक विषय लिया है न ! खूब पढ़ाई कर रहे हैं या नहीं। अच्छा आपने तो इन्टरमीडिएट द्वितीय श्रेणी में पास किया था। अब की बार बी० ए० में अवश्य प्रथम श्रेणी लाइये।' लड़का आश्चर्य चकित हो जाता था। वह तो यही समझता था कि उस दिन भरती होते समय इतने लड़कों की भीड़भाड़ में डाक्टर साहब ने उसे एक बार देखा था। शायद अब वह मुझे पहचानते भी न होंगे। डाक्टर साहब की यह अद्भुत स्मरण शक्ति अन्त तक बनी रही। वास्तव में वह केवल अपने विद्यार्थियों ही को नहीं, जिस किसी से भी कभी एक बार मिल लेते उसका नाम दस बीस वर्षों में भी नहीं भूलते थे। उन्होंने एक बार अपनी स्मरण शक्ति के बारे बातचीत करते हुए अपने शिष्य, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डाक्टर अवधेशनारायणसिंह से कहा था—"बाबू साहब मेरी स्मरण शक्ति जो इतनी अच्छी है, उसमें एक बड़ी मारी बुराई भी है। जिन लोगों ने मुझे नुकसान पहुंचाया है, या मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है उनको मैं भूल नहीं सकता। परन्तु मुझ में अब धीरे धीरे बहुत परिवर्त्तन हो गया है। अब मुझे थोड़े ही दिन और जीना है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मेरे साथ लोगों ने जो कुछ बुराइयां की हैं, उन सभों को मैं भूल जाऊं।" वास्तव में डाक्टर साहब के ऐसे केवल विचार मात्र न थे। उन्होंने इन विचारों को कार्य रूप में भी परिणत किया। बहुत से

लोग जो उनके घोर विरोधी थे, उनकी समय पड़ने पर उन्होंने बड़ी सहायता की।

स्वर्गीय रामदास गौड़ के शब्दों में 'उनके विशाल और अगाध ज्ञान की कुञ्जी उनकी विलक्षण स्मृति थी। एक बार पढ़ना या सुनना उनके लिए काफी था। संसार में गणित की जितनी भी बड़ी संस्थायें थी, प्रायः सबसे उनका सम्बन्ध था। सभी जगहों की रिपोर्ट वह मंगवाते थे और पढ़ते थे। इसके सिवा पुरानी और नई खोजों के सभी पत्र उन्होने देखे और पढ़े थे। प्रमुख प्रकाशकों को उन्होंने आज्ञा दे रखी थी कि गणित की खोज से सम्बन्ध रखने वाले साहित्य को प्रकाशित होते ही उनके पास भेज दिया जावे।

इसका सहज परिणाम यह था कि जब कभी कोई छात्र कोई नई बात खोजकर ले जाता तो वह बतला देते कि अमुक ने यह खोज पहिले से कर रखी है अथवा यह कि तुम्हारा यह काम बिलकुल नया है। अपने छात्रों को नयी खोजों में लगाने में उनकी यह विलक्षण स्मृति बड़ा काम देती थी। यों तो वह जर्मन, फ्रेंच, इटालियन और अंग्रेजी जानते ही थे, पर यूरोप की किसी भी भाषा में क्यों न हो, वह गणित के लेखों को अच्छी तरह समझ लेते थे और केवल एक बार पढ़कर भी उसे अपने दिमाग के अद्भुत संग्रहालय में सुरक्षित कर लेते थे। गणित तो उनका विशेष विषय ही था। और और विषयों में भी जहाँ उन्हें दिलचस्पी होती वह पढ़कर पूरी तैयारी कर लेते थे। वह जब कभी किसी विषय पर बोलते थे, उसकी तह तक उस पर विचार करके अपनी बात कहते थे। काम पड़ने पर ज़बानी

लम्बे-लम्बे अंकों की चर्चा कर देते थे। इतने पर भी शालीनतापूर्वक कहते थे कि 'मैं गलत कहता होऊँ तो मेरा संशोधन कर दीजिए।'

ब्रह्मचर्य

उनके निकट सम्पर्क में रहने रहने वालों का कहना है कि उनकी स्मरण शक्ति इतनी विलक्षण थी कि वह एक साथ आठ-दस व्यक्तियों से विभिन्न विषयों पर वार्तालाप कर सकते थे और बराबर यह ध्यान रखते थे कि किस व्यक्ति से उन्होंने किस विषय में क्या बात की है। इस तरह के वार्तालाप में कभी कोई गड़बड़ी न पड़ती थी। वास्तव में उनकी इस विलक्षण स्मरणशक्ति का रहस्य उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य ही था। अपनी धर्मपत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन बड़ी कड़ाई के साथ किया था।

इसी ब्रह्मचर्य ही की बदौलत वह अपनी असाधारण स्मरणशक्ति को बनाये रहने के साथ ही, अत्याधिक मानसिक परिश्रम करने में भी सफल होते थे। वह ब्रह्मचर्य पालन के लिए ही रूखे सूखे भोजन करते, घोर मानसिक परिश्रम में संलग्न रहते थे और बिना बिस्तरे के लोहे के पलंग पर सोते थे। इस घोर तपस्या का बाहर वालों को पता न था। वह अपने इस प्रकार के जीवन को प्रकट नहीं करना चाहते थे। अन्तरंग मित्र और उनके परमप्रिय शिष्य ही उनकी इस तपस्या को जानते थे। ब्रह्मचर्य पालन करने वालों को संयम उनसे सीखना चाहिए। पौष्टिक और सुस्वादु भोजन तथा आरामतलबी को डाक्टर साहब ने जीवन भर दूर रक्खा। अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त

कभी किसी स्त्री से बात-चीत नहीं की। समाज में जहाँ पर्दा नहीं है और स्त्रियाँ बेखटके मिलती जुलती हैं, वहाँ डाक्टर साहब कभी जाते ही न थे। उनके जीवन में स्त्री मात्र का काम न था, सौतेली माता और सौतेले भाई और उनका परिवार यही उनके अपने रह गये थे। जो कुछ उनका खर्च होता था, इन्हीं के लिए। अपने खाने पहरने में और अपने आराम के लिए तो उनका खर्च प्रायः उतना ही था जितना किसी साधु फकीर का हो सकता है। वास्तव में उनका जीवन इतना सादा था और जरूरतें इतनी कम थीं कि पास से देखनेवाले को आश्चर्य में डूब जाना पड़ता था। पूछने पर कहा भी करते थे कि "मैं तो ब्रह्मचारी हूँ, मुझे इससे ज्यादा नहीं चाहिए!" पान, तमाखू या किसी तरह का व्यसन जीवन भर पास न फटका।

समय की पाबन्दी

डाक्टर साहब वक्त की ठीक कीमत जानते थे। वह अपना एक मिनट भी बरबाद नहीं होने देते थे। उनके सारे काम मिनटों में विभक्त होते थे। उन्हें सारे जीवन कभी किसी खेल तमाशे में नहीं देखा गया। सामने तमाशा हो रहा है और आप बहुत तेज़ कदम बिना इधर उधर देखे उसी ओर से गुज़र रहे हैं मानों कुछ भी नहीं हो रहा है। जिस सभा सोसाइटी की आप सदस्यता स्वीकार करते उसके प्रायः सभी अधिवेशनों में बराबर ठीक समय पर पहुंच जाते और पूरी तैयारी के साथ। क्वीन्स कालेज में वह घोड़ा गाड़ी में कालेज जाया करते थे। गाड़ी वाले को आपके बंगले पर ऐसे समय पर हाज़िर होना पड़ता था कि यदि उसके आने में देर हो जाय तो डाक्टर साहब पैदल चलकर भी कालेज समय पर

अवश्य पहुंच जावें। चाहे कुछ हो वह अपने निश्चित समय पर कालेज अवश्य पहुंच जाते थे। उनका समय की पाबन्दी का यह नियम तमाम उम्र बना रहा और कभी इसमें फर्क न पड़ा। आंधी हो या मूसलाधार पानी, उनके नियम में कोई अन्तर न पड़ता था।

स्पष्टवादी

स्पष्टवादी तो वह इतने थे कि कितनी ही बार लोगों में इसके लिए झगड़ा तक हो गया था। डाक्टर साहब जब प्रोफेसर नियुक्त हुए तो सरकारी नियम के अनुसार उन्हें महीने में एक बार कमिश्नर से मिलने जाना पड़ता था। वह इस नियम की पाबन्दी तो करते थे परन्तु साहब सलामत के बाद वह कहते थे कि "महाशय मुझे आप से कोई काम नहीं है। मैं तो आप से इसीलिए मिलने आया कि यह नियम बना हुआ है। बस! अब मैं जाऊं?" इतने ही में मुलाकात खतम हो जाती थी। इसमें मुश्किल से कुछ सेकेन्ड लगते थे। इसे उनका उजड्डु-पन भले ही कोई कह ले, परन्तु यह उनकी निर्भीकता थी जो ऐसा कहलाती थी कि यह नियम युनिवर्सिटी के विद्वान आचार्यों के लिए कितना निरर्थक है। वस्तुतः कमिश्नर को प्रोफेसरों से क्या काम?

डाक्टर साहब जो कुछ बात कहते थे ठोस प्रमाण के साथ ही कहते थे। अप्रमाणिक बात कह बैठना उन्होंने सीखा ही न था। 'एक बार एक सभा थी जिसमें शिक्षा विभाग के एक परमोच्च कर्मचारी ने कोई अनर्गल बात कह डाली। डाक्टर साहब भी उस सभा के सदस्य रूप में मौजूद थे। उन्होंने अपनी वक्तृता में कहा कि "श्री······ने यह

बड़ी बेवकूफी की बात कही है।" इस पर कहने वाले कर्मचारी ने अध्यक्ष से अपील की, कि 'डाक्टर साहब ने मुझे गाली दी है। यह अपने शब्द वापस लें।' डाक्टर साहब ने अपने शब्द वापस लेने से साफ इनकार किया और अध्यक्ष को उत्तर दिया कि विषयान्तर न हो तो मैं श्री······की बेवकूफी इसी समय सिद्ध कर दूं, जैसे कि मैं गणित के किसी तथ्य को सिद्ध करता हूं। स्पष्टवादी होने के साथ ही वह परिहास प्रिय भी थे और बड़ी सूक्ष्म विधि से चुटकियां लेना जानते थे।

डाक्टर साहब की प्रतिभा केवल गणित ही तक सीमित न थी। इतिहास और धर्म ग्रन्थों का भी उन्होने अच्छा अध्ययन किया था। 'कुछ महान् गणितज्ञ' का उनका लिखना उनके इतिहास प्रेम ही का परिणाम था। पीछे वे उपन्यास और विशेष कर छोटी कहानियाँ भी बहुत पढ़ा करते थे। जर्मन की पुस्तकें भी वह बहुत पढ़ते थे, डाक्टर साहब बात करने में भी विशेष चतुर थे। वक्ता तो वह इतने बढ़िया थे कि अकसर अन्य सब लोगों के आरम्भ में प्रतिकूल रहने पर भी अन्त में उनका प्रस्ताव पास हो जाया करता था कई एक विश्वविद्यालयों की कौंसिलों के सदस्य होने के कारण तथा उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और उनके अगाध ज्ञान के कारण उनके भाषण विशेष रूप से महत्वपूर्ण और उपयोगी होते थे। भाषणों में उनकी तेज़ी, उनका चौकन्नापन, उनका विशाल ज्ञान और विविध प्रस्तावों पर उनकी विस्तृत जानकारी देखकर बड़े बड़े विद्वान भी दंग रह जाते थे। वह कठिनाई से तो घबराते ही नहीं थे और भारी भारी कठिनाइयों के बीच निर्भय

भाव से अकेले ही वह अपने मित्रों के लिए लड़ा करते थे। उनके भाषणों के विरुद्ध उन पर जो आक्रमण किये जाते थे उनका उत्तर उनके से कौशल से बहुत कम व्यक्ति दे पाते थे। कड़े से कड़े हमले पर भी उन्हें किसी ने क्रोध करते तो देखा ही नहीं।

१६२३ में वह लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्य निर्वाचित किये गये। वहां भी वह किसी पार्टी विशेष में सम्मिलित नहीं हुए और बराबर स्वतन्त्र सदस्य रहे और निर्भीकतापूर्वक कार्य करते रहे। उनकी योग्यता और स्पष्टवादिता के कारण कौंसिल का हर एक सदस्य उनकी इज्जत करता था।

कौंसिल के सामने जो शिक्षा सम्बन्धी विकट समस्याएँ आईं उन पर उनकी वक्तृतायें, उनके जीवन में प्रायः उत्तम, मार्के की और बड़ी ओजस्विनी कही जा सकती हैं। १६२४ और १६२५ में गांवों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रस्तावों को स्वीकृत कराने में डाक्टर साहब ने विशेष उल्लेखनीय कार्य किया। उन्हीं के परिश्रम का फल था कि १६२६ में इन प्रस्तावों के आधार पर कानून बन गया। पर व्यवस्थापिका सभा में उनका प्रधान काम तो आगरा विश्वविद्यालय समिति में था। इस समिति के वास्तविक काम करने वाले सदस्यों के डाक्टर साहब सिरमौर थे। समिति के विवादों में वह संसार के विश्वविद्यालयों के संगठन और शासन की अपनी गम्भीर और अप्रतिम जानकारी से लोगों को चौंधिया देते थे।

छात्र-प्रेम

यों तो अपने शिष्यों पर सदा से ही उनकी स्नेहदृष्टि रहती थी, तो

भी कृष्णाकुमारी के मर जाने के बाद उनकी ममता अपने शिष्यों पर बहुत बढ़ गई थी। वह अपने शिष्यों को बेटों से अधिक मानते थे। फिर वे चाहे हिन्दुस्तानी हों, चाहे बंगाली, हिन्दू हों या मुसलमान, ब्राह्मण हों चाहे शूद्र उनके निकट सबकी जाति बराबर थी। सब से बड़ी जाति का और सबसे बड़ा वही था जो उच्च गणित में मन लगाये हुए था, जो खोज के काम में लगा था।

अपने विद्यार्थियों के लिए वह छात्रवृत्तियाँ दिलाने की जी तोड़ कोशिश करते थे। उनके लिए नौकरियाँ खोजते थे, खोज की सामग्री प्रस्तुत करते थे। गरज़ कि गणित के छात्र ही उनके लिए सब कुछ थे। एम० ए०, एम० एस सी० के गणित वाले ग़रीब विद्यार्थियों की सहायता अकसर अपने पास से करते थे, कई एक तो वह निजी रूप से छात्रवृत्तियाँ भी देते थे। अनुसन्धान करने वालों के लिए तो उनकी थैली हमेशा खुली रहती थी।

उनके छात्र सारे भारत में फैले हुए हैं और प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में हैं। अन्त समय में भी वह उच्च गणित के १०७ छात्रों को शिक्षा दे रहे थे। आज दिन उत्तर भारत में कितने ही नवयुवक हैं जो उनकी चरण सेवा करने से इस समय बड़े अच्छे पदों पर हैं और जिनका जीवन डाक्टर साहब का बनाया हुआ है। कितने ही विद्यार्थियों को उन्होंने गणित सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए प्रेरित किया और आज वे उन्हीं की प्रेरणा से गणित के प्रख्यात पण्डित हो गये हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० गोरखप्रसाद तथा डा० बी० एन० प्रसाद, लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० अवधेशनारायण सिंह

प्रकृतिभूतस्य खल्वस्य लोके चरतः कर्माणीमानि भवंति। तद्यथा धरणी धारणं, ज्वलनोज्वालनम्, आदित्य-चन्द्रनक्षत्रग्रहगणानां संतानगतिविधानम्, सृष्टिश्च मेघानाम्, अपांविसर्गः, प्रवर्तनं स्रोतसाम्, पुष्पफलानांचाभि-निर्वर्तनम्, उद्भेदनं चौद्भिदानाम्, ऋतूनां प्रविभागः प्रविभागो धातूनाम्, धातुमानसंस्थानव्यक्तिः, बीजाभिसंस्कारः शस्याभिवर्द्धनमविक्लेदोपशोषणे, अवैकारिकविकाराश्चेति।

प्रकुपितस्य खल्वस्य लोके चरतः कर्माणीमानि भवंति। तद्यथा—शिखरिशिखरावमंथनम्, उन्मथनमनोकहानाम्, सागराणाम, उद्वर्तनं सरसाम्, प्रतिसरणमापगानाम्, उत्पीडनं आकंपनं च भूमेः, आधमनमंबुदानाम्, नीहारनिर्ह्रादपांशु-सिकतामत्स्यभेकोरगक्षाररुधिराश्माशनिविसर्गः, भावानां चाभावकरणम्, चतुर्युगांतकराणां मेघसूर्यानलानिलानां विसर्गः।

आगे कांकायन के प्रजापति वाद मे वायु के वैदिक विवेचन के साथ साथ इन अंशों का भी तौलनिक दृष्ट्या विवेचन होगा। सारांशः—

सहि भगवान्, प्रभवश्च अव्ययश्च भूतानाम् भावा-भावकरः, सुखासुखयोर्विधाता, मृत्युः, यमः, नियंता, प्रजापतिः, अदितिः, विश्वकर्मा, विश्वरूपः, सर्वगः,

सर्वतंत्राणां विधाता, भावानां अणुः, विभुः, विष्णुः, क्रांता लोकानाम्, वायुरेव भगवान् इति।

वार्योविद् का यह वायुविवेचन वैज्ञानिकों के अभ्यास की वस्तु है। इसमें वायु को जितने भी विशेषण दिये गये हैं वे तत्तद्धर्म बोधक मात्र हैं। क्योंकि वार्योविद् को आत्मा, प्रजापति या ईश्वर इनमें से किसी का भी प्रभुत्व मान्य नहीं था।

इसके बाद मारीचि ने अग्नि धर्म्म के विषय में कहा कि:- अग्निरेव शरीरे पित्तांतर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति। तद्यथा-पाक्तिमपाक्ति, दर्शनमदर्शनं, मात्रामात्रात्व-मूष्मणः, प्रकृतिविकृतिवर्णौं, शौर्यं, भयं, क्रोधं, हर्षं, मोहं प्रसादमित्येवमादीनि च अपराणि द्वंद्वानीति।

उसी तरह काप्य ने सोम का विवेचन करते हुए कहा कि:-सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, तद्यथा-दार्ढ्यं, शैथिल्यं, उपचयं, कार्श्यं, उत्साहमालस्यम्, वृषतांक्लीबतां, ज्ञानमज्ञानं, बुद्धि, मोहं, एवमादीनि च अपराणि द्वंद्वानि इति।

सबके अंत में पुनर्वसु आत्रेय ने अपने अध्यक्षीय भाषण में यह निर्णय दिया कि:-' सर्वे एव भवंतः सम्यगाहुः, अन्यत्र एकांतिक वचनात्। सर्वे एव खलु वातपित्तश्लेष्माणः

के बाद डाक्टर गणेशप्रसाद पहिले ही व्यक्ति थे। आप के गणित ज्ञान का लोहा यूरोप के बड़े बड़े गणिताचार्य तक मानते थे। इस नश्वर जगत में आज उनका पंच भौतिक शरीर न होते हुए भी उनका यश शरीर अजर अमर है।

युग प्रवर्तक महान् वैज्ञानिक

डा० सर जगदीशचन्द्र बसु

[१८५८—१९३८]

आधुनिक समय में जिन कतिपय प्रतिभाशाली भारतीय महा पुरुषों ने विश्व मानव ज्ञान के भण्डार को अपनी प्रतिभा एवं मनीषा से समृद्धि शाली बनाया है विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु उन्हीं में से एक थे। जिन महापुरुष ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन कर, नये नये वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा संसार को आश्चर्य चकित कर दिया है, जिन्होंने संसार में नवीन प्रकाश की ज्योति फैलाई है, नये ज्ञान को जन्म दिया है और जिनके कार्यों से प्रेरणा पाकर विज्ञान संसार में एक सर्वथा नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ है सर जगदीश उन्हीं थोड़े से महापुरुषों में थे। बसु महोदय उन इने गिने भारतीयों में से थे जिन्होंने अपने कार्यों से सभ्य संसार की दृष्टि में भारत का मस्तक उन्नत किया है। वास्तव में अपनी वैज्ञानिक सफलताओं से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले वह प्रथम भारतीय थे। महात्मा गान्धी की ख्याति राजनीति जगत् में और कवीन्द्र रवीन्द्र की ख्याति साहित्य जगत् में यद्यपि सर जगदीश की ख्याति से बहुत अधिक बढ़ गई है तथापि अपने लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने तथा अपने अद्भुत वैज्ञानिक सिद्धान्तों और अन्वेषणों द्वारा अपनी मातृभूमि का मस्तक उन्नत करने का गौरव सब से पहिले विज्ञानाचार्य बसु ही को

प्रकार के काल्पनिक खेलों के लिए आवश्यक साधन जुटाये और ऐसा वातावरण उत्पन्न करें कि बालकों के खेलों में सदैव नवीनता रहे और उनका मन न ऊबे, उन्हें पशु-पक्षियों, परियों आदि की सुन्दर-सुन्दर कहानियां सुनाएं. अभिनयात्मक पाठों का अभिनय कराएं और उनसे विभिन्न पार्ट खिलवाएँ। इससे बालकों की गति, स्फूर्ति तथा रचनात्मक प्रवृत्ति बढ़ती है। प्रायः देखा गया है कि जो बालक इस प्रकार के काल्पनिक खेलों में दक्ष होते हैं, वे भविष्य जीवन के लिए तैयार हो जाते हैं और आगे चलकर बड़े प्रवीण तथा कार्य-कुशल निकलते हैं। यहां एक बात याद रखनी चाहिये कि ७ वर्ष के पश्चात् भी बालक का काल्पनिक जगत् में विचरते रहना और उसे वास्तविक जगत् का ज्ञान न होना ठीक नहीं है। इस प्रवृत्ति के अधिक समय तक चलते रहने से प्रायः बालकों में खयाली पुलाव पकाने की आदत पड़ जाती है और वे आगे चलकर झूठ बोलना, गप्प उड़ाना, मिथ्या अहंकार करना इत्यादि भी सीख जाते हैं। अतः माता-पिता तथा शिक्षकों को चाहिये कि वे बालकों से बातचीत करके उनकी आंतरिक इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त करें और उनके काल्पनिक खेलों के साथ वास्तविक व्यापारों का सम्मिश्रण करके उन्हें वास्तविकता की ओर संचालित कर दें। यदि किसी प्रकार दिवास्वप्न देखने की आदत पड़ ही जाय, तो उसको साहित्यिक रूप देकर बालक को कहानी, उपन्यास, कविता आदि की ओर प्रवृत्त कर देना चाहिये, जिससे कि वह भविष्य में अच्छा कहानी अथवा उपन्यास-लेखक या कवि

प्राप्त हुआ था। वसु महोदय ने जीवन के रहस्य का उद्घाटन करके प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों के सिद्धान्तों को आधुनिक वैज्ञानिक रीतियों से प्रत्यक्ष सिद्धकर विज्ञान संसार में एक सर्वथा नवीन क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वाले वह पहले भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होंने अपने आविष्कारों और महत्व-पूर्ण वैज्ञानिक कार्यों द्वारा भारत की आध्यात्मिकता और पश्चिम की भौतिकता का समन्वय किया था और अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानों द्वारा भारत की सहस्रों वर्ष पुरानी संस्कृति को पुनः पल्लवित किया था।

बाल्यकाल और शिक्षा

सर जगदीशचन्द्र वसु का जन्म ३० नवम्बर १८५८ ई० को बंगाल में ढाका ज़िले के विक्रमपूर कस्बे के निकट राढ़ीखाल नामक गाँव में मध्यम श्रेणी के एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार में हुआ था। उनके परिवार में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति हो चुके थे। उनके पिता बाबू भगवानचन्द्र वसु फरीदपूर ज़िले में डिप्टी कलक्टर थे। उन दिनों भारतीयों के लिए डिपटी कलक्टरी ही सब से बड़ा पद समझा जाता था।

श्री भगवानचन्द्र वसु दृढ़, चरित्रवान् और निर्भीक एवं स्वतंत्र स्वभाव के पुरुष थे। उद्योग धन्धों और कलाकौशल से उन्हें बहुत प्रेम था। उन्होंने कई औद्योगिक स्कूल भी खोले थे। वसु महोदय ने स्वयं ही इस सम्बन्ध में लिखा है:—"मेरे पिता ने कई औद्योगिक और कलाकौशल के स्कूल खोले। इनकी स्थापना से मेरी स्वाभाविक

वैज्ञानिक प्रवृत्ति को और भी अधिक प्रेरणा मिली। इसी प्रेरणा के बल पर मैं अपने आविष्कार करने में सफल हुआ। भारतीय कारीगरों के विश्वकर्मा की पूजा के ढंग और विश्वकर्मा की मूर्ति को देखकर मेरे हृदय पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा।" अस्तु बाल्यकाल ही से जगदीशचन्द्र की प्रवृत्ति विज्ञान और आविष्कार की ओर हो गई। उनके पिता ने अपने होनहार पुत्र की इस प्रवृत्ति को और भी अधिक पुष्ट बनाया।

बालक जगदीश का लालन पालन बड़ी सावधानी और योग्यता-पूर्वक किया गया। उसके संस्कारों को श्रेष्ठ बनाने का पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया। सदैव इस बात का प्रयत्न किया गया कि उसका भविष्य जीवन उज्ज्वल और यशस्वी हो। उस समय आधुनिक शिक्षा पद्धति अपने शैशव काल ही में थी। सर्व साधारण यह भली भाँति निश्चय न कर पाये थे कि बच्चों के लिये नवीन पाश्चात्य शिक्षा हितकर होगी अथवा पुराने ढंग की पाठशालाओं में दी जाने वाली शिक्षा। उस समय बाबू भगवानचन्द्र फरीदपूर ज़िले में सब डिवीज़नल आफ़िसर थे। उच्च सरकारी पद पर होते हुए भी उन्होंने बालक जगदीश को अंग्रेज़ी स्कूल में न भेजकर देहाती पाठशाला ही में भेजना उचित समझा। इस शिक्षा का बालक जगदीश पर जो कुछ प्रभाव पड़ा उस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है:—× × ×"मैं ग्रामीण पाठशाला ही में भेजा गया। यहाँ मुझे किसान और मछुओं के बच्चों के साथ पढ़ने और रहने का अवसर प्राप्त हुआ। यह लड़के मुझे जङ्गलों में घूमने, हिंसक पशुओं, नदियों के अगाध जल और कीचड़ में धँसे रहने वाले

भयंकर जानवरों की कहानियाँ सुनाया करते थे। इन्हीं ग्रामीण बच्चों के साथ रहकर मैंने सच्ची मनुष्यता का पाठ पढ़ा और यहीं पर मैंने प्रकृति का प्रेम भी पाया।'

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम भोले-भाले और जीते-जागते ग्रामीणों से बहुधा वह शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं जो हमें बड़े बड़े स्कूलों और कालेजों में भी नसीब नहीं हो सकती। जगदीशचन्द्र के हृदय में प्रकृति प्रेम का प्रादुर्भाव इन्हीं देहातियों के साथ रहने से हुआ और आगे चलकर इसी साधारण से संस्कार का फल सारे संसार ने आश्चर्यचकित होकर देखा।

पिता ही की भांति आपकी माता भी बड़ी सहृदय और सरल स्व-भाव की महिला थीं। यद्यपि उनके विचार कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बियों के सदृश्य थे फिर भी बालक जगदीश के अछूत सहपाठियों के साथ वह बहुत ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करती थीं। और उन्हें अपने पुत्र ही की भाँति खिलाती पिलाती थीं। ऐसी आदर्श माता के पुत्र का मनुष्य मात्र और समस्त जीवधारियों से प्रेम करना स्वाभाविक ही है।

बालक जगदीश को ग्रामीण पाठशाला में भेजने का मुख्य उद्देश्य उन्हें मातृभाषा की शिक्षा देना और उसके प्रति प्रेम उत्पन्न कराना था। आपके पिता चाहते थे कि बालक जगदीश प्रकृति प्रेम का पाठ सीखे। उनके मन में ग़रीब ग्रामीण भाइयों के प्रति दुरभिमान न उत्पन्न हो। सर जगदीश ने इस विषय में लिखा भी था—'ग्रामीण पाठशाला में मैं इस लिए भेजा गया कि मैं अपनी मातृ भाषा सीखूँ अपने देशी विचारों पर मनन करूँ और अपने साहित्य के द्वारा राष्ट्रीय

सभ्यता और आदर्शों का पाठ पढ़ूँ। इसका परिणाम भी मनोवाञ्छित ही हुआ। मेरे हृदय में सब लोगों के प्रति ऐक्य भाव का प्रादुर्भाव हुआ।'

पाठशाला की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त कराने के लिए उन्हें कलकत्ते के सेण्ट ज़ेवियर स्कूल में दाखिल कराया गया। स्कूल-शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने बी० ए० की परीक्षा भी इसी कालेज से पास की। इस कालेज में जगदीशचन्द्र को सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् और वैज्ञानिक फादर लेफान्ट के सम्पर्क में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। फादर लेफान्ट ने भारत में विज्ञान के प्रचार और प्रसार में डा० महेन्द्रलाल सरकार की भी यथेष्ट सहायता की थी। फादर लेफान्ट के सम्पर्क में आने से बसु महोदय को भौतिक विज्ञान में विशेष अभिरुचि हो गई। अपने गुरु ही के सदृश्य आप भी भौतिक विज्ञान के रोचक और आकर्षक प्रयोगों का प्रदर्शन करने में विशेष पटु हो गये और आगे चलकर अपने इसी गुण से अपने महत्वपूर्ण भाषणों के दौरान में प्रायोगिक प्रदर्शनों द्वारा अपने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देते थे।

इंगलैंड में अध्ययन

अस्तु। बी० ए० पास करने के बाद आपने इंगलैंड जाकर अध्ययन करने की इच्छा प्रकट की। उन दिनों के अन्य उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले नवयुवकों ही की भाँति आप भी विलायत जाकर सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठने के उत्सुक थे। परन्तु आपके पिता ने स्वयं सुयोग्य शासक होते हुए भी युवक जगदीश के लिए शासन क्षेत्र उपयुक्त न

समझा। वह अपने पुत्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भली भाँति जानते थे। उन्हें यह समझने देर न लगी कि युवक जगदीश अधिकार लालसा के ऊपरी भुलावे ही में पड़कर ऐसा करने की इच्छा प्रकट कर रहा है। उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि तुम्हारा जन्म अपने आप पर शासन करने के लिए हुआ है दूसरों पर शासन करने के लिए नहीं। तुम शासक होने के लिए नहीं वरन् विद्वान् होने के लिए अधिक उपयुक्त हो।

अन्त में बहुत ज़िद करने पर इन्हें इंगलैंड तो भेज दिया गया, लेकिन सिविल सर्विस परीक्षा के लिए नहीं वरन् विज्ञान के अध्ययन के लिए। कहा जाता है कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए इन्हें इंगलैंड भेजने को रुपये का प्रबन्ध करने के लिए इनकी माता ने अपने समस्त बहुमूल्य आभूषण बेच डाले थे। इनके पिता अपना अधिकांश धन देशी उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने और औद्योगिक स्कूलों की स्थापना और संचालन के प्रयत्नों में पहले ही गवाँ चुके थे।

इंगलैंड पहुंचकर बसु महोदय ने औषधि विज्ञान (मेडीसिन) का अध्ययन करने का निश्चय किया। लन्दन मेडिकल कालेज में अपना नाम लिखवा लिया। वहाँ भौतिक और रसायन विज्ञान तो आप के पूर्व पठित ही थे, हाँ शरीर विज्ञान में अवश्य ही आपको कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ता था। चीर फाड़ के कमरे की दुर्गन्ध से आपका जी बहुत घबराता था और कभी कभी तो वहाँ काम करना भी कठिन हो जाता था। इधर इंगलेंड जाने के पूर्व आसाम में कुछ समय रहने पर मलेरिया बुखार ने भी आपको अपना शिकार बना लिया था। इंगलैंड

पहुँचकर भी आपका मलेरिया से पिंड न छूटा और मेडिकल कालेज में अध्ययन करते समय आप जल्दी जल्दी बीमार पड़ने लगे। इस बीमारी से आपकी पढ़ाई में बहुत बाधा पड़ी और अन्त में मजबूर होकर डाक्टरी की पढ़ाई को तिलाञ्जलि देनी पड़ी।

मेडीकल कालेज से अलग होकर आपने विशुद्ध विज्ञान के अध्ययन का निश्चय किया और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। यद्यपि आप भारत में बी० ए० की परीक्षा पास करके गये थे परन्तु वहाँ उसे विशेष महत्व न दिया गया और आपको अध्ययन करने के बाद फिर से बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित होना पड़ा। १८८४ ई० में आपने रसायन और वनस्पति विज्ञान में यह परीक्षा सम्मानपूर्वक पास की। परीक्षा में अच्छा स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष में आपको प्रकृति विज्ञान का विशेष अध्ययन करने के लिए एक छात्रवृत्ति भी प्रदान की गई। अगले वर्ष आपने लन्दन विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। लन्दन और केम्ब्रिज में आपको लार्ड रेले, लिवींग, माइकेल फोस्टर, फ्रांसिस डार्विन, डेवार और वाइन्स सरीखे विज्ञान के प्रकाण्ड-पण्डित विज्ञान पढ़ाने के लिए मिले। यह सभी प्रोफेसर आपकी प्रतिभा पर मुग्ध रहते थे और इंगलैंड से भारत लौट आने पर भी आपको न भूल सके। आगे चलकर जब बसु महोदय अपने नवीन अन्वेषणों को लेकर फिर इंगलैंड गये तो इन सभी ने आपकी विशेष सहायता की।

वास्तव में बसु महोदय ने इंगलैंड में रहकर केवल परीक्षा पास करना ही अपना उद्देश्य नहीं बनाया। आपने उस समय के प्रसिद्ध

वैज्ञानिकों के अधिक से अधिक सम्पर्क में आने की चेष्टा की और उनके साथ रहकर उनकी कार्य प्रणाली का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया। इससे आपकी वैज्ञानिक अनुशीलन की स्वाभाविक प्रवृत्ति और भी बलवती होगई। इंगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड रैले की अध्यक्षता में काम करके आपने बहुत कुछ सीखा। वास्तव में उस समय किसी ने यह सोचा भी न था कि यही विद्यार्थी जगदीश, आगे चलकर जीव रहस्य का उद्घाटन करके नवीन ज्ञान के प्रकाश से संसार को चकित कर देगा।

प्रेसीडेंसी कालिज में प्रोफेसर

इंगलैंड से अपनी शिक्षा समाप्त करके जब आप १८८५ ई० में स्वदेश लौटे। उस समय आपकी आयु २५ वर्ष की थी। विलायत से विदा होते समय वहाँ के एक प्रसिद्ध प्रोफेसर मि० फासेट ने आप को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन के नाम एक परिचयपत्र भी दे दिया था। अतएव भारत आने पर कुछ ही दिनों के बाद १८८५ ई० में आप प्रेसिडेंसी कालेज में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त कर दिये गये।

सत्याग्रह

उन दिनों शिक्षा संस्थाओं में भी काले और गोरे की भेदनीति बर्ती जाती थी। आप भी इस भेदनीति के शिकार हुए। परन्तु आपने अत्यन्त दृढ़ता और निर्भीकता के साथ इस भेदनीति का एक सच्चे सत्याग्रही की भाँति विरोध किया और अन्त में नाना प्रकार के कष्ट

झेलने के बाद विजयी हुए। जिस समय बसु महोदय प्रोफेसर नियुक्त हुए थे, शिक्षा विभाग ने नियम बना रक्खा था कि बड़े से बड़े भारतीय को केवल काले भारतीय होने के नाते, अंग्रेज़ प्रोफेसर के वेतन का दो तिहाई भाग दिया जाय। जगदीशचन्द्र की नियुक्ति स्थायी न होने के कारण उन्हें इस दो तिहाई का भी आधा ही भाग देना निश्चित किया गया। इससे युवक जगदीश के आत्मसम्मान और स्वदेशाभिमान को बड़ा धक्का लगा। इस अनुचित और असमान बर्ताव के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए आपने निश्चय किया कि जब तक पूरा पूरा वेतन न मिलेगा आप वेतन का एक भी पैसा ग्रहण न करेंगे। लगातार तीन वर्ष आप वेतन की चेक शिक्षाविभाग को लौटाते रहे। तीन वर्ष के उपरान्त शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर और कालेज के प्रिंसिपल को आपकी योग्यता और प्रतिभा का कायल होकर आपको स्थायी पद पर नियुक्त करना पड़ा और पिछले तीन वर्षों का भी पूरा पूरा वेतन देना पड़ा।

इसी बीच में १८८७ ई० में आपने श्री दुर्गामोहन दास की द्वितीय पुत्री से विवाह भी कर लिया था। सुशील और सुयोग्य नवविवाहिता पत्नी ने आपके 'सत्याग्रह' के दिनों में बड़ी सहायता की। उन दिनों नवदम्पति को जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ा उन्हें भुक्त भोगी ही समझ सकते हैं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण श्री बसु ने कलकत्ते में मकान न लेकर, नदी के उस पार चन्द्रनगर में एक सस्ता सा मकान किराये पर लिया। वहाँ से वह स्वयं एक छोटी सी नाव खे कर नदी पार कर कलकत्ते आते थे और नाव को उनकी पत्नी श्रीमती अबला

बसु वापस ले ले जाया करती थीं। दो तीन वर्ष तक यही क्रम रहा। इसके बाद १८६० के शुरू में आपने अपने एक सम्बन्धी डा० एम०-एम० बसु के साथ मछुवा बाज़ार में रहने का प्रबन्ध कर लिया।

आर्थिक कठिनाइयों के साथ ही साथ उन्हीं दिनों आप को अपने कालिज में प्रयोगशाला सम्बन्धी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। कालिज में एक अच्छी प्रयोगशाला के अभाव में आपको अपनी निज की प्रयोगशाला का बंदोबस्त करना पड़ा। शुरू में कालिज अधिकारियों ने आपकी प्रयोगशाला सम्बन्धी सर्वथा उचित मांग पर भी कोई ध्यान न दिया। परन्तु इन कठिनाइयों ने आपकी वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति को और भी अधिक प्रोत्साहन दिया। आर्थिक कठिनाइयों की परवाह न करते हुए, अपनी ज़रूरत लायक स्वयं अपने घर पर एक प्रयोगशाला तैयार की और उसी में अनुसन्धान कार्य का सूत्रपात किया। बाद में कालिज अधिकारियों ने भी एक साधारण सी प्रयोगशाला का बंदोबस्त किया। और इस काम में शिक्षा विभाग को लगभग दस वर्ष लग गये!

इन दिनों आपने फोटोग्राफी और साउन्ड रेकार्डिंग * (संगीत एवं बोल-चाल के रेकार्ड तैयार करने में) विशेष अभिरुचि ली। अपने मछुवा बाज़ार के निवास-स्थान में, सामने के सहन में, घास के मैदान पर फोटो खींचने के लिए एक स्टूडिओ तैयार किया। छुट्टियों में फोटो खींचने के लिए आप आस-पास के देहातों और अन्य ऐतिहासिक स्थानों की यात्रायें करते। इसी बीच में प्रेसीडेंसी कालिज में एडिसन

* Sound Recording

के फोनोग्राफ का एक पुराना माडेल भी खरीद लिया गया था। इससे प्रो० बसु ने रेकार्ड तैयार करने के भी बहुत से प्रयोग किये। ये दोनों ही काम आप शौकिया, दिल बहलाव के लिए किया करते थे।

कुछ ही दिनों के बाद संसार के दूसरे अग्रगण्य वैज्ञानिकों ही की भांति आपका ध्यान भी विद्युत-चुम्बकीय (एलेक्ट्रो मेगनेटिक) तरंगों सम्बन्धी हर्ज के प्रयोगों की ओर अकर्षित हुआ। इन प्रयोगों ने उन दिनों विज्ञान संसार में बड़ी हलचल मचा रक्खी थी। नवम्बर १८६३ ई० में अपने ३५ वें जन्म दिवस पर आपने इस नवीन विज्ञान के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करने का संकल्प किया और बड़ी लगन के साथ इन तरंगों के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान शुरू किये। अगले वर्ष से इन अनुसन्धानों के परिणाम को आपने 'विद्युत तरंगों के गुण' * शीर्षक लेख माला के रूप में लिखना प्रारम्भ किया।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और खोज सम्बन्धी पत्र पत्रिकाओं में इन लेखों के प्रकाशित होने पर विज्ञान संसार में तहलका सा मच गया। आपका पहला लेख 'विद्युत-किरण का मणिभ द्वारा ध्रुवन' † बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में मई १८६५ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके बाद उसी वर्ष विद्युत से सम्बन्ध रखने वाले दो और लेख 'इलेक्ट्रीशियन' ‡ नामक सुप्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुए। आपके

* Properties of Electric waves.

† Polarisation of an Electric Ray by a crystal.

‡ Electrician.

कौशिक का परंपरावाद.

कौशिकः—षड्धातुवाद का खंडन करते हुए कौशिक ने यह कहा कि:—

तदुक्तवन्तं कुशिकमाह तन्नेति कौशिकः ।
कस्मान्मातापितृभ्यां हि विना षड्धातुजो भवेत् ॥
पुरुषः पुरुषाद्गौर्गोरश्वादश्वः प्रजायते ।
पित्र्या मेहादयश्चोक्ता रोगास्तावत्रकारणम् ॥

अर्थात् केवल षड्धातुसमुदाय से-इनका मिश्रण बना देने से पुरुष की अथवा रोगोकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि हो सकती है तो वह बिना माता पिता के ही क्यों नहीं होती ? और यह तो प्रत्यक्ष है कि पुरुष से पुरुष, गौ से गौ अश्व से अश्व इस तरह समस्त जीव जाति अपनी पितृपरंपरा से पैदा होती है। प्रमेह आदि रोग भी पैतृक दिखाई देते हैं। सारांश पुरुष और रोगों की उत्पत्ति में माता-पिता ही कारण हैं।

परंपरावादी इतने पक्के नास्तिक थे कि उनका खंडन स्वभाववादी और यदृच्छावादी जैसे नास्तिकों ने भी किया है। क्योंकि भारद्वाज ने इस पर यह आपत्ति बतलाई थी

ई० में आपने अपने अन्वेषण कार्य का विस्तृत विवरण रायल सोसाइटी के पास भेजा। सोसाइटी के अधिकारीगण आपके अनुसन्धान का विवरण पढ़कर और उसकी महत्ता को समझकर आश्चर्यचकित हो गये। शीघ्र ही लन्दन विश्वविद्यालय ने आपके मौलिक संधानों के उपलक्ष में आपको डी० एस-सी० (विज्ञानाचार्य) की उपाधि प्रदान की।

विद्युत तरंगों के गुणों की परीक्षा और तत्सम्बन्धी अनुसन्धान करते समय डा० बसु का ध्यान हर्ज द्वारा बतलाई गई विद्युत् चुम्बकीय तरंगों * की ओर आकर्षित हुआ। उन दिनों आचार्य जगदीशचन्द्र के अतिरिक्त संसार के और भी कई उच्चकोटि के भौतिक-विज्ञान-विशारद इन तरंगों की परीक्षा और निरीक्षण में लगे हुए थे। कुछ वैज्ञानिक इन तरंगों की मदद से बिजली के तारों के बिना ही सन्देश भेजने की भी चेष्टा कर रहे थे। इन वैज्ञानिकों में आचार्य बसु प्रो० मारकोनी और सर आलिवर लाज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पाठकों को यह जान कर सन्तोष होगा कि आचार्य बसु ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें इस कार्य में सब से पहिले सफलता प्राप्त हुई। मारकोनी के आविष्कार के कई वर्ष पूर्व १८९५ ई० में उन्होंने कलकत्ता टाउन हाल में बङ्गाल के तत्कालीन गवर्नर के सामने अपने अविष्कार का सफल प्रदर्शन किया था। उन्होंने बिजली ले जाने वाले तारों के बिना ही ईथर में विद्युत तरंगें प्रवाहित करके उनसे दूसरे कमरे में रक्खी हुई बिजली की एक घन्टी बजवाई, एक भारी बोझ उठवाया तथा एक विस्फोट कराया था।

* Electromagnetic waves.

परन्तु प्रतिभाशाली जगदीशचन्द्र पराधीन भारत की सन्तान थे। अतः उन के इस सर्वथा नवीन, मौलिक और क्रान्तिकारी आविष्कार की महत्ता को समझते हुए भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अपनी आंखें मूंद लीं और बसु महोदय को आधुनिक युग के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण आविष्कार के श्रेय से वंचित रक्खा। आचार्य बसु के इस प्रदर्शन के कुछ ही दिनों के बाद इटली के तरुण वैज्ञानिक प्रो० मारकोनी ने भी स्वतंत्र रूप से कार्य करके बेतार के आविष्कार में सफलता प्राप्त की। स्वतंत्र देश के नागरिक होने के नाते विज्ञान संसार ने उनके आविष्कार की महत्ता को तत्काल ही स्वीकार करके उनका यथेष्ट अभिनन्दन किया और आज संसार भर में मारकोनी ही 'बेतार के जनक' माने जाते हैं।

विद्युत तरंगों के बारे में अनुसन्धान करते समय उन्होंने विद्युत चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न करनेवाला एक सर्वथा नवीन प्रकार का उत्पादक यंत्र* तैयार किया। इस उत्पादक यंत्र से वह ५ मिलीमीटर की लहर लम्बाई की अत्यन्त सूक्ष्म तरंगें उत्पन्न करने में सफल हुए। इधर विद्युत चुम्बकीय तरंगों के बारे में यथेष्ट अनुसन्धान कार्य हो चुकने पर भी जो तरंगें जानी गई हैं उनमें ये सबसे छोटी हैं। उन्होंने इन तरंगों को ग्रहण करने और उनकी उपस्थिति का हाल मालूम करनेवाले अत्यन्त सूक्ष्मग्राही यंत्र भी तैयार किये। सर जे० जे० टामसन और पोंआकरे सरीखे विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डितों को भी बसु महोदय के इस

---

* Generator.

यंत्र की महत्ता को स्वीकार करके उनकी मौलिकता का क़ायल होना पड़ा। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' तथा दूसरे प्रतिष्ठित ग्रन्थों में आपके इस यंत्र का विशद वर्णन किया गया। अपने इस नवनिर्मित उपकरण द्वारा आप विद्युत तरंगों में प्रकाश की किरणों सरीखे प्रायः सभी गुणों की उपस्थिति को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाने में भी सफल हुए। इन तरंगों का विधिवत अध्ययन करते समय बसु महोदय ने इनके द्वारा बिना तार के दूर दूर तक संदेश भेजने की सम्भावना के बारे में भी कई प्रयोग किये। और शीघ्र ही ७५ फीट की दूरी तक बिना तार के सन्देश भेजने में भी सफलता प्राप्त की। उन दिनो जगदीशचन्द्र कलकत्ते में कान्वेंट रोड पर रहा करते थे और उनके घर पर आने जाने वाले व्यक्ति अक्सर उन्हें बिना तार के बिजली की घंटियां बजाकर सन्देशों का आदान प्रदान करते हुए पाते थे। जब बसु महोदय अपने इन यंत्रों के साथ १८९५ ई० में इंगलैंड गये और वहाँ के वैज्ञानिकों के सामने अपने प्रयोगों का प्रदर्शन किया तो इन यंत्रों को व्यवसायिक रूप देने तथा उन्हें व्यवहारिक रूप में काम में लाने की बात वहाँ के चतुर वैज्ञानिकों की दृष्टि से छिपी न रह सकी। लार्ड केलिवन, रैले, टामसन, लिपमैन, कॉनू, पोआंकरे, वारबुर्ग, क्विन्के तथा यूरोप के अन्य विज्ञान विशारद बसु महोदय के स्वनिर्मित नवीन यंत्रों और उपकरणों एवं उनके द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों के प्रदर्शन को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। यह जानकर कि आचार्य बसु ने यह सब यंत्र अपनी अत्यन्त साधारण सी प्रयोगशाला में तैयार किये हैं उन सब का आश्चर्य और भी अधिक बढ़ गया था।

जड़ पदार्थ भी चेतन हैं

बेतार की तरंगों के बारे में अन्वेषण करते समय बसु महोदय को अनुभव हुआ कि धातुओं के परमाणुओं पर भी अधिक दबाव पड़ने पर उनमें 'थकावट' आ जाती है और उन्हें फिर उत्तेजित करने पर वह थकावट दूर भी हो जाती है। इस अनुभव ने उन्हें पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण करने और इस थकान के बारे में खोज करने की ओर प्रेरित किया। बहुत छानबीन करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी पदार्थों में एक ही जीवन प्रवाहित हो रहा है। इस विषय में उन्होंने अनेक प्रयोग किये और बतलाया कि चेतन ही की तरह धात्वादि जड़ पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं, विष से मुरझाते हैं, मर जाते हैं और नशे से मस्त हो जाते हैं। अन्त में यह भी सिद्ध किया कि संसार के सभी पदार्थ सचेतन हैं। अचेतन में भी सुप्त जीवन है, तथा भौतिक संसार और प्राणि संसार के बीच में खाई नहीं, वरन् वनस्पति जीवन का एक पुल है। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि पेड़ पौधों में भी जीवन का स्पंदन है। वे भी मनुष्यों की तरह सुखी और दुखी होते हैं। उन पर भी सर्दी और गर्मी का प्रभाव पड़ता है। उन्हें भी हमारी ही तरह भूख और प्यास लगती है। वे भी बाहरी मात्रा स्पर्श से प्रभावित होते और चर प्राणियों ही की तरह उत्तर देते हैं, खाते, पीते, सोते हैं, काम करते हैं, आराम करते और मरते हैं। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिस्पांस इन् दि लिविङ् ऐंड नान लिविङ्'* द्वारा

---

* Response in the Living and Nonliving.

उन्होंने इन्हीं तथ्यों का प्रतिपादन किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने उद्भिजों पर इतनी परीक्षायें कीं कि शरीर विज्ञान की एक अलग शाखा ही स्थापित हो गई।

रायल सोसाइटी द्वारा सम्मान

इन अनुसन्धानों का विवरण प्रकाशित होने पर विदेशों में भी सर जगदीश की चर्चा की जाने लगी। इङ्गलैण्ड के वैज्ञानिक इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए और उन्हें रायल सोसाइटी के अपने नवीन अनुसन्धानों पर भाषण देने के लिए इंगलैण्ड आमंत्रित किया गया। रायल सोसाइटी द्वारा भाषण देने के लिए बुलाया जाना यथेष्ट गौरव और सम्मान की बात समझी जाती है। बसु महोदय को एक बार नहीं; वरन् तीन बार इस प्रकार सम्मानित किया गया।

सब से पहिले आप १८९७ ई० में इंगलैण्ड बुलाये गये। पहला भाषण आपने विद्युत तरंगों पर दिया। इसकी रायल सोसाइटी के सदस्यों और दूसरे वैज्ञानिकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की। दूसरे भाषण में १० मई १९०१ ई० को आपने जीवधारियों और वनस्पतियों के साम्य का प्रदर्शन किया। इस भाषण की भी बड़ी प्रशंसा की गई और वैज्ञानिक क्षेत्रों में बड़ी उत्सुकता के साथ इसकी चर्चा की जाने लगी। इसके कुछ ही दिन के बाद ६ जून को आपने इसी विषय पर एक और विशद भाषण दिया और अपने तथ्यों को सिद्ध करने के लिए भाषण के साथ ही साथ कई प्रयोगों का भी प्रदर्शन किया।

विरोधियों की पराजय

इस भाषण का भी आरम्भ में तो अच्छा स्वागत सा किया जाना प्रतीत हुआ। परन्तु इंगलैण्ड के वयो-वृद्ध वैज्ञानिक वर्षों तक वनस्पतियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर के भी जिन तथ्यों को न ज्ञात कर सके, उन्हें एक भारतीय युवक वैज्ञानिक ज्ञात कर सकेगा इस बात पर उनमें से बहुतों को विश्वास ही न हुआ। इसके अतिरिक्त बसु महोदय के कार्य से शरीर विज्ञान के सम्बन्ध में सर्वथा नवीन धारणायें स्थापित हो जाती थीं और उस समय तक प्रचलित धुरन्धर वैज्ञानिकों की धारणाओं का खण्डन होता था। यह बात भी उन लोगों को असह्य हो गई। अस्तु। उन लोगों ने बसु महोदय के अनुसन्धानों की केवल अवहेलना ही नहीं की वरन् इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध शरीर विज्ञान विशारद सर जान बरडन सेंडर्सन के नेतृत्व में उनका तीव्र विरोध किया गया। कुछ और प्रोफेसरों ने भी सेंडर्सन का समर्थन किया और बसु महोदय को सलाह दी कि वह शरीर विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान करने की अनधिकार चेष्टा न करें और अपने कार्यों को विद्युत तरंगों तथा भौतिक विज्ञान ही तक सीमित रक्खें। सेंडर्सन तो अपने विरोध में बहुत ही आगे बढ़ गये और यहां तक कह डाला कि जिन प्रयोगों और तथ्यों का डा० बसु ने अपने भाषण में जिक्र किया उन्हें करने और पाने में मैं वर्षों के लगातार प्रयत्नों के बाद भी सफल नहीं हो सका हूं इसलिए उनके मत का किसी भी प्रकार समर्थन नहीं किया जा सकता।

जगदीशचन्द्र बसु इस विरोध से तनिक भी न घबराये और उन्होंने दृढ़ता पूर्वक अपने मत में किसी भी प्रकार का परिवर्त्तन करने से बिल-

कुल इनकार कर दिया। विज्ञान के क्षेत्र में भी ज्ञान के विकास की सीमायें निर्धारित की जा सकती हैं यह बात उन्हें तनिक भी प्रभावित न कर सकी। उन्होंने रायल सोसाइटी की बैठक में प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के सम्मुख यह स्पष्ट कह दिया कि उनके अन्वेषण का विवरण प्रकाशित हो या न हो जब तक कोई उनके प्रयोगों का वैज्ञानिक रीति से खण्डन करके उन्हें गलत न प्रमाणित करेगा वह अपने मत में कोई भी परिवर्त्तन न करेंगे। इस विरोध के फलस्वरूप रायल सोसाइटी ने आपके अनुसन्धान पत्र को प्रकाशित नहीं किया। परन्तु इससे भी आप निराश न हुए और अनुसन्धान कार्य अनवरत रूप से जारी रक्खा।

इसी बीच में इङ्गलैण्ड की एक दूसरी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्था 'लीनिएन सोसाइटी' के कतिपय प्रमुख सदस्यों ने, जिनमें वाइन्स, हावेस और होरेस ब्राउन सरीखे प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी शामिल थे, बसु महोदय से अपने अन्वेषण विवरण को इस सोसाइटी की ओर से प्रकाशित करने देने का आग्रह किया। ये तीनों ही वैज्ञानिक अपने वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानों से यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। परन्तु आपके विरोधी इससे भी शान्त न हुए। कुछ लोग तो बहुत ही ज्यादा बढ़ गये और यह सिद्ध करने के प्रयत्न करने लगे कि डा० बसु के अनु-सन्धान नवीन और मौलिक नहीं हैं। एक और वैज्ञानिक इन तथ्यों को अपने नाम से इससे पहिले ही प्रकाशित करा चुका है!

जगदीशचन्द्र को इस बात का हाल लीनिएन सोसाइटी के मंत्री प्रो० हावेस के एक पत्र से मालूम हुआ। एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने जून १६०१ ई० में आचार्य जगदीशचन्द्र के रायल सोसाइटी वाले भाषण

को सुना था और उनके प्रयोगों को भी देखा था। उसने लन्दन ही की एक दूसरी वैज्ञानिक संस्था के द्वारा उन्हीं अनुसन्धानों को कुछ महीने बाद अपने नाम से प्रकाशित करा लिया था !!

जगदीशचन्द्र को अपने विरोधियों के इस कृत्य पर बहुत क्षोभ हुआ। परन्तु वह हताश होकर बैठ जाने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने अपने ऊपर लगाये जाने वाले इस लाञ्छन को सर्वथा निराधार और असत्य सिद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया और तत्काल ही लीनिएन सोसाइटी के अधिकारियों से इसकी निष्पक्ष जांच करने की अपील की। आपका यह अनुरोध फौरन ही स्वीकार कर लिया गया। सौभाग्य से लीनिएन सोसाइटी के सभापति और मंत्री प्रो० वाइन्स और प्रो० हावेस रायल सोसाइटी के फैलो भी थे। ये दोनों ही व्यक्ति जगदीशचन्द्र बसु के अनुसन्धानों के विवरण के प्रूफ रायल सोसाइटी में दस मास पूर्व देख चुके थे। अंग्रेज वैज्ञानिक ने अपना विवरण इसके पांच महीने बाद प्रकाशित कराया था। डा० बसु ने रायल सोसाइटी में इस विषय में जो भाषण दिया था, उसके मुद्रित विवरण भी उपलब्ध थे। इन सब बातों के आधार पर जांच कमेटी ने आपके अनुसन्धानों की मौलिकता और श्रेष्ठता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर लिया और उनके निबन्ध को शीघ्र ही प्रकाशित करा दिया। इससे इनके विरोधियों की बड़ी किरकिरी हुई।

जगदीशचन्द्र को इस प्रकार की और भी बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा परन्तु जिस तरह बारम्बार तपने पर खरे सोने की

आभा बढ़ती ही जाती है उसी प्रकार इन कठिनाइयों से जगदीशचन्द्र का यश और ख्याति बराबर बढ़ती ही गई।

फिर विरोध

वास्तव में इस विरोध ने बसु महोदय के उत्साह और अपने अनुसन्धानों में अभिरुचि लेने की लगन को कई गुना अधिक बढ़ा दिया। अपने अन्वेषण कार्य से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्षुद्र से क्षुद्र वनस्पति में भी मज्जातंतु होते हैं और जीवधारियों से वनस्पतियों का इतना साम्य है कि उनकी विभिन्नता का पता लगाना भी कठिन है। वनस्पतियों पर भी वाह्योत्तेजन का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा कि प्राणियों पर। शीत से आकुंचन, मादक द्रव्य से नशा और विष से उनकी भी मृत्यु होती है। पौधों में हृदय की सी धड़कन, उनकी नाड़ियों द्वारा नीचे से ऊपर रस प्रवाह आदि अनेक नवीन बातें उन्होंने सप्रमाण सिद्ध कीं।

१६०३ ई० में इन बातों की सूचना आपने फिर रायल सोसाइटी को दी। आपके इन अन्वेषणों के विवरण रायल सोसाइटी की मुखपत्रिका* में प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया गया। परन्तु उन दिनों आप इंगलैंड से बहुत दूर थे, अतएव आपके विरोधियों को फिर मौका मिला। इस बार उन्होंने कहा कि बसु महोदय के फल इतने अधिक असाधारण और आधुनिक सिद्धान्तों के विरोधी हैं कि जब तक डा० बसु उन्हें पौधों द्वारा अंकित कराकर प्रत्यक्ष प्रदर्शित नहीं कर दिखाते

---

* The Philosophical Transactions.

उन पर विश्वास करना सम्भव नहीं हो सकता। विरोधियों की यह चाल काम कर गई और जगदीशचन्द्र के अन्वेषण निबन्ध का प्रकाशन फिर स्थगित होगया।

नवीन यंत्रों का आविष्कार

जगदीशचन्द्र ने रायल सोसाइटी की इस चुनौती को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। अब तक उन्होंने पेड़ पौधों से अपना हाल कहलाने और उसे यंत्रों द्वारा प्रदर्शित कराने के जो साधन तैयार किये थे उन्हें और अधिक सूक्ष्मग्राही बनाने के प्रयत्न शुरू कर दिये। अपने नवीन और असाधारण सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष प्रदर्शित कर दिखाने के लिए सर्वथा नवीन यंत्रों का आविष्कार किया और उन्हें अपनी देख रेख में अपनी प्रयोगशाला में तैयार कराया। इन यंत्रों से पौधों की हृदय की धड़कन, उनकी वृद्धि का स्वतः लेखन, तथा उनकी संवेदना आदि प्रत्यक्ष देखना और दुःख एवं कष्ट होने पर उनका रोना भी सुना जा सकना सम्भव हो गया। इन यंत्रों द्वारा उन्होंने वनस्पतियों से उनकी मृत्यु वेदना का हाल लिखाने में भी सफलता प्राप्त की।

आपका सबसे पहला यंत्र 'अनुनादी अनुलेखन यंत्र'* १९११ में बन कर तैयार हुआ। इस यंत्र की सहायता से पौधे अपने स्नायुओं में होने वाली उत्तेजना आदि का हाल स्वयं लिखने में समर्थ होगये। इसके बाद १९१४ में उन्होंने 'आस्किलेटिंग रिकार्डर'† नामक यंत्र बनाया।

---

* Resonant Recorder.

† Oscillating Recorder.

इस यंत्र से बहुत ही छोटे छोटे पौधों की कोंपलों में होनेवाली स्नायविक धड़कन का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करना भी सम्भव हो गया। इसके बाद १९१७ ई० में 'कम्पाउंड लीवर क्रेस्कोग्राफ'* नामक एक और सूक्ष्मग्राही यंत्र तैयार किया। इससे साधारण वनस्पतियों और पौधों की बाढ़ की गति का नापना भी सम्भव हो गया। इस यंत्र से वह पाँच हज़ार गुना अभिवर्द्धन कराने में समर्थ हुए, और बनस्पतियों की बाढ़ की गति के बारे में बहुत ही आश्चर्यजनक बातें ज्ञात कीं। यह जान कर कि बाढ़ की गति बीर बहूटी की चाल के दो सहस्रवें अंश से भी कम है, बड़े बड़े वैज्ञानिक भी अचम्भे में आगये।

मेगनेटिक क्रेस्कोग्राफ

इस अभिवर्द्धन से भी सन्तुष्ट न होकर उन्होंने कुछ ही दिन के बाद उच्च अभिवर्द्धन करनेवाला 'मेगनेटिक क्रेस्कोग्राफ'† नामक एक और महत्वपूर्ण यंत्र तैयार किया। इस यंत्र की सहायता से दस लाख गुना अभिवर्द्धन सम्भव हो गया। इस अपूर्व यंत्र को देखकर विज्ञान संसार दंग रह गया। इसमें बढ़िया से बढ़िया सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी सैकड़ों गुना अधिक अभिवर्द्धन शक्ति पाई गई। यंत्र की इस असाधारण शक्ति को देख कर बड़े वैज्ञानिकों को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। बहुत से वैज्ञानिकों को बसु महोदय के सिद्धान्तों ही के समान उनके इस यंत्र की अद्‌भुत कार्य-क्षमता का भी एकाएक विश्वास न हुआ। इन वैज्ञानिकों में डा० वालेर का नाम प्रमुख है।

---

* Compound Lever Crescograph.

† Magnetic Crescograph.

परन्तु 'साँच को आँच कहाँ'। रायल सोसाइटी के ११ प्रमुख सदस्यों की एक कमेटी ने डा० जगदीशचन्द्र के इस यंत्र की विधिपूर्वक जाँच करके इसकी कार्य क्षमता में पूर्ण विश्वास प्रकट किया और बसु महोदय के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से समर्थन किया। रायल सोसाइटी के इन वैज्ञानिकों ने १९२० ई० में लन्दन के सुप्रसिद्ध 'टाइम्स' पत्र में जगदीशचन्द्र के सिद्धान्तों और उन सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करने वाले सर्वथा नवीन यंत्रों के बारे में अपना मत प्रकाशित कराया। इसके बाद तो बड़े बड़े दिग्गज विदेशी पण्डितों को आप की मौलिकता और प्रतिभा का क़ायल होना पड़ा। रायल सोसाइटी ने इसी वर्ष आपको अपना फैलो भी मनोनीत किया।

इसी वर्ष आपने एक और उपकरण* तैयार किया। इसकी सहायता से अनुलेखन यंत्र पौधों और वनस्पतियों की बाढ़ के न्यूनाधिक होने पर भी अपना काम अबाध्य रूप से करने में समर्थ होगया। इससे एक वर्ष पहिले १९१९ ई० में आपने एक ऐसा यंत्र भी बनाकर तैयार किया जिससे पौधों की छाल के नीचे उसके भीतरी कोषों† में होने वाली वैद्युतिक क्रियाओं की शक्ति नापना भी सम्भव हो गया।

इसके बाद १९२२ ई० में आपने 'फोटो सिंथेटिक रिकार्डर' ‡ नामक एक और यंत्र तैयार किया। इसकी सहायता से वृक्षों के पानी

---

* Balancing Apparatus

† Cells

‡ Photosynthetic Recorder.

पीने और भोजन ग्रहण करने के बारे में बहुत सी नवीन महत्वपूर्ण बातें मालूम हुई। इन बातों का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक लोग लगातार अनेक वर्षों से प्रयत्नशील थे, परन्तु उनमें से कोई भी इसका संतोषप्रद उत्तर ज्ञात न कर सका था। आचार्य बसु ने अपनी प्रयोग शाला में कार्य करके सब से पहिले यह सिद्ध किया कि पौधे के भीतर कोषों में होने वाली प्रक्रियाओं द्वारा ही पौधा अपने लिए जल और भोजन नीचे से ऊपर पहुंचाते हैं। इससे पहिले वैज्ञानिकों की इस बारे में कई धारणायें थीं। कुछ का कहना था कि पानी और पोषक रस (सेप) * पौधों में हवा के दबाव से और कुछ के अनुसार अभिसारक दबाव † से ऊपर चढ़ते हैं। कुछ दूसरे वैज्ञानिकों का विश्वास था कि जब पत्तियों द्वारा पानी हवा में उड़ता है तब काष्ठरन्ध्रों में शून्य ‡ हो जाता है जिससे पानी ऊपर खिंचने लगता है, इसके साथ ही जड़ों में भी एक प्रकार दबाव होता है जो पानी को ऊपर ढकेलता है। परन्तु आचार्य बसु की गवेषणाओं से इनमें से अधिकांश धारणायें निराधार प्रमाणित हुई।

इसके बाद १९२७ ई० में आपने एक और यंत्र 'डाइमीट्रिक कंट्रेक्शन अपरेटस' + बनाया। इसके द्वारा पौधों के भीतर के कोषों और

---

* Sap.

† Osmotic Pressure

‡ Vacuum.

+ Diametric Contraction Apparatus.

काष्ठरन्ध्रों में होने वाली आन्तरिक एवं अदृश्य क्रियाओं का पूरा पूरा हाल मालूम कर लेना सम्भव और सुगम हो गया। जिस काम को अत्यन्त शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्र भी करने में असमर्थ थे उसे आचार्य बसु के इस यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष प्रदर्शित करना साधारण सी बात हो गई। इसी यंत्र द्वारा बसु महोदय वनस्पतियों और प्राणिवर्ग के बीच पूर्ण साम्य स्थापित करने और उसे प्रत्यक्ष दिखलाने में भी सफल हुए, और सिद्ध किया कि सारे जीवधारियों में, वे चाहे अण्डज, पिण्डज, स्वेदज हों, चाहे उद्भिज—एक ही तरह की क्रियायें होती रहती हैं। वनस्पतियों में भी अन्य जीवधारियों ही की भांति हृदय होता है और वह मृत्यु पर्यन्त धड़कन करता रहता है। इस यंत्र के निर्माण द्वारा आपने संसार को तीसरी बार आश्चर्य चकित कर दिया। प्रथम बार बेतार और अदृश्य विद्युत किरणों के आविष्कार से, और द्वितीय बार इस बात की घोषणा से कि समस्त संसार को वास्तव में केवल एक ही महा प्राण शक्ति अनुप्राणित कर रही है और समस्त पदार्थ सजीव एवं सचेतन हैं।

यद्यपि डा० जगदीशचन्द्र के पास इन यंत्रों के बनाने के लिए पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सदृश यथेष्ट सुसम्पन्न साधन एवं सुविधायें न थीं, तथापि आपने इनके निर्माण में असाधारण सफलता प्राप्त की और संसार को भली भांति दिखला दिया कि आप उन्हीं प्रतिभाशाली प्राचीन आर्यों की सन्तान हैं जिन्होंने अत्यन्त साधारण साधनों से प्रकृति के महत्वपूर्ण नियमों का पता लगाया था। अपनी इस असाधारण सफलता के द्वारा आपने नवयुवकों के सम्मुख भी एक अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श

उपस्थित किया कि एकाग्रता और उद्देश्य की दृढ़ता एवं सच्चाई, सफलता की कुञ्जी हैं।

संजीवनी बूटी

विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र ने अपने अंतिम दिनों में इन यंत्रों से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी एक और अनुसन्धान किया था। इस अनुसन्धान से चिकित्सा विज्ञान में ज़बरदस्त क्रान्ति मच जाने की सम्भावना थी, परन्तु खेद है कि वह इसे व्यवहारिक रूप न दे सके। उन्होने हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली एक बूटी के रस से विष के प्रभाव से मृतप्राय पौधों को पुनर्जीवन प्रदान करने में सफलता प्राप्त भी कर ली थी। पौधों के बाद निम्न श्रेणी के मेंढक प्रभृति जीवों पर भी इस बूटी के सफल प्रयोग कर लिये गये थे। कई मृतप्राय आदमियों पर भी इस बूटी के प्रयोग करने पर उन्हें आशातीत सफलता मिली थी। अनेक अंशों में यह बूटी 'संजीवनी बूटी' ही के समान उपयोगी और लाभ दायक सिद्ध हुई थी।

संक्षेप में बसु महोदय के आविष्कारों ने जीवन के उन रहस्यों का उद्घाटन किया जिनसे आधुनिक विज्ञान संसार नितान्त अपरिचित था। आपके इन अद्भुत आविष्कारों का वर्णन यदि ठीक ठीक ढंग से व्यौरेवार किया जाय तो कई मोटे ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में तो उन सबका उल्लेख भी नहीं किया जा सकता। इन आविष्कारों से मानव जाति का असीम उपकार हुआ है। इनसे औषधि-विज्ञान, कृषि-विज्ञान और शरीर-विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए

हैं। जीव-विज्ञान की दृष्टि से तो ये सब आविष्कार बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

बसु महोदय इन आविष्कारों और प्रयोगों का पूरा पूरा विवरण बराबर पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित कराते रहते थे। बाद में वनस्पतियों से सम्बन्ध रखने वाली समस्त खोजों के विवरण और पुस्तिकाओं का संग्रह करके उन्होंने 'मोटर मैकेनिज़्म आफ प्लान्ट्स'* नामक एक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करा दिया था। यह ग्रन्थ लांगमैन एंड ग्रीन कम्पनी कलकत्ता से मिल सकता है। इस ग्रन्थ में उनके उद्भिजविज्ञान सम्बन्धी अधिकांश आविष्कारों और प्रयोगों का विशद एवं सप्रमाण विवरण दिया गया है। उनकी लेखन शैली इतनी सरल और सुबोध है कि केवल वैज्ञानिक ही नहीं वरन् सर्व साधारण भी इससे पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। इस पुस्तक के अतिरिक्त उन्होंने अपने अन्य आविष्कारों के बारे में और भी कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनका पूरा हाल बसु रिसर्च इंस्टीट्यूट, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता को लिखने से मालूम हो सकता है। इस संस्था में आपने जो अन्वेषण किये वे सब समय समय पर संस्था की मुख पत्रिका† में प्रकाशित होते रहते थे। बाद में इनके महत्वपूर्ण अंश को संग्रह करके एक पुस्तक‡ के रूप में प्रकाशित करा दिया था।

---

* Motor Mechanism of Plants.

† Transactions of the Bose Institute.

‡ Growth & Tropic movements in plants (1929).

वनस्पति विज्ञान के साथ ही आचार्य जगदीशचन्द्र के भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषण भी बड़े सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं। वास्तव में बसु महोदय ने अपनी विज्ञान साधना भौतिक विज्ञान ही के अनुसन्धानों से आरम्भ की थी और विदेशों में उनकी ख्याति का सूत्र-पात भी भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषणों ही से हुआ था। भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग करते करते ही उनको संसार के समस्त पदार्थों के सचेतन होने का आभास मिला था। और इन्हीं प्रयोगों से पदार्थों का गूढ़ निरीक्षण करने की प्रेरणा पाकर वह वनस्पतियों को सजीव सिद्ध करने में समर्थ हुए थे। उन भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों की चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड कैल्विन ने कहा था कि प्रोफेसर जगदीशचन्द्र ने भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों को हल करने में जो असाधारण सफलता प्राप्त की है उससे मैं विस्मय विमुग्ध हो जाता हूं। १९०० ई० में पहिली बार फ्रांस जाने पर फ्रांस की एकैडेमी आफ साइन्स के अध्यक्ष ने आपका स्वागत करते हुए कहा था—सहस्रों वर्ष पूर्व जो जाति सभ्यता के उच्च शिखर पर थी और जिसने अपने विज्ञान और कलाकौशल से संसार को आलोकित कर दिया था, आपने उसी गौरवमय जाति की कीर्ति को फिर से उज्ज्वल कर दिया है। हम फ्रांस के लोग आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

विदेशों में सम्मान

अपनी विज्ञान साधना आरम्भ करने के कुछ वर्ष बाद ही आपकी आविष्कारिणी प्रतिभा की विदेशों में धूम मच गई। आपके बारे में संसार की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं में, प्रशंसात्मक लेख प्रका-

शित होने लगे और विभिन्न देशों से आग्रह पूर्वक आपको निमंत्रण आने लगे। आप जहां भी गये बड़े धूमधाम से आप का स्वागत किया गया। कई देशों में तो आप शाही अतिथि के रूप में बुलाये गये। संसार भर की प्राय: सभी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको अपने यहाँ बुला कर स्वयं अपने आपको गौरवान्वित समझा। इंगलैंड की रायल सोसाइटी ने तीन बार आपको अपने विभिन्न अनुसन्धानों पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया।

विदेशों में आचार्य बसु की ख्याति बढ़ते देख भारत सरकार ने भी आपकी विद्वत्ता का कायल होकर आपको १९०० ई० में पेरिस की विज्ञान कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए भारतीय प्रतिनिधि बनाकर भेजा। इस यात्रा से आपकी ख्याति बहुत बढ़ गई; और आप विदेशों में "पूरब के जादूगर" के नाम से प्रख्यात हो गये। विज्ञान कांग्रेस के अतिरिक्त पेरिस की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं ने भी आप का यथेष्ट आदर सत्कार किया। वहाँ की एक प्रमुख वैज्ञानिक संस्था* ने आपको अपनी कौंसिल का भी सदस्य निर्वाचित किया। इस अवसर पर विद्युत तरंगों के सम्बन्ध में भाषण देते हुए आपने विभिन्न पदार्थों की 'चयनात्मक पारदर्शिता'† के बारे में कई नवीन बातें बतलाईं। बर्लिन बुलाये जाने पर वहां भी आपने इसी विषय पर भाषण दिया। जर्मन वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में पिछले कई वर्षों से छानबीन कर रहे थे। बसु महोदय के प्रयोग देखकर वे लोग दंग रह गये।

---

* The Societe Francaise de Physique.

† Selective Transparency.

जर्मन वैज्ञानिक आपकी विद्वत्ता और प्रतिभा पर इतने अधिक मुग्ध हो गये कि एक सम्पूर्ण विश्वविद्यालय ही आपको सौंपने को तैयार हो गये। कई मित्रों ने आप से इस आग्रह को स्वीकर कर लेने पर ज़ोर भी दिया परन्तु आप स्वदेश छोड़कर विदेशी विश्वविद्यालय में काम करने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार न हुए। इस प्रार्थना को धन्यवादपूर्वक स्वीकार करते हुए आपने जो उत्तर दिया था, वह आपके उत्कट देशप्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है—'मेरा कार्यक्षेत्र भारत ही रहेगा और मैं स्वदेश के उसी विद्यालय में काम करता रहूंगा, जिसमें मैंने उस समय प्रवेश किया था जब मुझे कोई जानता भी न था।'

१६१५ ई० में आप इंगलैंड के आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज विश्व-विद्यालयों में अपने आविष्कारों पर भाषण देने को आमंत्रित किये गये और वहाँ भी आपका यथेष्ट स्वागत-सत्कार हुआ। प्रो० सेवार्ड, सर फ्रांसिस डार्विन और प्रो० स्टार्लिंग, प्रभृति प्रतिष्ठित वैज्ञानिको ने आपके कार्यों और अनुसन्धानों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इन भाषणों के कुछ ही समय बाद आप आस्ट्रिया की राजधानी वीयना गये और वहाँ के प्रामाणिक विद्वानों के सम्मुख अपने नवीन अन्वेषणों के बारे में भाषण दिये। वीयना के विद्वानों ने भी आप का समुचित अभिनन्दन किया। वीयना के शाही विश्वविद्यालय* की ओर से प्रो० मोलिश ने आपको धन्यवाद देते हुए कहा कि 'आपने अपने अन्वेषणों द्वारा

* Prof Molisch, the Director of the Pflargen Physiologishches of the Imperial University of Vienna.

अनुसन्धान कार्य के लिए जिस नवीन मार्ग को प्रशस्त किया है उसके लिए यूरोप भारत का सदा ऋणी रहेगा।' वीयना के कई वैज्ञानिकों ने आपकी प्रयोगशाला में रह कर कार्य करने की अनुमति भी मांगी।

इसी यात्रा के अवसर पर आप अमेरिका भी गये। अमेरिका पहुंचते ही वहां की प्रायः सभी वैज्ञानिक संस्थाओं और विश्व-विद्यालयों की ओर से आपको निमंत्रण मिले। हारवर्ड, कोलम्बिया और शिकागो के विश्वविद्यालयों, तथा न्यूयार्क की एकेडेमी आफ साइंस, ब्रुकलिन की इंस्टीट्यूट आफ आर्ट्स एण्ड साइंसेज तथा वाशिंगटन की प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपका विशेष रूप से सम्मान किया। अमेरिका से आप जापान होते हुए स्वदेश वापस आये।

१६१५ की यात्रा से आप संसार भर में प्रसिद्ध हो गये। राष्ट्र-संघ ने आपको अपनी एक विशेष समिति (कमेटी फार इन्टेलैकचुअल कापरेशन आफ दी लीग आफ नेशन्स) का सदस्य निर्वाचित किया। इस हैसियत से आपको लगातार पांच वर्ष तक प्रतिवर्ष गर्मियों में यूरोप जाना होता था। इस समिति में भाग लेने से आपको पाश्चात्य संसार के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के घनिष्ट सम्पर्क में आने के अवसर प्राप्त हुए। इससे आपकी ख्याति बराबर बढ़ती ही गई। १६२८ की गर्मियों में जेनेवा के अतिरिक्त आप यूरोप के कई प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में भी गये। प्रायः सभी स्थानों में आपका धूम धाम से स्वागत किया गया। वीयना के प्रो० मोलिश तो इस बार आपके भाषण और प्रयोगों से

इतने अधिक प्रभावित हुए कि आपके साथ ही भारत आये और छै मास तक आपकी प्रयोगशाला में रहकर वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य करते रहे। वीयना के दूसरे वैज्ञानिक भी आपके कार्यों से बहुत अधिक प्रभावित हुए। उनकी ओर से वीयना विश्वविद्यालय के रेक्टर ने आपकी प्रशंसा में वायसराय के पास बाकायदा पत्र भेजकर आपके कार्यों की मुक्तकण्ठ से सराहना की। यूरोप से वापस आते समय आप मिश्र भी गये। मिश्र के प्रधान मंत्री ने विशेषरूप से ब्रिटिश सरकार द्वारा आपको निमंत्रण भेजा था। मिश्र के सम्राट अपने मंत्रिमण्डल सहित आपके स्वागत के लिए पधारे। समस्त मिश्र वासियों ने आपकी वैज्ञानिक गवेषणाओं एवं आविष्कारों पर खूब आनन्द प्रकट किया और हर्ष मनाया। 'अल मुकत्तम' नामक प्रसिद्ध मिश्री पत्र ने आपकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि 'हम पूरब के निवासियों में जगदीशचन्द्र बसु सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक हैं।' मिश्र के भी कई विद्वान आपकी देख रेख में कार्य करने के लिए भारत आये।

इन यात्राओं के अवसरों पर विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको अपना सम्मानीय सदस्य मनोनीत करके अपने आपको गौरवान्वित समझा। लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्र स्पेक्टेटर ने आप के सम्मान में एक दावत दी और उस अवसर पर गाल्सवर्दी, नोएस, रेबैका वैस्ट, नार्मन इंजेल, यीट्स, और ब्राउन प्रभृति प्रतिष्ठित साहित्यिकों ने आपका अभिनन्दन किया। रोम्यां रोलां और बरनार्ड शा प्रभृति प्रकाण्ड पण्डितों ने आपको अपने अपने ग्रन्थों के सैट बहुत ही श्रद्धा के साथ भेंट किये।

स्वदेश में सम्मान

१९१५ की संसार यात्रा के बाद स्वदेश लौटने पर यहाँ भी आपके स्वागत की धूम मच गई। कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने आपको डाक्टर आफ साइंस की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। पंजाब विश्वविद्यालय ने भी आपके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और आपको अपने अन्वेषणों एवं आविष्कारों पर भाषण देने के लिए सानुरोध लाहौर बुलाया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय की ओर से आप को १२००) की एक थैली भेंट की गई। इस धन को सधन्यवाद वापस करते हुए आपने उसे विश्वविद्यालय के किसी रिसर्च स्कालर (अन्वेषण कार्य करने वाले छात्र) को १००) मासिक की छात्र वृत्ति के रूप में देने का अनुरोध किया। १९२७ में आप लाहौर में होने वाली भारतीय विज्ञान काँग्रेस के सभापति भी बनाये गये।

भारत के दूसरे विश्वविद्यालय भी आपका यथोचित सम्मान करने में पीछे नहीं रहे। १९२८ ई० के नवम्बर मास ही में आपको प्रयाग विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण * देने के लिए आमंत्रित किया गया। उस अवसर पर विश्वविद्यालय की ओर से आप को डी० एस-सी० की सम्मानित उपाधि प्रदान की गई। विश्वविद्यालय के चांसलर और प्रान्त के गवर्नर सर मालकम हेली ने आपकी यथेष्ट प्रशंसा करके आपको महात्मा गांधी और कवीन्द्र रवीन्द्र की कोटि का महापुरुष बतलाया। और भी कई विश्वविद्यालयों ने आपको दीक्षान्त भाषण देने को आमंत्रित किया और अपने यहाँ की सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया।

* Convocation Address.

सरकार द्वारा सम्मान

जब आपकी कीर्ति पताका समस्त संसार में फहराने लगी और यूरोपीय एवं अमेरिकन वैज्ञानिक भी आपकी मौलिकता, श्रेष्ठता एवं प्रतिभा का लोहा मानने लगे तो भारत सरकार भी आपके अन्वेषण कार्यों और आविष्कारों को और अधिक उपेक्षा की दृष्टि से न देख सकी। रायल सोसाइटी द्वारा सम्मानित किये जाने के बाद सरकार की ओर से अन्वेषण कार्य के लिए आर्थिक सहायता दी अवश्य गई, परन्तु केवल नाम मात्र की। पेरिस में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए भी आपको सरकार की ओर से भारत का प्रतिनिधित्व करने को भेजा गया। और भी कई बार आपको यह उत्तर-दायित्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। १६०३ में आपको सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की गई। १६११में स्वर्गीय सम्राट के राज्याभिषेक के अवसर पर सी० एस० आई० का खिताब दिया गया। १६१६ में जब आप अपनी प्रथम संसार यात्रा के बाद यथेष्ट सम्मान और कीर्ति अर्जित करके भारत लौटे तो बंगाल सरकार ने भी एक सार्वजनिक सभा करके आपको अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। अगले वर्ष भारत सर-कार ने आपको 'सर' की उपाधि प्रदान करके पुनः सम्मानित किया। १६१८ में तत्कालीन वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड ने स्वयं आपकी विज्ञान शाला में जाकर आपका सम्मान किया और दो घंटे वहां रहकर बड़ी दिलचस्पी के साथ आपके विलक्षण प्रयोगों का निरीक्षण करते रहे।

१६१३ में पचपन साल की उम्र पूरी होने के उपरान्त आचार्य बसु को सरकारी नियमानुसार प्रेसिडैंसी कालिज से अवकाश ग्रहण

करना चाहिए था परन्तु बंगाल सरकार ने आपकी महत्वपूर्ण सेवाओं को ध्यान में रखते हुए आपका कार्यकाल दो वर्ष और बढ़ा दिया। १६१५ ई० में आपने ५७ वर्ष की आयु में कालिज से अवकाश ग्रहण किया। अवकाश ग्रहण करने के बाद कायदे से आपको पेंशन मिलनी चाहिये थी परन्तु पुनः सम्मानित करने के लिए सरकार ने आपको 'सम्मानीय अवकाशप्राप्त आचार्य' * नियुक्त करके जीवन पर्यन्त पूरा वेतन देने की घोषणा की। भारतीय शिक्षा विभाग में किसी आचार्य को इस प्रकार सम्मानित किये जाने का यह पहला ही अवसर था। अवकाश ग्रहण करने के कुछ ही समय पूर्व अधिकारियों को एकाएक पुराने काग़ज़ों की छान बीन करते समय, पता चला कि आपको जो वेतन मिल रहा है वह कम है। नियमानुसार आपको सबसे ऊँचे ग्रेड का वेतन मिलना चाहिए और आपको इस उचित अधिकार से अनजाने में ही बंचित रक्खा गया है। अस्तु शीघ्र ही गज़ट में इसकी घोषणा की गई और आप को विगत वर्षों का भी वेतन इसी हिसाब से दिया गया। इस तरह से आपको बहुत बड़ी रकम अनायास ही एक मुश्त मिल गई।

बसु विज्ञान मंदिर की स्थापना

१६१५ ई० में प्रेसिडेंसी कालिज से अवकाश ग्रहण करने के बाद आप एक स्वतंत्र विज्ञान शाला स्थापित करने के लिए प्रयत्न करने लगे। वैसे तो वैज्ञानिक कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट होने के समय ही से आप एक

---

* Emeritus Professor.

अच्छी प्रयोग शाला के अभाव का अनुभव कर रहे थे। एक सम्पन्न प्रयोगशाला के अभाव में आपको समय समय पर बहुत सी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा था। अतएव आपने अवकाश प्राप्त करने के बाद ही एक सुसम्पन्न उत्कृष्ट विज्ञानशाला स्थापित करने का निश्चय किया। इस विषय में आपने कई महत्वपूर्ण लेख लिखे और उनके द्वारा अन्वेषण कार्य की महत्ता को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि वह पढ़ाई बेकार सी है जो खोज और अन्वेषण कार्य को अपना अंग नहीं मानती। दूसरों के द्वारा अन्वेषित सिद्धान्तों का पाठ पढ़ते पढ़ते और केवल उन्हें ही प्रायोगिक दृष्टि से निरीक्षण करते रहने से विद्यार्थी रट्टू तोते के समान हो जाते हैं। उनकी बुद्धि का समुचित विकास नहीं होने पाता और वे सत्य और वास्तविक ज्ञान से सदैव दूर रहते हैं।

३० नवम्बर १९१७ को अपनी ५९ वीं वर्ष गांठ के अवसर पर आपने अपनी योजना के अनुसार शास्त्रोक्त विधि से अपने घर के पास ही एक नव निर्मित भव्य भवन में विज्ञानशाला की स्थापना की। इसकी स्थापना में आपने अपनी गाढ़ी कमाई का ५ लाख रुपया लगाया। आपके एक मित्र ने भी इस योजना के लिए यथेष्ट धन दिया। जनता की ओर से भी इस कार्य के लिए कुछ धन प्राप्त हुआ और गवर्नमेंट ने भी स्वर्गीय मि० मांटेगू के प्रयत्न से इस विज्ञानशाला को नियमित रूप से वार्षिक सहायता देने का प्रबन्ध कर दिया। ५ लाख नकद देने के अलावा अपने समस्त आविष्कार और नव निर्मित यंत्र आदि भी इसी संस्था को दान कर दिये। मरते समय भी आप इस संस्था को लगभग १५ लाख की सम्पत्ति दान कर गये।

विज्ञानशाला का उद्घाटन करते समय आपने जो भाषण दिया था वह आपके समस्त सार्वजनिक भाषणों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। इस भाषण से यह सिद्ध होता है कि सर जगदीश केवल एक महान् वैज्ञानिक ही नहीं थे वरन् ऊँचे दर्जे के दार्शनिक और आदर्शवादी भी थे। भाषण देते हुए आपने एक स्थल पर कहा था कि 'अमरत्व का बीज किसी पदार्थ विशेष में नहीं है वरन् विचारों में है। यह गुण सम्पत्ति में नहीं वरन् उच्च आदर्शों में है। सच्चा मानवीय साम्राज्य तो ज्ञान के विकास और सत्य के प्रसार से ही स्थापित हो सकता है। सांसारिक पदार्थों की लूट खसोट से नहीं।'

विज्ञान मन्दिर की स्थापना करते समय आपने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उसका प्रमुख उद्देश्य केवल सच्चे और नवीन ज्ञान की प्राप्ति करना और उसका प्रसार एवं प्रचार करना होगा। इस संस्था की उपलब्धियाँ एवं आविष्कार सार्वजनिक सम्पत्ति होंगे। स्थान और पर्याप्त साधन होने पर सभी धर्मों और देशों के विद्यार्थी इसमें शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। संस्था का आदर्श अतीत काल के भारतीय विश्व-विद्यालय होंगे।

इस विज्ञान मन्दिर की स्थापना द्वारा विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र ने संसार का और विशेषकर भारतवर्ष का जो उपकार किया है वह अकथनीय है। इस विज्ञानशाला की स्थापना और उसमें होने वाले महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्यों से आपने संसार को पुनः भारत का गौरवमय रूप दिखाने में सफलता प्राप्त की और यह सिद्ध कर दिया कि जिन भारतीय सिद्धान्तों को पाश्चात्य विद्वान दन्तकथाओं और चन्डूखाने की

गप्पों से अधिक महत्व न देते थे, उनमें भी उतनी ही सत्यता है जितनी दो और दो के मिलकर चार होने में होती है।

वास्तव में यह संस्था विज्ञान के क्षेत्र में बड़ा ही उपयोगी कार्य करके सारे संसार में भारत के लिए यथेष्ट यश और ख्याति अर्जित कर रही है। आचार्य बसु द्वारा प्रतिष्ठित इस विज्ञानमन्दिर में देश विदेश के अनेक प्रकाण्ड पण्डितों ने आकर इस संस्था में केवल उनके वैज्ञानिक चमत्कारों ही का अवलोकन नहीं किया है वरन् इस मन्दिर में रहकर विज्ञान साधना करने की अनुमति प्राप्त कर लेना अपना सौभाग्य समझा है। इस संस्था की स्थापना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके संस्थापक आचार्य बसु एक विश्व विश्रुत वैज्ञानिक होने के साथ ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति के भी बड़े अनुरागी थे।

सत्तरवीं वर्षगांठ

१ दिसम्बर १९२८ ई० को उनकी सत्तरहवीं वर्षगांठ बड़ी धूम धाम से मनाई गई। भारत के प्रायः सभी प्रतिष्ठित विद्वानों ने उसमें भाग लिया था। आचार्य वसु सपत्नीक विज्ञान मन्दिर के सुन्दर उपवन में नाना प्रकार के पुष्प और वनस्पतियों से सुसज्जित आसन पर बिठाये गये थे। उस अवसर पर कलकत्ते की समस्त शिक्षा संस्थाओं, भारतीय विश्वविद्यालयों, भारत सरकार, संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों और दूसरे प्रतिभाशाली विद्वानों के तार एवं सन्देश तथा बधाई पत्र पढ़कर सुनाये गये थे। विदेशों से आने वाले सन्देशों में मिश्र और चीन के मंत्रिमण्डलों, रोम्यां रोलां, बरनार्ड शा प्रभृति के सन्देश विशेष उल्लेखनीय

थे। चीन के शिक्षा मंत्री ने तार दिया था कि हम समस्त एशिया निवासी सर जगदीश के गौरव को अपना ही गौरव समझते हैं। रोम्यां रोलां ने बधाई पत्र भेजते हुए लिखा था "लोकोपकारी जादूगर तुम को प्रणाम। कितनी प्रसन्नता की बात है कि तुमने पूर्व की अध्यात्मिक और पश्चिम की भौतिकता का समन्वय कर डाला है। जहाँ अब तक हमारे लिए केवल अंधकार था, तथा जिसको हम निर्जीव समझते थे, वहां तुमने प्रकाश और विश्वजीवन के स्पंदन का निर्देश किया है।"

इन सब बधाई पत्रों का उत्तर देते हुए उन्होंने निम्न आशय का महत्वपूर्ण उत्तर दिया था :—"विगत चालीस वर्षों से लगातार मैं संसार में, भारतवर्ष को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूं। यह प्रयत्न विशेष रूप से भारतीय विज्ञान के प्रचार और प्रसार द्वारा ही हुए हैं। इस समय समस्त संसार एक दूसरे राष्ट्र की सभ्यता को नष्ट करने में लगा है। इससे बचने का एक मात्र उपाय सच्चे और वास्तविक ज्ञान का प्रचार ही है। और यही पूरब का सन्देश है। विज्ञान को आत्मज्ञान का रूप देने ही से इस समय संसार की रक्षा हो सकती है।"

मृत्यु

सत्तरवीं वर्षगाँठ के महोत्सव मनाने के बाद भी सर जगदीश ७-८ वर्ष तक बराबर अन्वेषण कार्य में लगे रहे। १९३६ ई० में अस्वस्थ होने पर वायु परिवर्त्तन के लिए वह सपत्नीक गिरीडीह चले गये। २३ नवम्बर १९३६ को ७८ वर्ष की आयु में हृदय की गति रुक जाने से उनका वहीं देहावसान हो गया।

सर जगदीशचन्द्र बसु के कोई सन्तान नहीं थी। परन्तु पिता की भाँति उनका सम्मान करने वाले शिष्यों की संख्या काफी बड़ी है। इन शिष्यों में विश्वविख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर मेघनाथ साहा जैसे सज्जन भी हैं जो अपने क्षेत्र में सफलता तथा ख्याति के पथ पर, अपने गुरु ही के पदों का अनुसरण करके, काफी अग्रसर हो चुके हैं। उनकी पत्नी लेडी अबला बसु बड़ी सुशिक्षिता, सुशीला, पति-परायणा साध्वी महिला हैं। उन्होंने कठिनाइयों के अवसरों पर अपने पति की जिस खूबी और चतुराई के साथ मदद की और आर्थिक कठिनाइयों के दिनों में जिस हिम्मत और साहस से काम लिया वह भारतीय महिलाओं के लिए एक आदर्श है। वास्तव में वह अपने पति की सच्चे अर्थों में जीवनसहचरी रही हैं। बसु महोदय ने नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए देश देशो में जो यश और कीर्ति प्राप्त की उसका बहुत कुछ श्रेय लेडी अबला बसु को दिया जा सकता है।

असाधारण दानशीलता

महान् युगप्रवर्तक वैज्ञानिक होने के साथ ही उनका समस्त जीवन ज्ञानोपार्जन, स्वावलम्बन तथा त्याग का ज्वलन्त उदाहरण है। अपने पैरों खड़े होकर उन्होंने समुचित ज्ञान, यश तथा धन का अर्जन किया और अपनी समस्त आर्थिक एवं वैज्ञानिक सम्पत्ति एवं उपलब्धियाँ देश को सौंप दीं। बसु विज्ञान मन्दिर को दान देकर भी उनके पास जो कुछ रुपया बचा उसे सार्वजनिक कार्यों के लिए देश को दे दिया। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि अपनी वार्षिक आय का केवल पाँचवाँ हिस्सा वह अपने काम में लाते थे बाकी सब रुपया

शिक्षण संस्थाओं को दान कर दिया करते थे। अपनी मृत्यु के पूर्व तक वह विभिन्न संस्थाओं को १७ लाख रुपये दान कर चुके थे। मृत्यु के उपरान्त भी उनकी इच्छा के अनुसार उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अबला बसु ने उनकी ओर से तीन लाख ७१ हज़ार रुपये दान देने की घोषणा की थी। इस रक़म में से एक लाख कलकत्ता विश्वविद्यालय को अन्वेषण कार्य के लिए, ५००००) प्रेसिडेंसी कालेज को, १ लाख कांग्रेस को बिहार में मद्यनिषेध कार्य के लिए, दस हज़ार साधारण ब्रह्म समाज को, तीन हज़ार बंगीय साहित्य परिषद को—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के लिए, तीन लाख राममोहन पुस्तकालय को पुस्तकों के लिए, ५ हज़ार कारमाइकेल मेडिकल कालेज को प्रयोगशाला बनवाने के लिए और एक लाख रुपया नारी शिक्षा समिति को बंगाल की स्त्रियों में प्रारम्भिक शिक्षा प्रचार के लिए दिये गये हैं। इतने दान के बाद भी उनकी जो सम्पत्ति बाकी बची वह सब की सब बसु विज्ञान मन्दिर को दे दी गई।

देशप्रेम

भारत सरीखे देश में, देशप्रेम अधिकतर राजनीति ही से सम्बद्ध माना जाता है। राजनीतिज्ञ ही आमतौर पर देश प्रेमी माने जाते हैं। सार्वजनिक नेता की हैसियत से भी आमतौर पर राजनीतिज्ञों ही का स्वागत सत्कार किया जाता है। परन्तु विज्ञानाचार्य बसु ने स्पष्ट कर दिया कि वैज्ञानिक भी बहुत ही ऊँचे दर्जे की देश सेवा कर सकते हैं और अपने कार्यों से पराधीन देश के नाम को संसार में प्रख्यात करके उसे अमर बना सकते हैं।

सर जगदीश ने विज्ञान विद्या यद्यपि पाश्चात्य देशों में प्राप्त की थी, तथापि वह भारतीय साधना ही के साधक थे। यही कारण है कि उनकी विज्ञान साधना भारतीय साधना की एक विशिष्ट धारा बनकर ही प्रस्फुटित हुई। अपने कार्यों के लिए वह एक अद्‌भुतकर्मा जादूगर वैज्ञानिक समझे जाते थे। उनकी वैज्ञानिक गवेषणाओं के फलस्वरूप प्राणि-जगत्, उद्भि-जगत् यहां तक कि जड़ जगत् में जो भेद माना जाता था वह विलुप्त हो गया। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि संसार के यावतीय पदार्थों में एक ही चैतन्य लीला चल रही है। उन्होंने इस सत्य को स्वयं तो अनुभूत किया ही, आधुनिक स्वनिर्मित वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा इस सत्य का प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शन भी करने में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों में बतलाया था कि इस महासत्य की उपलब्धि उन्हें भारतीय ऋषि मुनियों द्वारा प्रणीत उपनिषदों ही से हुई थी।

सफल अध्यापक

देशप्रेम के साथ ही साथ सर जगदीश में एक सफल आचार्य के भी सभी गुण विद्यमान थे। उनका गुरु का आदर्श भी प्राचीन ऋषि मुनियों ही के समान था। आधुनिक समय की तड़क भड़क और ऊपरी दिखावा तो उनको तनिक भी न छू गया था। सादगी ही उनका एक मात्र फैशन था। उन्होंने अपने असाधारण वैज्ञानिक कार्यों और सदुपदेशों से भारत ही नहीं वरन् संसार के अनेक देशों के सहस्रों युवकों को विज्ञान साधना के लिए प्रोत्साहित किया। आज दिन सैकड़ों वैज्ञानिक उनके उपदेशों से अनुप्राणित होकर अन्वेषण कार्य में लगे

हैं और मानव ज्ञान भण्डार को और अधिक समृद्धिशाली बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनके इन शिष्यों ने विज्ञान की जो सेवायें की हैं उन पर कोई भी आचार्य गर्व कर सकता है।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

वास्तव में आचार्य जगदीशचन्द्र आजीवन विज्ञान साधना में लगे रहे। विज्ञान की शिक्षा समाप्त करने के बाद जब से वह प्रेसिडेंसी कालेज में प्रोफेसर हुए तब से मृत्यु पर्यन्त उनका अधिकांश समय विज्ञान साधना ही में बीता। कालेज में अध्यापन कार्य से जितना भी समय बचता था, उसका उन्होंने बराबर अपनी विज्ञान साधना द्वारा नई नई बातों का पता लगाने में उपयोग किया। कालेज से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी वे बराबर विज्ञान साधना ही में लगे रहे, और किसी हद तक यह कहना असंगत न होगा कि उन्होंने विज्ञान के लिए अपना सारा जीवन ही उत्सर्ग कर दिया।

सर जगदीश की प्रतिभा केवल विज्ञान ही तक सीमित न थी। उन्होंने जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उसमें असाधारण सफलता प्राप्त की। विज्ञान ही के समान कला और साहित्य के भी वह बड़े मर्मज्ञ थे। उनके फोटोग्राफी के शौक की पहिले ही चर्चा की जा चुकी है। बंगला साहित्य की उन्होंने जो सेवायें की हैं उसके लिए बंगला भाषा भाषी लोग सदैव उनके ऋणी रहेंगे। उन्होंने स्वयं भी बंगला में जो कुछ लिखा है उसकी प्रतिष्ठित आलोचकों द्वारा श्रेष्ठ और स्थायी साहित्य में गणना की गई है। वह बंगाल के तरुण कलाकारों को बराबर

प्रोत्साहित करते रहते थे। चित्रकला के वह बड़े पारखी थे और शौकीन भी। गगेन्द्रनाथ टेगोर, अवनीन्द्रनाथ टेगोर और नन्दलाल बसु प्रभृति चित्रकारों के चित्र उन्हें बहुत पसंद थे और अपने मकान तथा विज्ञानशाला की दीवारों को इन लोगों द्वारा बनाये गये भव्य और आकर्षक चित्रों से सुसज्जित कर रखा था।

सामाजिक क्षेत्र में भी वह पक्के सुधारवादी थे। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है उन्होने आरम्भ ही से अपना समस्त जीवन विज्ञान साधना में लगा दिया था और विज्ञान अपने भक्तों से इतनी अधिक एकाग्रता और समय चाहता है कि फिर उनके पास राजनीति और समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों के लिए न समय बचता है और न शक्ति। इसी लिए सच्चे देश भक्त, पक्के राष्ट्रीयतावादी, और उदार चेता समाजसुधारवादी होते हुए भी वह कभी राजनीतिक अथवा सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय भाग न ले सके।

युवकों को उपदेश

वह बहुत ही दृढ़ प्रतिज्ञ और चरित्रवान् थे, बीसवीं सदी की वेष भूषा में वह एक सच्चे भारतीय ऋषि थे। जो कोई उनके संसर्ग में आता था वह उनके महान् व्यक्तित्व, ऋषि तुल्य त्याग और तपस्या मय जीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने आनन्दबाज़ार पत्रिका द्वारा भारतीय युवकों को जो सन्देश दिया था, वह हमें जीवन संग्राम में

विजय प्राप्त करने का अमोघ मंत्र बतलाता है। उन्होंने कहा था:—
"युवक ही सब देशों के दु:साध्य दायित्व का भार ग्रहण करते हैं। ....भारतीय युवकों को भी इस महान् आदर्श की पताका वहन कर पुंजीभूत दु:ख तथा नैराश्य के अंधकार में आशा की ज्योति जलानी चाहिए।......जो दुर्बल हैं तथा जीवन संग्राम से डरते हैं वे कापुरुष हैं......। हो सकता है कि हमारी तपस्या सफल न हो और हम अपने जीवन में इष्टलाभ न देख सकें पर इससे क्या? भारत की लाखों सन्तानों की जीवनव्यापी साधना अवश्य फूले फलेगी और जाति को शक्तिशाली बनावेगी। हम मर भी जायँगे तो जातीय जीवन अमर रहेगा।"

विद्यार्थियों और तरुणों को वह एकाग्र मन होकर काम करने के लिए बराबर ज़ोर देते थे। एक बार उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था कि 'हमें अपने मन को एकाग्र रखना चाहिए। जिस काम को अपने हाथ में लें उसमें पूर्ण रूप से मन लगाना चाहिए। पहले बात मन में आती है और उसके बाद कार्य रूप में परिणत की जाती है। अतएव किसी भी काम को करने के लिए मन की शान्ति और स्थिरता की बड़ी आवश्यकता है। जिसका मन स्वस्थ और स्थिर नहीं रहता इधर उधर भटकता फिरता है, जो सत्य की खोज के बदले निजी स्वार्थ साधन में लगा रहता है वह कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।'

सितम्बर १९२८ ई० में अपनी दूसरी संसार यात्रा से वापस आने पर बम्बई के युवकों की ओर से आपको जो अभिनन्दन पत्र समर्पित

किया गया था—उस अवसर पर भी आपने ऐसे ही विचार प्रकट किये थे और कहा था—कि "क्या संसार में ऐसा कोई कार्य है जिसे युवकगण एकाग्रचित्त होकर भी नहीं कर सकते? मेरे पास जब कोई विद्यार्थी आता है तो मैं उससे पूछता हूं कि क्या वह भली भाँति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा? वह बहुधा यही उत्तर देता है—'मैं कोशिश करूँगा।' इस वाक्य से उसकी नम्रता नहीं प्रकट होती वरन् इससे उसके डरपोकपन और कमज़ोरी ही का परिचय मिलता है और सिद्ध होता है कि वह अपने कर्त्तव्य को भली भाँति निबाहने में असमर्थ है और उसमें आत्मविश्वास की कमी है। कमज़ोर विद्यार्थियों की आदत होती है कि वे लोग अपने विद्यालय, अध्यापक अथवा सरकार आदि को दोष देने लगते हैं। बहुत से तो इससे भी बढ़ जाते हैं और समय ही को कोसने लगते हैं। वास्तव में युवकों का कर्त्तव्य तो इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। उनके लिए समय का बुरा भला होना कोई विशेष बात नहीं है। एक बार भली भाँति सोच लो कि तुम क्या करना चाहते हो और निश्चिन्त होकर दृढ़तापूर्वक कह दो कि मैं यह काम अवश्य करूँगा।'

बंगाल प्रान्त के रहने वाले होते हुए भी सर जगदीश साधारण बंगालियों के प्रान्तीयता के संकीर्ण भावों से बहुत परे थे और पक्के राष्ट्रीयतावादी थे। वह बराबर प्रान्तीय झगड़े बखेड़ों को मिटाने की अपील करते रहते थे और कहते थे कि देश को इनकी आवश्यकता नहीं है। जब तक किसी भी बात को समस्त देश के लिए नहीं प्राप्त किया जायगा कोई भी प्रान्त आनन्द और शान्ति नहीं प्राप्त कर

सकता। समस्त प्रान्तों को पारस्परिक वैमनस्य भूलकर वृहत्तर भारत के निर्माण में लगना चाहिए।

× × ×

संक्षेप में विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र ने अपना सारा का सारा जीवन जिन महत्वपूर्ण कार्यों के लिए उत्सर्ग कर दिया उनसे वह आज मर कर भी जीवित हैं। उनका नाम, यश और कीर्ति आज दिन उनके इस संसार में न होने पर भी चिर काल तक बने रहेंगे।

उत्तेजना मिलती है जिनके कि सम्पर्क मे वह दिन रात आता है। यदि किसी घर मे वयस्क मनुष्य माता-पिता चाचा आदि पान-सिगरेट खाने-पीने वाले पहले से ही उपस्थित हों अथवा स्कूल मे शिक्षक लोगों मे यह दुर्व्यसन हो और वे विद्यार्थियों से पान-सिगरेट आदि मगाते हों, तो फिर कुप्रवृत्ति के पड़ने मे देर नहीं लगती। अब मै सिगरेट पीने वाले एक दुर्व्यसनी का वास्तविक उदाहरण लेता हू और उसकी जीवनी का कुछ अश यहां देता हूं। इससे आप समझ जायेंगे कि यह दुर्व्यसन किस प्रकार उत्पन्न होता है, किस प्रकार वयस्क पुरुषों द्वारा उत्तेजना मिलती है और फिर किस प्रकार यह लत बढ़ती जाती है।

"उम्र थी ग्यारह-बारह साल की और मैं पढ़ता था उर्दू स्कूलों के दर्जा चार में। घर मे हुक्का पीने वालों की कमी न थी। खालू-मामू वगैरह सभी तो हुक्का पीने वाले थे, अम्मीजान का पानदान और तम्बाकू की शीशी हमेशा उनके पास ही रहती थी और अब्बाजान तो ऐसे बेढब पीने वाले थे और ऐसा कसकर दम लगाते थे कि चिलम से आग की लौ उठने लगती थी और अब्बाजान लुढके हुए चबूतरे के नीचे दिखाई देते थे, कारण कि बदन था कमजोर, दम लगाते थे खैंचकर, सह नहीं सकते थे. तम्बाकू के नशे मे सिर चक्कर खाने लगता था। कभी कभी अब्बाजान मुझसे भी हुक्का ताजा करने और चिलम भरने को कह देते थे। इधर तो जवानी का उभार और उधर यह उत्सुकता कि देखें इसमें क्या मजा आता है और साथ ही यह डर भी कि पानी ठीक है या

डा० सर शाह मुहम्मद सुलेमान

[१८८६—१९४१]

तो खुद ही पीते थे और आये-दिन लड़कों से सिगरेट-बीड़ी मगाते रहते थे और दिन भर बैठे बैठे फूक २ करते और धुआं उड़ाते हुए दिखाई देते थे। बस राय पास हो गई और उसी वक्त सिगरेट खरीदी गई और मुह से धुआं निकलकर साप की तरह लहराता हुआ आसमान पर चढ़ने लगा. बदन मे गर्मी और चाल में अकड़ आगई और साथ ही सिर में चक्कर भी जो थोड़ी देर में दूर हो गया। धीरे धीरे आदत पड़ गई और साथ ही साथ कोई देख न ले चुराकर सिगरेट पीने की और कभी कभी पैसे न होने पर उधार लेने और तकादा होने पर पैसे चुराने की आदतें भी पड़ने लगीं। इस प्रकार सिगरेट के शौक का भी श्रीगणेश होगया।

धीरे धीरे सिगरेट पीना फैशन मे आने लगा और घर से निकलने से पहले जेब में सिगरेट का होना आवश्यक हो गया। घर से बाहर निकले कि लग गई सिगरेट मुह मे और उडने लगा धुआं चक्कर काटता हुआ। इतना ही नहीं, चाल में भी अकड़ पैदा हो गई और समझने लगे कि अब दुनिया मे हमारे समान कोई नहीं है। इस प्रकार सिगरेट से एकदम स्थिति ही बदल गई और हो गये बड़े आदमी, लेकिन कभी कभी ऐसे अवसर भी आ पडते थे कि बड़प्पन का बचाना कठिन हो जाता था और चोर-चकोर की भाँति भागकर पास-पडोस की गली मे घुसकर छिपने तक की नौबत आजाती थी। इतनी देख-भाल रखते और चौकन्ना रहते हुए भी कभी कभी मुसीबत में फस जाना ही पड़ता था। एक दिन की बात है कि लाट साहब की तरह सिगरेट मुँह में दबाए, धुआ

उड़ाते हुए चले जा रहे थे कि इतने में सामने से वालिद साहब आते हुए दिखाई पड़े। बस नीचे का दम नीचे और ऊपर का ऊपर, भागकर छिपने को सामने कोई गली भी न थी, बदन में काटो तो खून नहीं, आंखों तले अंधेरा छा गया, जाड़ों का मौसम था और उसमे भी दिसम्बर का महीना, लेकिन मैं फिर भी सिर से पैर तक पसीने में तर था। आखिर घबराहट में सिगरेट जेब में रख ली और मैं आँख बचाकर चलने लगा, लेकिन भला वालिद साहब की निगाह कब चूकने वाली थी। आखिर मुकाबला हो ही तो गया। बहुत-कुछ झूठ-सच बोलने, कापी आदि का बहाना करने के बाद किसी तरह राम राम करके जान बची, लेकिन नये कोट की जेब साफ हो गई और पतलून भी अछूती न बची। उस दिन से कान पकड़ा और तोबा की कि अब कभी सिगरेट मुंह से न लगाऊंगा, लेकिन नशे वालों के प्रण जैसे होते हैं वैसा ही हुआ, दस-पांच दिन तो नही पी, पर संग-साथ में पड़ने पर बचना कठिन था और फिर भला यार लोग कब मानने वाले थे। फिर पीने लगा और फिर बड़ा होने पर एक दिन तो मास्टर साहब के हाथ से एक दर्जन बेंत खाने पर भी सिगरेट का चस्का न छूटा, न छूटा। इतना इसका साथ देने पर भी हाथ क्या लगा ? कुछ नहीं केवल खाँसी-खुर्रा।"

संभवत, अब आप समझ गये होंगे कि घर मे बडों के सिगरेट-बीड़ी पीने और कुसंगत मे पड़ने पर किस प्रकार छोटे बच्चे भी बीड़ी-सिगरेट, हुक्का आदि पीने लगते हैं। पिता,

वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन के उत्कृष्ट और प्रिय शिष्यों में गिने जाने लगे। सर जे० जे० टामसन के सम्पर्क में रहकर उन्हें गणित और विज्ञान के गम्भीर अध्ययन और समुचित ज्ञान प्राप्त करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। वास्तव में प्रयाग में डा० गणेश प्रसाद और केम्ब्रिज में सर जे० जे० टामसन के सम्पर्क में आने ही का यह परिणाम था कि आगे चलकर अनेक प्रकार के सांसारिक झंझटों में फँसे रहने पर, तथा हाईकोर्ट और फेडरेल कोर्ट के जज के बहुत ही ज़िम्मेदारी के पदों पर काम करते हुए भी वे उच्चकोटि के वैज्ञानिक सन्धान करने में सफल हुए। अस्तु तीन वर्ष तक केम्ब्रिज में अध्ययन करने के पश्चात् १९०९ में उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की गणित की सर्वोच्च 'ट्राइपास' परीक्षा सम्मान पूर्वक पास की।

उसी वर्ष वे भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा में भी सम्मिलित हुए, परन्तु सफल न हो सके। प्रकट रूप से यह उनके जीवन की प्रथम और अन्तिम असफलता थी; परन्तु वास्तव में यह असफलता उनके भावी जीवन की सफलता के एक साधन रूप में काम आई। बहुत सम्भव था कि इस परीक्षा में सफल होने पर वे शासनरूपी मेशीन का एक पुरज़ा-मात्र बनकर रह जाते और संसार उनकी असाधारण प्रतिभा एवं मस्तिष्क के विविध गुणों से सर्वथा वंचित रह जाता।

सिविल सर्विस परीक्षा में असफल होने के बाद वे फिर दुबारा इस परीक्षा में शामिल न हुए। उन्होंने अपने खानदानी पेशे ही को स्वीकार करने का निश्चय किया। १९१० ई० में उन्होंने कानून की उच्च परीक्षा डब्लिन विश्वविद्यालय से सम्मान पूर्वक पास की और

इस उपलक्ष्य में उन्हें यूनिवर्सिटी ने एल-एल० डी० की उपाधि प्रदान की।

बैरिस्टर

अगले वर्ष अर्थात् १९११ ई० में शाही दरबार के साल, डा० शाह मुहम्मद सुलेमान भारत लौट आये और अपने पिता के साथ जौनपुर में बैरिस्टरी करने लगे। साल भर तक अपने पिता के सहकारी का काम करने के बाद अगले वर्ष (१९१२) उन्होंने अधिक विस्तृत कार्य क्षेत्र में प्रवेश किया और इलाहाबाद के हाईकोर्ट में प्रेक्टिस शुरू की। काम शुरू करते ही उन्होंने मुवक्किलों पर अपनी धाक जमा दी। लोग अच्छे अच्छे मुक़दमें उन्हें शौक से देने लगे। धीरे धीरे मुवक्किलों के साथ ही, न्यायाधीश लोग भी उनकी कार्यकुशलता, कुशाग्र बुद्धि, कानून के अपार ज्ञान एवं स्पष्टवादिता आदि का लोहा मानने लगे। रानी शेर-कोट, धर्मपूर, बमरौली और भिलावल प्रभृति प्रसिद्ध मुक़दमों की सफलता से वे बहुत प्रसिद्ध हो गये। इन मुक़दमों की उन्होंने इतनी योग्यतापूर्वक पैरवी की कि हाईकोर्ट के तत्कालीन जज सर हेनरी रिचार्ड्‌स और सर ग्रिमवुड मीयर्स उनके अगाध कानून ज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। फलस्वरूप उन दोनों ने सरकार से सिफारिश करके, हाईकोर्ट में प्रेक्टिस करने के ७—८ साल बाद ही, १९२० ई० में डा० सुलेमान को ३४ वर्ष की तरुण अवस्था में हाईकोर्ट का स्थानापन्न जज नियुक्त करा दिया।

हाईकोर्ट के जज

इतनी कम आयु में हाईकोर्ट के जज जैसे जिम्मेदारी के पद पर

किसी वकील के नियुक्त होने का सौभाग्य इससे पहले केवल स्वर्गीय श्रीद्वारकानाथ मित्र को प्राप्त हुआ था। वे ३३ वर्ष की आयु में कलकत्ता हाईकोर्ट की बेंच के सदस्य नियुक्त किये गये थे। सुविख्यात जस्टिस श्रीकाशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग को भी यह सौभाग्य ३९ वर्ष की आयु तक न प्राप्त हो सका था। इसमें सन्देह नहीं कि डा० सुलेमान के जज नियुक्त किये जाने में सरकार की साम्प्रदायिक नीति का बहुत कुछ हाथ था। सरकार उस मौके पर किसी मुसलमान ही को इस पद पर नियुक्त करना चाहती थी; परन्तु योग्यता की दृष्टि से भी यह नियुक्ति किसी तरह असंगत न कही जा सकती थी। स्थानापन्न कार्य काल की समाप्ति के बाद भी, उन्हें फिर स्थायी पद के लिए अधिक इंतज़ार न करना पड़ा। थोड़े ही दिन और बैरिस्टरी करने के बाद वे शीघ्र ही फिर हाईकोर्ट की बेंच के स्थायी सदस्य नियुक्त कर दिये गये। इसके कुछ ही वर्ष बाद, ४३ वर्ष की आयु में, उन्हें इलाहाबाद हाईकोर्ट का स्थानापन्न चीफ़ जस्टिस (प्रधान न्यायाधीश) बनाया गया। वे युक्त प्रान्त में पहले और भारत में दूसरे भारतीय थे जिन्हें इस गौरवपूर्ण पद पर नियुक्त किया गया था। इसके तीन वर्ष बाद, ४६ वर्ष की आयु में वे इस पद पर स्थायी रूप से नियुक्त कर दिये गये थे। इसके ५ वर्ष बाद १९३७ में वे, नवीन शासनविधान द्वारा संगठित संघ अदालत (फेडरेल कोर्ट) के जज नियुक्त किये गये। फेडरेल कोर्ट के जज नियुक्त होने के बाद से उन्होंने अमेरिका एवं इंगलैंड के प्रसिद्ध न्यायाधीशों एवं कानून के पण्डितों से अपना सम्पर्क बहुत काफी बढ़ा लिया था।

विज्ञान साधना का सूत्रपात

हाईकोर्ट के जज नियुक्त होने के बाद वे उत्तरोत्तर उन्नति करने लगे थे। कानून के क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करने के साथ ही वे विभिन्न सार्वजनिक कार्यों में भी समुचित भाग लेते थे। कानून के पेशे को ग्रहण करने के बाद भी उन्होंने विज्ञान और गणित से अपना सम्बन्ध बराबर बनाये रखा। हाईकोर्ट के जज नियुक्त होने के बाद तो वे इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए विशेष रूप से आकृष्ट हुए। कानून के क्षेत्र में भारतीयों में सर्व श्रेष्ठ प्रशंसा और सम्मान पाने के साथ ही उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक महत्वपूर्ण गवेषणायें कीं। उन्होंने अपनी स्वतंत्र मौलिक गवेषणाओं द्वारा भारतीय वैज्ञानिकों में नहीं वरन् संसार के कतिपय श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में अपने लिए प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था और इस प्रकार भी अपने देश के लिए यथेष्ट कीर्ति उपार्जित करने में सफलता प्राप्त की थी। वास्तव में शाह सुलेमान ही अकेले ऐसे भारतीय थे जिन्होंने कानून के साथ ही शिक्षा एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी असाधारण सफलता प्राप्त की थी।

यह सर सुलेमान जैसे महापुरुष ही का काम था कि प्रधान न्यायाधीश जैसे बहुत ही ज़िम्मेदार पद पर काम करते हुए, तथा अनेक सार्वजनिक हितों के, विशेषकर शिक्षा संस्थाओं के कामों में भाग लेते हुए, भी वे स्वतंत्र रूप से उच्च वैज्ञानिक कार्य करने के लिए यथेष्ट समय निकाल लेते थे। जब शुरू शुरू में लोगों को उनकी महत्वपूर्ण विज्ञान साधना का हाल मालूम हुआ था, तो एक खलबली सी मच गई थी। जन साधारण ही नहीं, वरन् उनके सहयोगी और इष्ट मित्र भी आश्चर्य

चकित हुए बिना नहीं रह सके थे। निस्सन्देह शाह सुलेमान जैसे व्यस्त व्यक्ति का विज्ञान साधना के लिए, और वह भी गणित सम्बन्धी अत्यन्त जटिल एवं गम्भीर समस्याओं को हल करने को, यथेष्ट समय निकाल लेना और महत्वपूर्ण सन्धान करने में सफल होना, थी भी एक आश्चर्य की बात !

वास्तव में डा० सुलेमान अपनी छात्रावस्था ही से विज्ञान की ओर आकृष्ट हो चुके थे। प्रयाग और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में उच्च गणित के अध्ययन और डा० गणेशप्रसाद एवं सर जे० जे० टामसन सरीखे प्रकाण्ड वैज्ञानिकों के सम्पर्क ने उनके गणित प्रेम को और अधिक बलवान बना दिया था। फलस्वरूप कानूनी पेशे को ग्रहण करने के बाद तथा न्यायाधीश बना दिये जाने पर भी वे गणित और विज्ञान को सर्वथा तिलाञ्जलि न दे सके थे। अपने अवकाश के समय में बराबर वैज्ञानिक साहित्य का अध्ययन और अवलोकन करते रहते थे। अपने पेशे में सफलता के उच्च शिखर पर पहुंचने के बाद तो उन्होंने विज्ञान की सामयिक, विशेषकर गणित और मौलिक विज्ञान सम्बन्धी विचारधाराओं का अध्ययन आरम्भ किया। बीच में, काफी अरसे तक विज्ञान के क्षेत्र से सक्रिय रूप से बाहर रहने के कारण उनमें जो शिथिलता सी आगई थी उसे दूर करने और अपने ज्ञान को अपटूडेट बनाने के लिए उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के विज्ञानाचार्य डा० मेघनाथ साहा का सहयोग प्राप्त किया। डा० साहा की सिफारिश से उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० डी० एस० कोठारी और उनके दिल्ली विश्वविद्यालय में नियुक्त होने के बाद, श्री रामनिवास राय का भी

सहयोग प्राप्त हुआ। ये दोनों ही तरुण वैज्ञानिक प्रायः नियमित रूप से डा० सुलेमान के साथ गणित और भौतिक विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली सामयिक समस्याओं पर वादविवाद किया करते थे। आगे चल कर इन दोनों ही से उन्हें अपनी वैज्ञानिक गवेषणाओं में भी समुचित सहायता प्राप्त हुई। उनके विशद, व्यापक एवं गम्भीर अध्ययन, उनकी विलक्षण बुद्धि, तथा न्यायाधीश की विचारशक्ति एवं प्रतिभा ने उनकी वैज्ञानिक गवेषणा का मार्ग और भी अधिक प्रशस्त कर दिया।

सापेक्षवाद का खण्डन

डा० सुलेमान ने जिस समस्या को हल करने के प्रयत्न शुरू किये वह विज्ञान की कोई साधारण समस्या न थी, वरन् आधुनिक समय की अत्यन्त गम्भीर एवं जटिल समस्या 'सापेक्षवाद के सिद्धान्त'* से सम्बन्ध रखती थी। उन्होंने विश्वविख्यात वैज्ञानिक आयन्स्टीन के सुप्रसिद्ध सापेक्षवाद सिद्धान्त में कुछ त्रुटियाँ बतलाकर विज्ञान संसार को हैरत में डाल दिया था। उनके इस कार्य की महत्ता को ठीक ठीक समझने के लिए यह बतलाना अप्रासांगिक न होगा कि संसार में आयन्स्टीन के इस सिद्धान्त को समझने वाले इने गिने ही व्यक्ति हैं। कुछ समय पूर्व तो यहाँ तक कहा जाता था कि संसार भर में केवल एक दर्जन ऐसे वैज्ञानिक हैं जो सापेक्षवाद सिद्धान्त को भली भाँति समझते हैं। सर सुलेमान ने इसी अत्यन्त जटिल और महत्वपूर्ण सिद्धान्त की अशुद्धियाँ बतला कर और अपनी गवेषणा द्वारा उन्हें शुद्ध करके, विज्ञान-संसार में एक

---

* Theory of Relativity.

नवीन लहर पैदा कर दी। उनके इस नवीन सिद्धान्त पर संसार भर के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में काफी वाद विवाद हुआ। बहुत से वैज्ञानिकों ने उनके विचारों की कड़ी आलोचना भी की और उनमें अविश्वास प्रकट किया। कुछ विदेशी विद्वान ही नहीं, अपने देश के भी कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर सुलेमान के विचारों से पूरी तौर पर सहमत न हो सके। परन्तु विभिन्न देशों में वैज्ञानिकों को इस सम्बन्ध में प्रयोग करने पर जो प्रत्यक्ष प्रमाण मिले उनसे सुलेमान के विचारों ही की पुष्टि हुई और उनका विरोध करने वाले बहुत से वैज्ञानिकों को अपना मत बदलना पड़ा। वास्तव में इन सिद्धान्तों के बारे में आगे आने वाले वर्षों में जो कार्य होगा उसके परिणाम को देखकर ही निष्पक्ष विचार प्रकट करना सम्भव हो सकेगा।

आयन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के पूर्व न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त सर्वथा युक्तिसंगत और सही माना जाता था। इसके आधार पर सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की गति का सन्तोषजनक समाधान होने के साथ ही नवीन ग्रहों के अन्वेषण में भी सहायता मिली थी। यह सिद्धान्त केवल बुध के भ्रमण पथ में उत्पन्न होने वाले वेगान्तर (एक शताब्दि में ४३ सेकेन्ड) को न समझा सका था। न्यूटन के बाद के वैज्ञानिक भी इस समस्या का समाधान न कर सके और बहुत काफी समय तक यह समस्या हल न की जा सकी। आयन्स्टीन ने निरन्तर कई वर्षों की मौलिक गवेषणाओं के बाद अपना 'सापेक्षवाद' सिद्धान्त प्रकाशित किया। इस सिद्धान्त से बुध के भ्रमण पथ की समस्या अच्छी तरह हल होगई। इस समस्या को हल करने के

साथ ही, आयन्स्टीन ने अपने सिद्धान्त के आधार पर सूर्य की प्रकाश रश्मियों के बारे में भी कुछ भविष्यवाणी की। इस भविष्यवाणी के सत्य सिद्ध हो जाने पर वैज्ञानिकों ने आयन्स्टीन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

आयन्स्टीन के इस सिद्धान्त से देश, काल और गति सम्बन्धी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो गये। वास्तव में आयन्स्टीन का यह नवीन सिद्धांत कुछ ऐसी असाधारण कल्पनाओं के आधार पर तैयार किया गया था कि उन पर विश्वास करना भी दुस्तर है। पर वास्तविक घटनाओं के निरीक्षण ने वैज्ञानिकों को आयन्स्टीन के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर विवश किया। सापेक्षवाद सिद्धान्त को वैज्ञानिकों की स्वीकृति मिल जाने पर न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त पिछड़ गया। सापेक्षवाद सिद्धान्त के सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत हो जाने पर भी, तथा उसके प्रकाशित होने के २५ से अधिक वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी, अनेक वैज्ञानिकों को उसकी पूर्ण सत्यता के बारे में जो सन्देह थे वे अक्षुण्ण से बने रहे। वे लोग उसके महत्व को पूर्णतया हृदयंगम न कर सके।

आयन्स्टीन के तर्कों और विचारों से पूर्णतया सन्तुष्ट न होनेवाले और सन्देह प्रकट करनेवाले वैज्ञानिकों में सुलेमान भी थे। आधुनिक वैज्ञानिकों ही के समान उनका कहना था कि किसी भी सिद्धान्त के पूर्ण रूप से सत्य प्रमाणित होने के लिए यह परम आवश्यक है कि उसके आधार पर प्राप्त होनेवाले निष्कर्षों एवं वास्तविक निरीक्षण द्वारा प्राप्त होनेवाले निष्कर्षों में पूर्ण साम्य हो।

यहां यह बतलाना असंगत न होगा कि उन्हें अपनी कमज़ोरियों और

अपने सीमित ज्ञान का भी पूरा ध्यान था और इन कमज़ोरियों को दूर करने तथा अपने ज्ञान को और अधिक परिष्कृत करने तथा अपटूडेट बनाने के लिए उन्होंने पूरी कोशिश की थी। आधुनिक भौतिक विज्ञान की सापेक्षवाद द्वारा की जानेवाली बहुमूल्य सेवाओं के महत्व को भी पूरी तौर पर समझने के लिए उन्होंने भरसक पूरी चेष्टा की थी।

सुलेमान की गवेषणायें

अस्तु, सुलेमान ने विचार किया कि ज्योतिष सम्बन्धी गणनाओं में न्यूटन के सिद्धान्तों का उचित रीति से प्रयोग नहीं किया गया प्रतीत होता है। इन सभी गणनाओं में गुरुत्वाकर्षण के वेग को अनन्त मानकर काम किया गया है। और गुरुत्वाकर्षण के वेग को अनन्त मानने के यथेष्ट कारण नहीं मिलते। अतएव सम्भव है कि यह वेग अनन्त न होकर सीमित हो और गुरुत्वाकर्षण के वेग को सीमित मानकर गणना करने से न्यूटन के सिद्धान्तों से जिन समस्याओं का समाधान नहीं हो सका है, उनका समाधान हो जाय। यह विचार सर्वथा नवीन तो नहीं था परन्तु माननीय सुलेमान से पहिले और किसी ने इसके अनुसार कार्य न किया था।

गुरुत्वाकर्षण की चाल को अनन्त मान लेने से गुरुत्वाकर्षण के उद्‌गम के चल अथवा निश्चल होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु इस वेग के सीमित होने पर उद्‌गम के चल अथवा निश्चल होने से अवश्य अन्तर पड़ेगा। उन्होंने इस चाल को सीमित और प्रकाश की किरणों के बराबर मानकर यह सिद्ध किया कि न्यूटन ने अपने सिद्धान्तों

का प्रतिपादन करने के लिए जो समीकरण बनाये हैं, उनमें गुरुत्वाकर्षण की सीमित गति को ध्यान में रखते हुए कुछ सुधार करने पड़ेंगे। अपने इस सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने सौर मण्डल के ग्रहों की चाल के बारे में जो मान प्राप्त किये वे आयन्स्टीन के मान ही के बराबर हैं। आयन्स्टीन ने बुध के भ्रमणपथ और उसकी गति में उत्पन्न होने वाले वेगान्तर के बारे में हिसाब लगाकर जो तथ्य ज्ञात किये थे, सर सुलेमान की गणना से भी वे ही तथ्य प्राप्त हुए। इस प्रकार से सर शाह सुलेमान ने यह सिद्ध कर दिया कि न्यूटन के सिद्धान्तों के अनुसार गणना करने पर भी, बुध के भ्रमण पथ और उनकी गति में होने वाले वेगान्तर की समस्या का समाधान किया जा सकता है। बुध के अतिरिक्त उन्होंने अपने इसी सिद्धान्त के आधार पर मंगल, वीनस और पृथ्वी के भ्रमण पथों के बारे में भी महत्वपूर्ण फल प्राप्त किये। ये फल वास्तविक घटनाओं के अनुकूल थे।

सुलेमान ने प्रकाश सरीखी अत्यन्त तीव्र गति के लिए जो समीकरण बनाया, वह आयन्स्टीन के समीकरण से कुछ भिन्न था। वैसे तो आयन्स्टीन और सुलेमान के समीकरणों में बहुत ही थोड़ा अन्तर था; परन्तु इस थोड़े अन्तर से भी सौरमण्डल सम्बन्धी गणनाओं में बड़ा फर्क पड़ जाता है। सुलेमान ने अपनी गणना की सच्चाई की भली भाँति जाँच करने के बाद निर्भीकतापूर्वक उसे प्रकाशित करा दिया। अपनी गणना के अनुसार उन्होंने १६ जून १६३६ को पड़ने वाले सूर्य-ग्रहण के बारे में भी हिसाब लगाकर उस तारीख से बहुत पहिले इस बात की घोषणा कर दी थी कि आयन्स्टीन के सिद्धान्त के अनुसार

गणना करने से, इस सूर्यग्रहण की घटनाओं के बारे में जो मान प्राप्त होंगे वे वास्तविक मान से कम होंगे।

उन्होंने पूर्ण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर सूर्य के किनारे ठीक पीछे स्थित नक्षत्रों से आने वाले प्रकाश के झुकाव* की समस्या को भी अपने इसी सिद्धान्त से सुलझाने की कोशिश की। वास्तव में ऐसी केवल दो ही घटनायें हैं जहाँ सूर्य के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव प्रकाश पर पड़ता है। सूर्य ग्रहण के अवसर पर सूर्य के किनारे के ठीक पीछे स्थित, नक्षत्रों से आने वाली प्रकाश की किरणों को सूर्य अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस तरह आकर्षित होने पर किरणें सूर्य की ओर झुक जाती हैं। आयन्स्टीन ने अपनी गणना से इस झुकाव का जो मान प्राप्त किया था वह न्यूटन के नियमों के अनुसार गणना करने पर जो मान आता है उससे ठीक दूना था। माननीय सुलेमान ने जो मान ज्ञात किया, वह आयन्स्टीन के मान से भी ३० प्रतिशत अधिक था। वास्तव में इससे पहिले जो सूर्य ग्रहण पड़े थे, उन अवसरों पर जो झुकाव प्रत्यक्ष रूप से देखे गये थे, वे आयन्स्टीन की गणना द्वारा प्राप्त होने वाले मान से कुछ अधिक पाये गये थे। इस अन्तर की गुत्थी को सुलझाने के लिए युक्तिसंगत सिद्धान्तों के अभाव में, उन दिनों प्रत्यक्ष निरीक्षण और गणना द्वारा पाये जाने वाले फलों के अन्तर को, निरीक्षण की भूल कह कर सन्तोष कर लिया जाता था। सर शाह की गणना से यह गुत्थी स्पष्ट रूप से सुलझ गई।

---

* Problem of Deviation of light.

जून १६३६ के सूर्य ग्रहण के अवसर पर एक रूसी वैज्ञानिक प्रो० ए० ए० मिचेलिव ने ग्रहण का विधिवत निरीक्षण और अध्ययन किया था। सूर्य ग्रहण के चित्र भी लिये थे। उन्होंने अपने निरीक्षण और अध्ययन का परिणाम डा० सुलेमान को एक निजी पत्र द्वारा सूचित किया था। प्रो० मिचेलिव के निरीक्षण से डा० सुलेमान की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होने के साथ ही उनके सिद्धान्तों की भी पुष्टि होगई।

सापेक्षवाद सिद्धान्त का खण्डन करते हुए उन्होंने विभिन्न वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में कई महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये थे। आयन्स्टीन के सिद्धान्तों की आलोचना और अपने सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए उन्होंने सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'साइंस एन्ड कलचर' * में एक लेखमाला प्रकाशित की थी। विज्ञ सज्जन इन लेखों से सर सुलेमान के सिद्धान्तों का स्वयं अध्ययन करके अपना मत निर्धारित कर सकते हैं।

माननीय सुलेमान ने सूर्य के (वर्णपट) के बारे में भी मौलिक गवेषणायें की थीं। यहाँ भी उन्होंने अपनी गणना से आयन्स्टीन द्वारा प्राप्त मान ग़लत सिद्ध करने की चेष्टा की थी। नक्षत्रों से आने वाली किरणों के झुकाव के साथ ही सूर्य के वर्णपट के बारे में गणना करके पहिले ही से कुछ बातें बतला दी थीं। इन बातों की जाँच के लिए कोदाईकोनल वेधशाला के डा० टी० रायड्स को १६३६ के

---

* Science & Culture (35--36)--444; (36--37)--344; --(37--38)--155; (39--40)--366,601.

सूर्य ग्रहण के अवसर पर भारत-सरकार ने जापान भेजा था। डा० रायड्स ने अपने निरीक्षण का परिणाम जुलाई १६३७ में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित कराया था। इससे भी सर शाह की गणना की पुष्टि हुई थी।

सूर्य के प्रकाश के वर्णपट का निरीक्षण करते समय बहुधा देखा जाता है कि यदि वैसे ही परमाणुओं के वर्णपट का प्रयोगशाला में निरीक्षण किया जाय तो सूर्य के वर्णपट की कुछ रेखायें वर्णपट के लाल भाग की ओर हटी हुई हैं। न्यूटन के सिद्धान्त वर्णपट रेखाओं के इस हटाव का समाधान करने में असमर्थ पाये गये। आयन्स्टीन ने अपनी गवेषणाओं द्वारा इस हटाव की गुत्थी सुलझाने की कोशिश की। परन्तु इस बारे में आयन्स्टीन ने जो कल्पना की उसके अनुसार सूर्य-वर्णपट की रेखाओं में पाया जाने वाला हटाव सूर्य के प्रत्येक भाग से आने वाले प्रकाश में एक सा ही होना चाहिए। प्रकाश चाहे सूर्य के एक किनारे से आवे या केन्द्र से अथवा बीच के किसी भाग से। परन्तु वास्तविक निरीक्षण आयन्स्टीन की इस धारणा से सर्वथा भिन्न पाये गये। वास्तव में देखा यह गया कि सूर्य के एक किनारे से आने वाले प्रकाश में यह हटाव कहीं अधिक होता है। सापेक्षवाद सिद्धान्त इस बात का सन्तोषजनक समाधान न प्रस्तुत कर सका, और दूसरे वैज्ञानिक भी इस घटना का किसी अज्ञात एवं रहस्यमय कारण द्वारा घटित होना मानकर चुप हो गये। माननीय सुलेमान ने अपनी गणना द्वारा बतलाया कि सूर्य के किनारे से आने वाले प्रकाश के वर्ण पट की रेखाओं में जो हटाव पाया जायगा वह आयन्स्टीन द्वारा प्राप्त

मान का दूना होगा। वास्तविक निरीक्षण से सुलेमान की गणना ही की पुष्टि हुई थी।

सर सुलेमान की उपरोक्त सभी गवेषणायें विशुद्ध गणित के आधार पर थीं, केवल कोरी कल्पनाओं ही पर नहीं। उनके इन तर्कों पर कोई युक्तिसंगत आपत्ति भी न उठाई जा सकी। अपनी सफलताओं से प्रोत्साहित होकर उन्होंने प्रकाश की प्रकृति के बारे में भी गवेषणायें कीं। २२ फरवरी १६४१ को दिल्ली में नेशनल एकेडेमी आफ साइंस के दसवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण देते हुए उन्होंने प्रकाश की प्रकृति के बारे में अपनी गवेषणाओं पर यथेष्ट प्रकाश डाला था।

डा० सुलेमान ने अपनी इस अन्तिम गवेषणा में रेडिअंस, ग्रेविटंस और प्रकाश के कण*, प्रभृति सर्वथा नवीन प्रकार के कणों और इनका नियंत्रण करने वाले नये नये नियमों की कल्पना की है। अभी तक इन सब का अस्तित्व भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के प्रत्यक्ष निरीक्षण से बहुत परे है। परन्तु इस प्रकार की कल्पनायें आज के वैज्ञानिकों की एक विशेषता है। केवल सैद्धान्तिक कार्य करनेवाले वैज्ञानिकों ने जो परिकल्पनायें की हैं वे ही; व्यवहारिक कार्य करनेवाले वैज्ञानिकों के निरीक्षण से बहुत आगे नहीं बढ़ी हुई हैं, वरन् इन लोगों ने प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा जिन तथ्यों का पता लगाया है वे स्वयं भी सिद्धान्तों से बहुत परे सिद्ध हुए हैं और अभी तक सिद्धान्तों के आधार पर उनकी विधिवत व्याख्या नहीं की जा सकी है। परन्तु इन काल्पनिक तथ्यों को महज़ काल्पनिक

---

* Radians, Gravitons and Light-Particles

कह कर ही तो नहीं टाला जा सकता। फिर सर सुलेमान की कल्पनायें तो बहुत ही उच्च कोटि की और विशुद्ध गणित के आधार पर हैं।

उनके आरम्भ के निबन्ध अवश्य ही विशेष कर आलोचनात्मक थे और उनमें नवीन तथ्यों की कमी रहती थी, परन्तु उनकी विज्ञान साधना जैसे जैसे बढ़ती गई, उनके विचार प्रौढ़ होते गये और उनके सिद्धान्तों और तर्कों में विशेष गम्भीरता आती गई, उनकी वैज्ञानिक भावनायें और विचार कानून के पण्डित और विचारक सुलेमान से ऊपर उठते गये। उन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने सिद्धान्तों को और भी अधिक पुष्ट बना लिया था और उनका कहना था कि उन्होंने अपने नवीन सिद्धान्त के द्वारा प्रकाश, विद्युत् और आकर्षण को संयुक्त करने में सफलता प्राप्त की थी।

नेशनल एकेडेमी के सभापति

उच्च कोटि की विज्ञान साधना में प्रवृत्त होने के समय ही से वे विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं में यथेष्ट अभिरुचि लेने लगे थे। प्रयाग की नेशनल एकेडेमी आफ साइंस में तो वे उसकी स्थापना के समय ही से अपनी मृत्यु पर्यन्त सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। जब तक प्रयाग में रहे, उसकी प्रायः सभी बैठकों में शामिल होते रहे। अपने खोज निबन्ध उन्होंने इसी संस्था के तत्वावधान में पढ़ना शुरू किया था। एकेडेमी ने भी उनकी विज्ञान साधना के महत्व को स्वीकार करते हुए उनको जुलाई १६३८ में अपना सभापति बनाया। जनवरी १६४० के प्रयाग अधिवेशन के अगले वर्ष, फरवरी १६४१ में दिल्ली में होनेवाले १० वें अधिवेशन के वे ही सभापति बनाये गये थे। दिल्ली अधिवेशन के अवसर

(Tetanus) व डिप्थीरिया (Diphtheria) के रोगियों को ऐसे ही पशुओं के रक्त के सीरम का इंजेक्शन दिया जाता है, जिनके शरीर में टिटेनस के विरुद्ध क्षमता स्थापित की जा चुकी है।

सीरम (Serum)—यदि साधारणतया इन रोगों के जीवों को किसी पशु के शरीर में प्रविष्ट कर दें, तो वह मर जायगा, किंतु यदि प्रथम बार जीवाणुओं की बहुत थोड़ी मात्रा को प्रविष्ट करें और फिर उसको धीरे-धीरे बढ़ाते जायें, तो पशु की मृत्यु न होगी वरन् उनके शरीर में असीम क्षमता उत्पन्न हो जायगी। इन वस्तुओं को, जिनको सीरम कहते हैं, इस प्रकार बनाते हैं कि पहले उस विष की व जीवाणुओं की, जिनका सीरम बनाना है, घातक-मात्रा मालूम करते हैं। 'घातक-मात्रा' वह है, जिससे कोई पशु मर जाय। स्पष्ट है कि प्रत्येक पशु के लिये घातक-मात्रा भिन्न होगी। जिस मात्रा को एक घोड़ा सहन कर सकता है, उसको मनुष्य सहन नहीं कर सकता। जिसको मनुष्य सहन कर सकता है, उसको खर-गोश नहीं सह सकता। इस प्रकार प्रत्येक पशु के लिये घातक-मात्रा भिन्न होती है।

जिस पशु से सीरम बनाना होता है, उसके शरीर में प्रथम जीवाणुओं की घातक-मात्रा से बहुत कम मात्रा प्रविष्ट करते हैं। इससे कदाचित कुछ ज्वर इत्यादि आता है। किंतु पशु उसको सहन कर लेता है। कुछ समय के पश्चात् इस मात्रा को बढ़ाते हैं। पहिले से अधिक मात्रा प्रविष्ट करते हैं। धीरे-धीरे पशु इसको भी सहन कर लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार जीवाणुओं की मात्रा बढ़ाते जाते हैं, यहाँ तक कि कई सौ घातक-मात्राएँ एक बार में प्रविष्ट करने पर भी पशु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। इस प्रकार पशु के शरीर में इतनी क्षमता उत्पन्न कर दी जाती है कि वह विष

एवं उपयोगी सुधार किये। कृषि एवं औद्योगिक शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध किया। महिलाओं की शिक्षा के लिए भी उचित सुविधायें दिलवाईं और महिला टीचर्स ट्रेनिंग कालिज का संगठन किया। वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य का भी श्रीगणेश करांया।

वास्तव में उन्होंने जिस अध्यवसाय, लगन और निस्वार्थ भाव से अलीगढ़ विश्वविद्यालय की सेवायें की थीं, मुसलिम शिक्षाविदों में वैसे उदाहरण देखने में बहुत कम आते हैं। दिल्ली में रहते हुए, वे प्रति सप्ताह बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिये हुए अलीगढ़ जाते थे। इधर अलीगढ़ विश्वविद्यालय में जो कुछ उन्नति हुई है उसका अधिकांश श्रेय सर सुलेमान ही को प्राप्त है।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अतिरिक्त वे प्रयाग विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के भी सदस्य थे। ढाका, अलीगढ़, आगरा, और हैदराबाद विश्वविद्यालयों में उन्होंने दीक्षान्त संस्कारों के अवसरों पर जो भाषण दिये थे, वे इस बात के सबल प्रमाण हैं कि सर शाह सुलेमान केवल मुसलमानों ही की नहीं, वरन् सारे भारतीयों की शिक्षा में अभिरुचि रखते थे और उसकी उन्नति के लिए बराबर कोशिश करते रहते थे। उनके इन भाषणों में आडम्बरपूर्ण शब्द तो कम हैं, काम की बातें ज्यादा हैं। वास्तव में वे स्वयं भी बातों में कम, और काम में अधिक विश्वास करते थे।

प्रौढ़ शिक्षा में अभिरुचि

देश में प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन के आरम्भ ही से वे उसमें सक्रिय भाग लेने लगे थे। दिल्ली में होने वाले प्रथम अखिल भारतीय प्रौढ़

शिक्षा सम्मेलन के वे सभापति भी निर्वाचित किये गये थे। अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के १६वें अधिवेशन का भी उन्हें सभापति बनाया गया था। उक्त अवसर पर उन्होंने जो विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया था उसमें उन्होंने शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य राष्ट्रनिर्माण बतलाया और शिक्षा को साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित करने की नीति की घोर भर्त्सना की थी। वर्त्तमान पद्धति की कड़ी आलोचना करने के साथ ही उसे सुधारने और अधिक उपयोगी बनाने के लिए कई नवीन सूझें भी पेश की थीं। भारतीय भाषाओं की उन्नति में भी वे बराबर दिलचस्पी लेते थे। उर्दू को विश्वविद्यालय की ऊँची परीक्षाओं में स्थान दिलाना उन्हीं का काम था। युक्तप्रान्त की हिन्दुस्तानी एकेडेमी (प्रयाग) का उद्घाटन भी उन्हीं से कराया गया था। उस अवसर पर उन्होंने हिन्दुस्तानी की उन्नति के लिए कई काम की बातें बतलाई थीं।

अन्य उल्लेखनीय कार्य

कानून के क्षेत्र में तो उन्होंने असाधारण दक्षता प्राप्त की थी। हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश की हैसियत से उन्होंने जिस निर्भीकता के साथ काम किया था—उसकी सरकारी एवं ग़ैर सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में आजतक मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की जाती है। उनके इन कार्यों के उपलक्ष्य में उन्हें सरकार ने 'सर' की उपाधि प्रदान की थी और जनसाधारण ने भी उनका उचित अभिनन्दन किया था।

हाईकोर्ट की जजी के दौरान में, १६३० ई० में पेशावर के दंगे की जाँच के लिए नियुक्त होने वाली सरकारी कमेटी के वे सीनियर

मेम्बर बनाये गये थे। उस मौके पर उन्होंने जो निष्पक्ष सम्मति प्रकट की थी वह आज भी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है। इसके बाद प्रसिद्ध केपिटेशनरेट्स ट्रब्यूनल के भी वे सदस्य नियुक्त किये गये थे। इस ट्रब्यूनल की सिफारिशों ही के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत के सैनिक व्यय का एक अंश देना स्वीकार किया था।

सुविख्यात मेरठ षड्यंत्र केस का फैसला भी हाईकोर्ट में उन्हीं के कार्यकाल में हुआ था। इस मुकदमे की सारी कार्यवाही को उन्होंने जितनी योग्यता, कुशलता और शीघ्रता से निपटाया था वह भारतीय न्यायालयों के इतिहास में सर्वथा अद्वितीय है। इस मुकदमे का फैसला करने में नीचे की अदालत के मजिस्ट्रेट को पूरे दो साल लग गये थे। सेशन की अदालत में चार साल लगे थे। अनुमान किया जाता था कि हाई कोर्ट में भी अपील की सुनवाई और उस पर होने वाले वादविवाद में कम से कम चार छै महीने तो लग ही जायँगे, परन्तु जब माननीय सुलेमान ने आठ दिन के अन्दर ही अपना फैसला सुना दिया तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

हाई कोर्ट ही नहीं, फेडरेल कोर्ट में भी उन्होंने जो फैसले किये थे उनकी भारतीय विद्वानों ही ने नहीं, वरन् इंगलैंड और अमेरिका के जजों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। संघ अदालत में जो पहला मुकदमा पेश हुआ था, वह काफी पेचीदा, और विधान सम्बन्धी जटिल समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाला था। इस मुकदमे का फैसला इतना स्पष्ट और विद्वत्तापूर्ण था कि इंगलैंड के सुप्रसिद्ध वकील एवं वैधानिक कानून के पण्डित मि० जे० एच० मार्गन के० सी० ने कलकत्ता

विश्वविद्यालय में टैगोर कानून लेक्चर देते समय उसे प्रिवी कौंसिल के फैसले के समान उच्च कोटि तथा इंगलैंड की लार्ड सभा के एपैलेट ट्रिब्यूनल की परम्पराओं की टक्कर का बतलाया था।

युक्तप्रान्त में न्यायालय की प्रतिष्ठा, सम्मान और स्वाधीनता को बनाये रखने के लिए उन्होंने अपने कार्य-काल में जो महत्वपूर्ण कार्यवाही की थी वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। १६३६ में व्यवस्थापिका के कुछ सदस्यों ने जजों के न्याय सम्बन्धी, विशेषतया सरकारी रिसीवरों की नियुक्ति के बारे में कुछ प्रश्न पूछे थे। सर शाह ने इन प्रश्नों का उत्तर देने से कतई इनकार कर दिया था। कौंसिल के प्रेसिडेंट ने कौंसिल में एक वक्तव्य देकर हाई कोर्ट के इस रुख की आलोचना की। इस पर माननीय सर सुलेमान ने वैधानिक प्रमाण देते हुए कहा था कि इस प्रकार के समस्त कार्यों की ज़िम्मेदारी हाई कोर्ट पर है न कि सरकार पर।

वास्तव में सर सुलेमान के यह कानूनी कार्य भविष्य में काफी समय तक उनकी याद दिलाते रहेंगे, परन्तु उनकी वैज्ञानिक गवेषणायें विज्ञान के इतिहास में सदैव आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाँयगी, और उनकी गणना संसार के कतिपय श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में कराती रहेंगी।

सर शाह, इतने महान् पुरुष होते हुए भी, स्वभाव के बहुत ही नम्र थे। उनकी नम्रता के समान ही उनकी मिलनसारी भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इन दोनों ही गुणों ने उनकी लोकप्रियता को बहुत बढ़ा दिया था। छुट्टी के दिनों में उनके दफ्तर का छोटा से छोटा कर्मचारी तक

बे रोकटोक उनसे मिल सकता था और वे बड़ी खुशी से उससे मिलते थे और आदर सत्कार करते थे। घमण्ड तो उन्हें रत्ती भर भी न छू गया था। जो कोई भी उनसे मिलता था उनके सौजन्य और व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रहता था। उनकी अपने धर्म में अगाध श्रद्धा थी। वास्तव में ये सभी गुण उन्हें अपने दादा से विरासत में मिले थे। उनका रहन सहन बहुत ही सादा था।

अत्यन्त उच्च पद पर काम करते हुए भी वे कठिन परिश्रम के आदी थे। सरकारी कामों से जो कुछ भी समय मिलता था वह अपनी विज्ञान साधना और सार्वजनिक कार्यों में लगाते थे। अपने बहुमूल्य समय का क्षणमात्र भी व्यर्थ नष्ट करना तो वे जानते ही न थे। किसी हद तक यह कहना भी असंगत न होगा कि उन्होंने अत्यधिक परिश्रम करके अपने आपको ज्ञान विज्ञान की वेदी पर निछावर कर दिया!

भारतीय वैज्ञानिक

दूसरा खण्ड
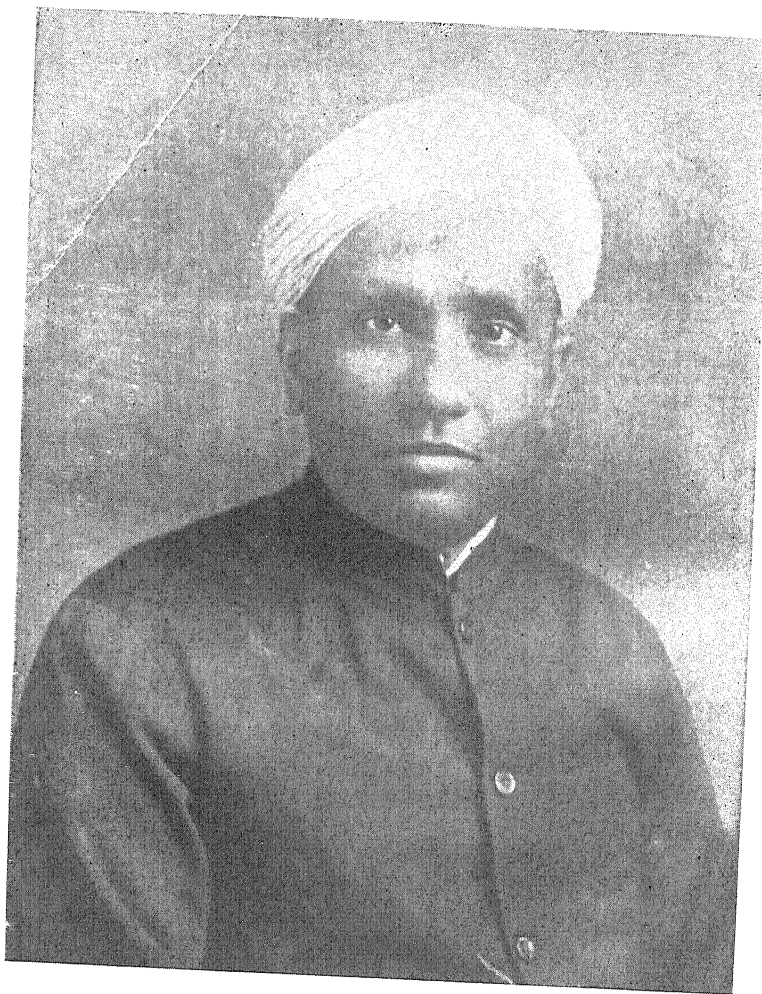
विज्ञानाचार्य डा० सर चन्द्रशेखर वेङ्कटरामन् एन० एल०
[जन्म १८८८ ई०]

नोबल पुरस्कार विजेता

डा० सर चन्द्रशेषर वेङ्कट रामन्

[जन्म सन् १८८८ ई०]

नोबल पुरस्कार विजेता, ह्यू जेज़ और फ्रैंकलिन पदकों से पुरस्कृत, महान प्रतिभाशाली विज्ञानवेत्ता डा० सर चन्द्रशेषर वेङ्कट रामन् का जन्म १७ नवम्बर १८८८ ई० को दक्षिण भारत के त्रिचनापली नामक नगर में हुआ था। इनके पूर्वज तंजोर ज़िले में अय्यमपेट के निकटवर्ती गाँव के ज़मींदार थे। ब्राह्मण होते हुए भी वे लोग खेती किसानी का काम करते थे। वेङ्कट रामन् के पिता श्री चन्द्रशेषर अय्यर पैतृक गाँव को छोड़कर नगर में रहना शुरू करने वाले, अपने परिवार में पहिले व्यक्ति थे। पैतृक गाँव को छोड़ने के साथ ही उन्होंने पूर्वजों के व्यवसाय को छोड़कर पाश्चात्य शिक्षा को भी अपनाया था। वेङ्कट रामन् अपने पिता के दूसरे पुत्र हैं। वेङ्कट रामन् के जन्म के समय, श्री चन्द्रशेषर अय्यर, स्थानीय हाई स्कूल में शिक्षक का काम करते थे और बी० ए० की परीक्षा की तैयारीकर रहे थे।

माता-पिता

वेङ्कट रामन् की माता श्रीमती पार्वती अम्मल त्रिचनापली के सुप्रसिद्ध शास्त्री परिवार की सुकन्या थीं। यह परिवार अपने संस्कृत के ज्ञान और पाण्डित्य के लिए दूर दूर प्रख्यात था। कहा जाता है कि

इस ' अन्योऽन्यानुविधायित्व (सायको फिजिकल् प्यारेल-लिज्म Psycho Phisical Parallelism के कारण भिन्न २ योनि विशेष, अवयव रचना अथवा इंद्रिय रचना विशेष तथा वय विशेष के अनुसार सत्व के प्रकारों में भी अनेक विशेष पैदा होते हैं। सिवाय शुद्धबहुल, शुद्धबहुलतर और शुद्धबहुलतम इस तरह तरतम भाव से भी सत्व के असंख्य प्रकार होते है। इसी तरह सत्व के अनुविधान से शरीर में भी विशेषताएँ पैदा होती हैं। इसी संबंध को लेकर यह भी कहा गया है कि ' निर्विकारः परस्त्वात्मा सर्वभूतानां निर्विशेषः सत्वशरीरयोस्तु विशेषात् विशेषोपलब्धिः '। (च. शा. अ. ४) अर्थात प्राणियों म जो विभिन्नता प्रतीत होती है वह सत्व और शरीर की विविधताओं तथा अन्योऽन्यानुविधान के कारण होती है। किंतु आत्मा, अपने पर स्वरूप के कारण निर्विकार और एकसाँ रहता है। षड्धातुवादियों ने यह भी कहा है कि निर्विकार और पर आत्मा, नित्य होकर चैतन्य में कारण है और वह सत्वगुण, भूतगुण तथा इंद्रियों के द्वारा सब व्यापारों को देखता है अर्थात द्रष्टा है। (च. सू. अ. १) त्रिभागात्मक सिद्धांत के उक्त संबंध को निम्न लिखित सारिणी पर से भी जाना जा सकता है। जैसा किः—

चित्र नं० १०१—मुड़े हुए पृष्ठ के द्वारा प्रकाश-किरणें।
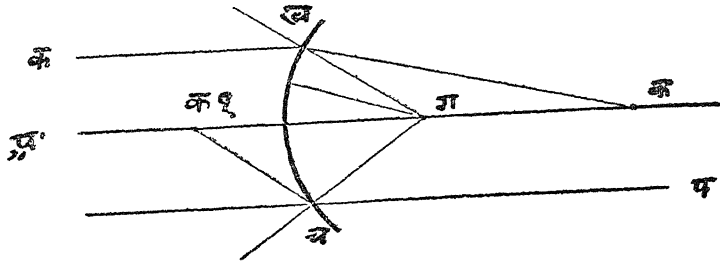
इन केंद्रों पर ही किसी वस्तु की छाया बनती है। हम फ़ोटो लेते समय व सूक्ष्मदर्शक यंत्र में किसी वस्तु का निरीक्षण करते समय उसके लेंसों को आगे-पीछे हटाते रहते हैं। यहाँ तक कि वस्तु का, जिसे हम देख रहे हैं, चित्र बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। यह घटाना-बढ़ाना इसी लिये होता है कि वस्तु की किरणें किरण-केंद्र पर जाकर छायाचित्र बनावें। जब तक यह नहीं होता, चित्र धुँधला रहता है।

हमारे नेत्र में कई मुड़े हुए तल हैं, जिन पर प्रकाश-किरणों को मुड़ना पड़ता है। सबसे पूर्व कनीनिका का ऊपरी तल एक मुड़ा हुआ ताल है। उसके पश्चात् अग्रकोष्ठ में एक तरल वस्तु भरी हुई है, जहाँ प्रकाश का वर्तन होता है। उसके पश्चात् फिर ताल आता है। इसके आगे-पीछे दोनों ओर के तल उन्नतोदर हैं। अतएव जब प्रकाश-रेखा इसके भीतर प्रवेश करती है तब उसका मार्ग बदलता है; जब उससे निकलती है तब फिर मार्ग का परिवर्तन होता है। ताल के पश्चात् फिर पश्चात् कोष्ठ में रेखा को विकृत होना पड़ता है। इस प्रकार अंतःपटल तक पहुँचते हुए प्रकाश-रेखा को कई स्थानों पर मुड़ना पड़ता है।

संरक्षकों की देखरेख में बालक वेङ्कटरामन् बड़ी तेज़ी से पढ़ने लिखने लगे। श्रीआयंगर के संसर्ग से बालक रामन् ने बहुत थोड़ी उमर में अँग्रेजी भाषा पर उल्लेखनीय अधिकार प्राप्त कर लिया। अपने पिता से उन्होंने विज्ञान प्रेम का पाठ सीखा और बाल्यकाल ही में गहन वैज्ञानिक विषयों में विशेष अभिरुचि रखने लगे। उस थोड़ी उमर ही में उन्हें विज्ञान से इतना अधिक प्रेम हो गया कि विज्ञान के मुकाबिले दूसरे विषयों को पढ़ने का अवकाश भी निकालना कठिन हो जाता। हाई स्कूल कक्षाओं में पहुंच कर बालक रामन् ने भौतिक विज्ञान के कई महत्पूर्ण ग्रन्थों को समाप्त कर डाला था। इन ग्रन्थों के पढ़ने से उनकी ज्ञानपिपासा और अधिक तीव्र हो उठी थी। पढ़ने में वह इतने अधिक लीन रहने लगे थे कि अपने स्वास्थ्य तक की चिन्ता न रहती थी। अतएव वह सख्त बीमार हो गये। इस बीमारी से उनके पठन पाठन में काफी व्यतिक्रम पड़ गया। काफ़ी दिन बीमारी में लग जाने पर भी, रामन् ने १२ वर्ष की आयु ही में मेट्रिकुलेशन परीक्षा सम्मान पूर्वक पास की। दो वर्ष बाद विश्वविद्यालय की एफ० ए० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास की और विश्वविद्यालय में अच्छा स्थान प्राप्त किया। इस परीक्षा में आपने भौतिक विज्ञान को अपना विषय न चुना था। इससे इसका महत्व और भी अधिक हो जाता है।

वास्तव में वेङ्कट रामन् अपने बाल्यकाल ही से "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत चरितार्थ करते थे। छोटी उमर ही में उनमें असाधारण प्रतिभा के लक्षण दृष्टि-गोचर होने लगे थे। १२ वर्ष की आयु में, श्रीमती एनी बीसेंट के भाषणों से प्रभावित होकर

उन्हें धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन की चाट लग गई। स्वभाव ही से विचारशील होने के नाते वह उस छोटी उमर में श्रीमती बीसेंट के भाषणों और लेखों पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे। श्रीमती बीसेंट के भाषण सुनने और लेख आदि पढ़ने के पूर्व उन्हें धर्म में कभी कोई विशेष दिलचस्पी लेने का मौका भी न मिला था। घर का वातावरण भी प्रबल धार्मिक भावनाओं को प्रोत्साहित करने के अनुकूल न था। श्रीमती बीसेंट के भाषणों और लेखों ने धर्म को उनके सम्मुख बहुत ही आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया। यह रूप इतना आकर्षक था कि रामन् थोड़े दिन तक अपने प्रिय विषय विज्ञान का अध्ययन और चिन्तन भी भूल गये। अपना अधिकांश समय धार्मिक ग्रन्थों ही के अध्ययन में लगाने लगे। भौतिक विज्ञान के ग्रन्थों और वैज्ञानिक उपकरणों का स्थान रामायण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों ने ले लिया। रामन् कोई काम अधूरे मन से नहीं करते। जिस काम को करते हैं उसमें सारी शक्ति लगा देते हैं। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी ख़ूब ही मन लगा कर किया। यह अध्ययन इतना पूर्ण और बुद्धिमत्ता पूर्वक किया गया था कि २-३ वर्ष बाद मद्रास प्रेसिडेंसी कालिज में बी० ए० में अध्ययन करते समय जब ऐतिहासिक काव्य पर लेख लिखवाया गया तो आपने 'भारतीय काव्य' अपना विषय चुनकर बहुत सुन्दर सारगर्भित और भावमय लेख लिखा और विश्वविद्यालय में प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया। परन्तु बालक रामन् की यह धार्मिक भावना स्थायी न रह सकी। वह जन्मजात वैज्ञानिक थे और विज्ञान ने उन्हें फिर अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

प्रेसिडेंसी कालेज में

तरुण रामन् जब एफ० ए० की परीक्षा पास करने के बाद आगे की कक्षाओं में अध्ययन करने के लिए मद्रास प्रेसिडेंसी कालेज में पहुंचे तब कालिज के सभी प्रोफेसरों का ध्यान उन्होंने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। प्रोफेसर लोग वेङ्कट रामन् के परिपक्व ज्ञान को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। और बात वास्तव में थी भी आश्चर्य की, जिस बालक की उम्र और क़द को देखकर कोई उसको बी० ए० का छात्र होने का अनुमान भी न लगा सके वह दूसरे सब छात्रों से बहुत बढ़ चढ़कर सिद्ध हो और असाधारण प्रतिभा का परिचय दे; उसे देखकर सबका विस्मय विमुग्ध हो जाना स्वाभाविक ही है। जिस दिन वह पहले पहल पढ़ने गये उनको देखकर प्रोफेसरों को बड़ा विस्मय हुआ। वह इतने छोटे, दुबले पतले और नाटे से थे कि उनके यह बतलाने पर भी कि वह बी० ए० में अध्ययन करने आये हैं साधारणतया किसी को विश्वास ही न होता था।

पहिले ही दिन कालेज में सब से पहिले अँग्रेज़ी के प्रोफेसर मि० ई० एच० इलियट अँग्रेजी कविता पढ़ाने के लिए दरजे में आये। उन्हें अपने दर्जे में नये विद्यार्थियो में चमकीले नेत्रों वाले दुबले पतले छोटे से एक लड़के को देखकर बड़ा अचरज हुआ। वह उसे स्वप्न में भी बी० ए० का विद्यार्थी न समझ सके। उन्होंने आश्चर्य करते हुए उससे पूछा:—

'क्या तुम इसी दर्जे में पढ़ते हो ?

'जी हाँ, मैं इसी दर्जे का विद्यार्थी हूं।'

'तुम्हारी उम्र क्या है ?'

'१४ वर्ष ।'

'तुमने अपनी एफ० ए० की परीक्षा कहाँ से पास की ?'

'वाल्टियर के कालिज से ।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् ।'

रामन् के साहसपूर्ण उचित और स्पष्ट उत्तरों को सुनकर प्रो० इलियट मुग्ध हो गये और बराबर विद्यार्थी रामन् के काम में विशेष दिलचस्पी लेते रहे ।

वेङ्कट रामन् के घर वालों की यह हार्दिक इच्छा थी कि वह किसी सरकारी विभाग में उच्च पदस्थ अधिकारी बनें। घर में कोई आदमी सरकारी नौकरी में था भी नहीं, और वेङ्कट रामन् इसके लिए सब से उपयुक्त समझे गये थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए उनके कुछ शुभचिन्तक रिश्तेदारों ने उन्हें कालेज में इतिहास का अध्ययन करने की सलाह दी। यह ख्याल किया गया कि इतिहास लेकर प्रति योगिता परीक्षाओं में अच्छा स्थान पाने में सुभीता होगा। परन्तु वह इस बात के लिए तैयार न हुए और निःशंक होकर बोले 'मैं तो उसी विषय का अध्ययन करूँगा जो मुझे अधिक भाता है और जिस ओर मेरी रुचि है।' अस्तु उन्होंने इतिहास के बजाय विज्ञान ही का अध्ययन जारी रक्खा। अपने विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होने कालेज पुस्तकालय की भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रायः सभी प्रामाणिक पुस्तकें पढ़ डालीं। उनकी यह ज्ञान पिपासा इतनी तीव्र थी क

केवल पुस्तकें पढ़ने ही से शान्त न हुई। वह इन पुस्तकों में जिन प्रयोगों का हाल पढ़ते, उन्हें प्रयोगशाला में स्वयं भी करके देखने की कोशिश करते परन्तु कालेज के प्रोफेसर आम तौर पर कोर्स के अलावा दूसरे प्रयोग कालेज प्रयोगशाला में करने की अनुमति न देते। इससे उनको बड़ी निराशा सी होती। फिर भी वह चुपचाप मन मारकर न बैठते और अवसर मिलते ही अपने काम में लग जाते। अन्त में उनकी लगन और अध्यवसाय को देखकर कालेज प्रयोगशाला सम्बन्धी साधारण नियम उनके लिए ढीले कर दिये गये और उनको मनचाहे प्रयोग करने की अनुमति दे दी गई। भौतिक विज्ञान के साथ ही साथ वह गणित और यंत्रविज्ञान* का भी अध्ययन करते रहते थे। आगे चलकर इससे उनको भौतिक विज्ञान सम्बन्धी सन्धान कार्य में बड़ी मदद मिली।

१६०४ ई० में श्रीरामन् ने विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा बहुत सम्मान के साथ पास की। यूनिवर्सिटी में आप अकेले विद्यार्थी थे जो इस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। इस उपलक्ष्य में आपको विश्वविद्यालय की ओर से कई पारितोषिक और पदक प्रदान किये गये। भौतिक विज्ञान का 'अर्णी स्वर्ण-पदक' भी आपही को मिला। अँग्रेज़ी में भी श्रेष्ठ निबन्ध के लिए आपको एक पारितोषिक प्राप्त हुआ।

बी० ए० की परीक्षा के बाद श्री रामन् ने प्रेसिडेंसी कालेज ही में भौतिक विज्ञान में एम० ए० की पढ़ाई भी जारी रक्खी। आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर प्रफेसरों ने आपको नियमपूर्वक दर्जे में

---

* Mechanics.

दिये जाने वाले लेक्चरों में सम्मिलित होने की पाबन्दी से मुक्त कर दिया। फलस्वरूप आपको स्वतन्त्र होकर अध्ययन करने और मन चाहे प्रयोग करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इस बीच में आपने भौतिक विज्ञान के साथ ही साथ अपनी गणित विज्ञान की योग्यता को भी बहुत बढ़ा लिया। भौतिक विज्ञान के कई महत्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रन्थ* भी आपने इन्हीं दिनों पढ़े। अध्ययन करने के साथ ही आप बराबर नवीन प्रयोग भी करते रहते। एम० ए० की परीक्षा सम्मानपूर्वक पास करने के पूर्व ही आपने मौलिक अन्वेषण कार्य करने की क्षमता का भी अच्छा परिचय दिया। परीक्षा पास करने से पहिले ही आपके दो लेख लन्दन से प्रकाशित होनेवाली प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे उन दिनों और कई वर्ष बाद तक भी भारतवर्ष में कोई ऐसी पत्रिका प्रकाशित न होती थी जिसमें भौतिक विज्ञान सम्बन्धी मौलिक खोज निबन्ध प्रकाशित कराये जा सकें। अस्तु विवश हो श्री रामन् को अपने निबन्ध विदेशी पत्रिकाओं में भेजने पड़े।

खोज का श्रीगणेश

वर्णपट मापक† पर प्रयोग करते समय आपको कुछ नवीन बातें दृष्टिगोचर हुईं। आपने इन बातों की विधिवत जाँच और अध्ययन करके

---

* कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के नाम यहाँ दिये जाते हैं:—

1. Helmholtz:-Sensations of Tone.
2. Rayleigh's,-Theory of Sound.
3. Ewing: Magnetic Induction in Iron & other metals.

† Spectrometer.

उनका विवरण और परिणाम निबन्ध रूप में अंकित किया।* इस लेख को प्रकाशन के लिए भेजने के पूर्व श्री रामन् ने उसे पहिले अपने भौतिक विज्ञान के शिक्षक प्रो० जोन्स को देखने के लिए दिया। दो तीन मास बीत जाने पर भी प्रो० जोन्स उसे देखकर रामन् को वापस न कर सके। तरुण विद्यार्थी रामन् अधिक इंतज़ार न कर सके और उन्होंने प्रोफेसर जोन्स से अपने लेख का तकाज़ा करना शुरू कर दिया। तीन महीने और बीत गये, और प्रोफेसर साहब लेख देख कर वापस न कर पाये। इस पर श्री रामन् की बेचैनी बहुत बढ़ गई और वह अधिक दिन तक न ठहर सके। उन्होंने बड़ी चतुराई से प्रो० जोन्स से, दुबारा लिखने का बहाना करके, लेख वापस ले लिया। लेख को प्रकाशनार्थ भेजने के लिए तैयार करके लन्दन की फिलासफिकल मेगज़ीन के सम्पादक के पास भेज दिया। प्रो० जोन्स से इस बारे में कोई चर्चा न की। कुछ दिन के बाद ही उस लेख का प्रूफ रामन् के पास आगया। कापी को लेकर वह फौरन प्रो० जोन्स के पास दौड़ गये। प्रो० जोन्स प्रूफ देखकर आश्चर्य चकित होगये। उन्होंने कुछ नाराज़ी सी जाहिर करते हुए रामन् से पूछा भी—'इस लेख को मुझसे बिना पूछे ही तुमने प्रकाशनार्थ क्यों भेज दिया?' इस पर रामन् ने बड़ी नम्रता के साथ उनसे कहा—'यह लेख मैंने सबसे पहले आप ही को देखने को दिया

---

* The Unsymmetrical Diffraction Bands due to a rectangular aperture—published in the Philosophical Magzine of London for Nov, 1906.

2. Modified form of Melde's Experiments.

था। जब कई महीने बीत जाने पर और मेरे कई बार पूछने पर भी आपने कोई बात न बताई तो मैंने अनुमान किया कि आप उस लेख से सहमत हैं और उसमें कोई सुधार नहीं करना चाहते। अतएव मैंने उसे आपसे वापस लेकर प्रकाशित कराने के लिए सम्पादक के पास भेज दिया।' उत्तर सुनकर प्रोफेसर साहब चुप हो गये और सन्तुष्ट से ज्ञान पड़े। इस बार उन्होंने जल्दी ही प्रूफ देखकर वापस कर दिये! उन दिनों वेङ्कट रामन् केवल १८ वर्ष के थे।

श्री वेङ्कट रामन् के दूसरे मौलिक अन्वेषण की कहानी भी कम रोचक नहीं है। एक दिन आपके सहपाठी और मित्र श्री वी० आप्पा-राव शब्द विज्ञान सम्बन्धी कुछ प्रयोग करते करते कुछ ऐसे परि-णामों पर पहुंचे जो असाधारण और विचित्र मालूम हुए। उन्होंने प्रो० जोन्स से शंका समाधान कराना चाहा। परन्तु वह श्री अप्पाराव की शंका को दूर न कर सके। कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी रामन् शीघ्र ही सारी बात समझ गये। उन्होंने स्वयं उसी प्रयोग को स्वतन्त्र रूप से किया। प्रयोग करने के साथ ही साथ लार्ड रैले के शब्द विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों का भी भली भाँति अध्ययन किया। आपने प्रयोग की गणना आदि को बहुत सावधानी से जाँचा। काफी जाँच परताल और अध्ययन के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुं[illegible] के नवीन प्रयोग सुप्रसिद्ध मेल्डी प्रयोग* करने की एक नवीन विधि [illegible]। कई बार बड़ी सावधानी से प्रयोग को दोहराने पर यह स्पष्ट हो गया कि उनकी इस नवीन विधि से मेल्डी की विधि की अपेक्षा कहीं अधिक सही परिणाम प्राप्त होते हैं। मेल्डी

---

* Melde's Experiment.

प्रयोग करने की यह नवीन संशोधित और परिवर्धित विधि शीघ्र ही विज्ञान संसार में प्रसिद्ध हो गई। इस विधि को मालूम करने के लिए विश्व-विख्यात वैज्ञानिक स्वयं लार्ड रैले भी विद्यार्थी रामन् की प्रशंसा किये बिना न रह सके।

वास्तव में श्री रामन् के वैज्ञानिक अन्वेषण कार्यों का श्री गणेश इन दोनों अनुसन्धानों ही से होता है। इन अनुसन्धानों के द्वारा विज्ञान संसार को इस बात की सूचना सी प्राप्त हुई थी कि भविष्य में यही बालवैज्ञानिक रामन् प्रकाश और शब्द विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक कार्य करेंगे। यहाँ यह बतलाना भी असंगत न होगा कि भारतीय वैज्ञानिकों में श्री रामन् ही ऐसे एक मात्र व्यक्ति हैं जिन्होंने बाल्यकाल ही से वैज्ञानिक शोध में अपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित की और जिन्होंने सोलह-सत्तरह वर्ष की उम्र ही में अपने मौलिक सन्धान कार्यों से संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की प्रशंसा प्राप्त की।

जनवरी १६०७ में श्री रामन् एम० ए० की परीक्षा में सम्मिलित हुए और उसे अद्वितीय सम्मान के साथ पास किया। यूनिवर्स्टी में भौतिक विज्ञान में अपने समकालीन छात्रों ही से नहीं, वरन् अपने पूर्व छात्रों से भी कहीं अधिक नम्बर पा कर यूनिवर्स्टी का रेकार्ड तोड़ दिया। वह यूनिवर्स्टी में केवल प्रथम ही नहीं आये वरन् प्रथम श्रेणी में भी थे और भौतिक विज्ञान लेकर प्रथम श्रेणी में आने वाले मद्रास विश्वविद्यालय में सर्व प्रथम विद्यार्थी थे। कालेज जीवन में श्री रामन् ने जिस असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था वह आपके भावी उज्ज्वल जीवन की एक झलक मात्र थी।

इंजनों में करैन्क शैफ्ट के खोल में खिड़कियां बनी होती हैं जिन्हें खोलने से यह बोर्टस् दिखाई देते हैं और इनको हाथ से छू कर पता लग सकता है कि ढीले हैं या कठोर प्रत्येक छः माह में एक बार कम्बसचन चैम्बर और तेल व वायु के मार्गों में जमी हुई कारबन साफ करनी चाहिये। और यदि आवश्यकता हो तो वालवज् को ग्राइंड कर देना चाहिये। पिस्टन निकाल कर उन्हें भी अच्छी तरह साफ कर लेना चाहये और सलिण्डरों को भी। पिस्टन रिंगस् और उनकी झरियों को भी देख लेना चाहये कि वह ठीक रूप में बैठी हैं। तेल के निकास के छेदों को भी साफ करना चाहिये। कौनैक्टिग रोड के बड़े सिरे और करैंक शैफ्ट के घूमने के बड़े बेयरिंगज को भी देख लेना चाहिये और छोटे सिरे के बेयरिंगज् को भी. यह बेयरिङ्गज़ ढीले नहीं होने चाहियें। पानी की जैक्टस् भी साफ रहनी चाहियें। इंजन की ओवर-हालिंग का अभिप्राय यही होता है कि प्रत्येक पुर्जे को ठीक साफ कर दिया जाये और यदि उस में कुछ दोष आ गया हो तो वह भी ठीक कर दिया जाये। जिस समय दुबारा उसे अपनी जगह पर लगाया जाये तो ठीक बैठे। उसके बैठाव में जरा सी भी त्रुटि इंजन के काम में कई प्रकार की कठिनाइयां पैदा कर सकती है। इंजन के चलते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इंजन में तेल का खर्च नार्मल से अधिक तो नहीं हो रहा है। पानी का तापमान और लुब्रीकेटिङ्ग सिस्टम का दर्जा तापमान भी समय २ पर मापते रहना चाहिये और एगजौस्ट वालव से

देखकर श्री रामन् ने अपने प्रोफेसरों और दूसरे शुभचिन्तकों की राय से इसी परीक्षा में सम्मिलित होने का निश्चय किया। प्रो० जोन्स की मदद से इस परीक्षा में आपकी नामज़दगी भी हो गई। इस परीक्षा के लिए आपको साहित्य, इतिहास, राजनीति और संस्कृत जैसे सर्वथा नवीन विषयों का अध्ययन करना पड़ा। यह अध्ययन आपने एम० ए० की परीक्षा में शामिल होने के कुछ मास पूर्व ही आरम्भ कर दिया था। जनवरी में एम० ए० की परीक्षा में शामिल होने के बाद आप फरवरी में भारत सरकार की अर्थ विभाग की परीक्षा में शामिल होने के लिए कलकत्ते गये। इस परीक्षा के आरम्भ होने से एक ही दिन पहिले एम० ए० की परीक्षा का नतीजा उन्हें कलकत्ते में तार से मालूम हुआ। इस शुभ समाचार से आपकी हिम्मत चौगुनी होगई और आप प्रतियोगिता परीक्षा में भी अपना स्थान पूर्ववत बनाये रखने की कामना करने लगे। हुआ भी ऐसा ही, आपको प्रतियोगिता परीक्षा में भी आशातीत सफलता प्राप्त हुई और सारे भारत में आपका प्रथम स्थान रहा। उस समय आपकी अवस्था पूरे बीस वर्ष की भी न थी। परन्तु फिर भी परीक्षा के परिणाम के अनुसार भारत सरकार ने आपको उस छोटी आयु ही में अर्थ विभाग में डिप्टी एकाउन्टेंट जनरल के बहुत ही ज़िम्मेदार पद पर नियुक्त कर दिया। इतनी कम उम्र के किसी भी व्यक्ति का इतने ऊँचे और उत्तर दायित्व पूर्ण पद पर नियुक्त किये जाने का समस्त भारत में यह पहला ही मौका था। विश्वविद्यालय की परीक्षा ही के समान यहाँ भी श्रीयुत रामन् ने एक नवीन रेकार्ड स्थापित कर दिया।

विवाह

सरकारी पद पर नियुक्त होते ही आपका विवाह भी बहुत शीघ्र हो गया। इस विवाह की भी एक रोचक कहानी है। आपके श्वसुर श्रीकृष्ण स्वामी अय्यर मद्रास के सामुद्रिक चुंगीविभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। श्रीरामन् अक्सर उनके यहाँ आया जाया करते थे। श्रीकृष्णस्वामी की धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मिणी अम्मल वेङ्कट रामन् को देखकर विशेषरूप से मुग्ध होगई थी। उन्हें स्वत: ही अन्त:करण की प्रेरणा से ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीरामन् ही उनके भावी दामाद हैं। परन्तु प्रकट रूप में उस समय ऐसी बात का ज़िकर करना भी सामाजिक नियमों के अनुकूल न था। श्रीयुत रामन् का परिवार कुलीनता में श्रीकृष्ण स्वामी से कुछ हीन पड़ता था, उसकी आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक न समझी जाती थी। श्रीकृष्णस्वामी स्वयं पुराने विचारों के होने के कारण अपने से हीन कुल में अपनी लड़की का विवाह करने को राज़ी न होते थे। उधर उनकी पत्नी मन ही मन श्रीरामन् को अपनी लड़की देने का निश्चय कर चुकी थीं। इस विषय में पति-पत्नी में बड़ा मतभेद रहता था। परन्तु श्रीयुत रामन् के उच्च सरकारी पद पर नियुक्त हो जाने पर श्रीकृष्ण स्वामी भी अपनी पत्नी से सहमत हो गये और उन्होंने विवाह करने की स्वीकृति दे दी। लड़की के माता-पिता के राज़ी हो जाने पर भी समाज में बड़ी उत्तेजना फैली। लकीर के फकीर, अपने को कट्टर ब्राह्मण कहनेवाले बहुत से व्यक्ति विवाह में शामिल नहीं हुए। सुधारवादी लोगों ने बड़े उत्साह और धूमधाम के साथ विवाह उत्सव में भाग लिया। स्वर्गीय जस्टिस सुब्रह्मण्य अय्यर और जस्टिस सदाशिव अय्यर ने विवाह के शुभ अवसर

पर स्वयं उपस्थित होकर दम्पति को हार्दिक आशीर्वाद दिये। इस विवाह से श्रीयुत रामन् दक्षिण भारत में और अधिक प्रसिद्ध हो गये।

कर्मनिष्ठ अफसर

दस वर्षों तक श्रीयुत रामन् भारतीय अर्थ विभाग में विभिन्न उच्च पदों पर काम करते रहे। प्रतियोगिता परीक्षा का नतीजा प्रकाशित होने के बाद ही आप कलकत्ते में डिपटी एकाउन्टेंट जनरल के पद पर नियुक्त किये गये। कलकत्ते में तीन वर्ष तक रहने के बाद आपकी बदली रंगून को कर दी गई। रंगून में कुछ ही दिन रहने के बाद, आप शीघ्र ही नागपूर भेज दिये गये और नागपूर से फिर कलकत्ता।

कम उम्र होते हुए भी आप अपना कर्त्तव्य और अपने पद की ज़िम्मेदारियाँ बड़ी खूबी के साथ निबाहते थे। विज्ञान में रुचि रखने के साथ ही सरकारी काम भी बड़े मनोयोग पूर्वक करते थे। जिस समय आप नागपूर पहुंचे, आपके दफ्तर की दशा बड़ी अव्यवस्थित थी। आप से पहिले जो डिप्टी एकाउन्टेंट जनरल वहाँ था, वह खुद तो आराम करता था और सारा काम अपने सहकारियों पर छोड़ देता था। काम बहुत पिछड़ गया था। दफ्तर से अनुशासन और व्यवस्था का नाम उठ गया था। श्री रामन् को यह दशा देख कर बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने दफ्तर की सारी गड़बड़ियों की चुपचाप गुप्त जाँच शुरू कर दी। सब बातें भली भाँति समझने के बाद आवश्यक सुधार शुरू कर दिये। स्वयं सब काम बाकायदा करने लगे और अपने सहकारियों को भी सब काम नियमानुकूल करने की आज्ञा दी। जो व्यक्ति आपकी

अवज्ञा करते उन्हें कठिन दण्ड देने लगे। यह दशा देखकर दफ्तर के लोग आपके खिलाफ हो गये। वे लोग आपके खिलाफ आन्दोलन सा करने लगे। पत्र पत्रिकाओं में आपके खिलाफ आवाज़ उठाई गई और आपको नातजुरबेकार और नौसिखिये नवयुवक अफसर की उपाधि से विभूषित किया गया। एकाउन्टेंट जनरल से भी आपकी शिकायत की गई। उन्होंने सब काग़ज़ात मंगा कर देख भाल की। सारी बातों को अच्छी तरह से समझ लेने के बाद वह स्वयं श्रीयुत रामन् की आज्ञाओं से सहमत हो गये। युवक रामन् की कार्यपटुता देख कर उन्हें दाँतों तले उंगली दबानी पड़ी और स्वयं आपके पास एक बधाई एवं प्रशंसा-पत्र लिखकर भेजा। इस घटना से आप चारों ओर और अधिक प्रसिद्ध हो गये। उन दिनों आपकी अवस्था केवल २२ वर्ष की थी।

जिन दिनों आप नागपूर पहुंचे थे, शहर में प्लेग का भीषण प्रकोप था। प्रति दिन अनेक व्यक्ति कराल काल के ग्रास बनते थे। यह दशा देख कर आपका कोमल हृदय विचलित हो गया और आप अपने सहकारियों सहित जन साधारण की सेवा में जुट गये। अपने बँगले में और उसके आस पास निजी खर्चे से तम्बू आदि लगवा कर बहुत से आदमियों को आश्रय दिया और रोगियों की परिचर्या और दवा दारू आदि कार्यों में भी यथेष्ट भाग लेते रहे और सैकड़ों व्यक्तियों की इस भीषण रोग से रक्षा करने में समर्थ हुए।

नागपूर से आप नवम्बर १९११ ई० में फिर कलकत्ता भेजे गये। इस बार आप डाक और तार विभाग के एकाउन्टेंट जनरल नियुक्त किये गये। दुबारा कलकत्ता पहुंचने पर आप बहुत प्रसन्न हुए। कलकत्ते में

आपको वैज्ञानिक अनुशीलन का काम सुचारु रूप से करने का अच्छा मौका भी मिलता था। नवम्बर १६११ से जुलाई १६१७ तक आप कलकत्ते ही में काम करते रहे। अपनी कर्त्तव्यपरायणता और अच्छे प्रबन्ध के लिए आप अपने सहकारियों और उच्च अधिकारियों, दोनों ही के प्रशंसा पात्र बन गये। सफल प्रबन्ध और कर्तव्यपरायणता के लिए अर्थ विभाग के अध्यक्ष, भारत सरकार के माननीय अर्थसदस्य ने आपको अनेक बार धन्यवाद और बधाइयाँ दीं। इस पद पर काम करते हुए आपको बहुत सी ऐसी बातें सीखने का मौका मिला जिन तक अधिकांश वैज्ञानिकों की पहुंच भी नहीं हो पाती। बड़े बड़े सरकारी दफ्तरों के प्रबन्ध के समुचित ज्ञान और अनुभव के साथ ही आपको आर्थिक मामलों की भी बड़ी अच्छी जानकारी हो गई। करैंसी (मुद्रा), सेविङ्ग बैंक, जीवन बीमा, सार्वजनिक ऋण, आयव्यय निरीक्षण, हिसाब किताब (एकाउन्ट्स) और बजट आदि आदि अनेक कठिन और महत्वपूर्ण विषयों के पूरे पण्डित बन गये। आप की कार्यपटुता देख कर १६१६ ई० में आपको भारत सरकार के सेक्रेट्रिएट में बुलाने का निश्चय किया गया। परन्तु उस से कुछ दिन पहिले ही आप सरकारी नौकरी को तिलाञ्जलि देकर कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के आचार्य पद को ग्रहण करने की स्वीकृति दे चुके थे। सरकारी नौकरी छोड़ने से आपको ज़बरदस्त आर्थिक हानि उठानी पड़ी परन्तु आर्थिक हानिउठा कर भी आपने विज्ञान सेवा का सुयोग स्वीकार करना ही उचित समझा।

अफसरी काल में वैज्ञानिक अनुशीलन

श्रीयुत रामन् में विज्ञान के प्रति इतना प्रेम उत्पन्न हो चुका था

कि सरकारी काम करते रहने पर भी वह विज्ञान से विमुख न हो सके। सरकारी काम करने के बाद जो कुछ समय बचता उसे वह विज्ञान के अनुशीलन और अध्ययन में लगाते। बहुधा देखा जाता है कि किसी ऊँचे ओहदे पर पहुंचने पर अथवा अन्य सांसारिक कार्यों में लग जाने पर मनुष्य की विद्यार्थी-जीवन की रुचियाँ बहुत कुछ बदल जाती हैं। विद्यार्थी-जीवन की ज्ञान उपार्जन की अभिलाषायें और महत्वकांक्षायें बालू की भीति की तरह ढह जाती हैं! परन्तु श्रीयुत वेङ्कट रामन् इतने ऊँचे ओहदे पर पहुंचकर भी विज्ञान को न भूल सके और अपने अवकाश का सम्पूर्ण समय विज्ञान साधना में लगाते रहे। एक दिन श्रीरामन् कलकत्ते में डलहौज़ी स्क्वायर से अपने निवास स्थान सियालदह को ट्राम से वापस जा रहे थे। रास्ते में इनकी दृष्टि एक साइनबोर्ड पर पड़ी। उसपर 'इण्डियन एसोसिएशन फार दि कल्टिवेशन आफ साइंस'* (भारतीय-विज्ञानपरिषद) लिखा हुआ था। इससे पूर्व श्रीरामन् को भारत में भी ऐसी किसी वैज्ञानिक संस्था के होने का हाल न मालूम था। अस्तु, उस साइनबोर्ड को देखकर इनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसे एक बार देखा, दो बार देखा, देखकर सोचा क्या यह सत्य है अथवा स्वप्न? क्या भारत में भी कोई ऐसी परिषद हो सकती है? परन्तु उस समय सोच विचार में अधिक समय नष्ट न किया। तुरन्त ही ट्राम से उतर पड़े और परिषद् भवन में जा पहुंचे। इत्तफाक से उस दिन परिषद की बैठक भी थी और सर आशुतोष मुकर्जी तथा

---

* Indian Association for the Cultivation of Science.

कलकत्ते के कुछ वैज्ञानिक और विज्ञान में अभिरुचि लेनेवाले प्रतिष्ठित विद्वान् वहाँ उपस्थित थे। उस दिन श्रीरामन् ने परिषद के अवैतनिक मंत्री—संस्था के संस्थापक स्वर्गीय डा० महेन्द्रलाल सरकार के पुत्र—डा० अमृतलाल सरकार से केवल अगले दिन भेंट करने का समय नियत किया। भेंट करने पर आपने डा० अमृतलाल को यूरोपियन वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकने वाले अपने मौलिक खोज निबन्ध दिखलाये और बतलाया कि उन विषयों में अभी और कितना काम किया जा सकता है। उचित सुविधायें मिलने पर आपने स्वयं अनुसन्धान कार्य को हाथ में लेने की इच्छा भी प्रकट की। डा० अमृतलाल तरुण वैज्ञानिक रामन् की मौलिकता देखकर मुग्ध हो गये और पहली ही भेंट में उन्होंने अनुसन्धान कार्य के लिए उचित प्रबन्ध कर देने का वचन दे दिया। आप भी उसी दिन परिषद के सदस्य बन गये। इस परिषद् को पाकर आपकी विज्ञान साधना की चिरवाञ्छित अभिलाषायें पूर्ण होगईं। परिषद को भी एक अत्यन्त उत्साही, और असाधारण योग्यता का कर्मनिष्ठ वैज्ञानिक मिल गया।

श्रीयुत रामन् के सहयोग से एसोसिएशन शीघ्र ही संसार की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं में गिना जाने लगा। श्रीयुत रामन् ने एसोसिएशन की प्रयोगशालाओं में जो अनुसन्धान कार्य किये उनके विवरण बुलेटिन के रूप में प्रकाशित किये जाने लगे। इन से एसोशिएशन की ख्याति धीरे धीरे भारत ही नहीं विदेशों में भी होने लगी और उसकी प्रतिष्ठा एवं सम्मान में यथेष्ट वृद्धि हुई।

एसोसिएशन और श्रीयुत रामन् के इस पारस्परिक सहयोग से एसो-

सिएशन का कायापलट होने के साथ ही श्रीयुत रामन् भी कम लाभान्वित न हुए। जहाँ एसोसिएशन को एक अच्छे वैज्ञानिक की ज़रूरत थी, श्रीयुत रामन् भी एक सुसम्पन्न प्रयोगशाला की तलाश में थे। एसोसिएशन के सम्पर्क में आने के बाद आप तीन वर्ष कलकत्ता में रहे। इन तीन वर्षों में आपने कलकत्ते में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली। विज्ञान में अभिरुचि लेने वाले प्रायः सभी विद्वान आपको अच्छी तरह से जान गये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइसचांसलर सर आशुतोष मुकर्जी आपके मौलिक अन्वेषणों से विशेष रूप से प्रभावित हुए और आपके कार्यों में दिलचस्पी लेने लगे। सर आशुतोष से आपका परिचय धीरे धीरे मित्रता के रूप में परिणत हो गया। इस मित्रता ने आगे चल कर आपकी सारी ज़िन्दगी ही को बदल डाला।

तीन वर्ष तक कलकत्ते में रहने के बाद आपकी बदली रंगून को कर दी गई। इस मौके पर आपको रंगून जाना अखर गया। एसोसिएशन की प्रयोगशाला से बिछुड़ने का आपको बहुत ही दुःख हुआ। परन्तु फिर भी आप विज्ञान से अपना सम्बन्ध न तोड़ सके। रंगून में रहकर भी आप यथासाध्य अपने अवकाश का सारा समय विज्ञान साधना ही में लगाते। कहा जाता है कि रंगून पहुंचने के कुछ ही दिन बाद इनसीन स्कूल की प्रयोगशाला के लिए कुछ नवीन वैज्ञानिक उपकरण आने की बात सुनकर उन्हें देखने को, आप अपनी स्त्री से कहे बिना ही एक दिन आधी रात को नज़दीक के रेलवे स्टेशन तक पैदल चले गये थे और प्रातःकाल होते होते घर वापस आ गये थे। यह

छोटी सी घटना श्रीयुत रामन् के असीम विज्ञान प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

मार्च १६१० ई० में अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिलने पर आप ६ महीने की छुट्टी लेकर रंगून से मद्रास आ गये। छुट्टी के दिनों में भी आपको सरकारी काम से तो अवश्य ही अवकाश मिल गया परन्तु आपकी विज्ञान साधना यहाँ भी अविराम गति से जारी रही। अपनी छुट्टी के छहों महीनों में, मार्च से लगाकर सितम्बर तक, आप बराबर मद्रास के प्रेसिडैंसी कालेज की प्रयोगशाला में अनुसन्धान कार्य में लगे रहे। छुट्टी के बाद आप रंगून न भेजे जाकर नागपूर भेजे गये। वहाँ भी अपने घर ही में प्रयोगशाला बनाकर बराबर अनुसन्धान करते रहे। नागपूर से करीब साल भर बाद फिर कलकत्ता बदली हो गई। दुबारा कलकत्ता पहुंचने पर आप बहुत प्रसन्न हुए और फिर बड़े उत्साह के साथ एसोसिएशन की प्रयोगशाला में काम करने लगे, और आगामि २० वर्षों तक बराबर वहीं काम करके अपने और अपनी संस्था के लिए विज्ञान संसार में एक विशेष स्थान बना लिया।

विज्ञान के आचार्य

सन् १६१४ में सर आशुतोष मुकर्जी ने सर तारकनाथ पालित और डा० रासबिहारी घोष की सहायता से कलकत्ते में 'साइंस कालेज' की स्थापना की। इस संस्था की स्थापना से भारत में विज्ञान के लिए एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। इस कालेज की स्थापना के लिए

यथेष्ट धन देने के साथ ही सर तारकनाथ ने विश्वविद्यालय को एक कोष भी प्रदान किया। इस कोष की आय से विज्ञान कालेज में भौतिक विज्ञान की शिक्षा देने के लिए 'पालित आचार्य' की नियुक्ति का आयोजन किया गया।

सर आशुतोष को इस पद के लिए योग्य आचार्य ढूँढ़ने में बड़ी कठिनाई पड़ी। योग्य आचार्य के न मिलने पर उनका ध्यान श्रीयुत रामन् की ओर आकर्षित हुआ। वैसे भी, रामन् महोदय से परिचित होने के समय ही से, वह उनके वैज्ञानिक कार्यों में दिलचस्पी लिया करते थे। श्रीयुत रामन् ने उच्च सरकारी अफसर होते हुए भी केवल विज्ञान प्रेम ही के नाते अपने अवकाश के समय में जो महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सन्धान किये थे उनसे वह और भी अधिक प्रभावित हुए थे। वह श्रीयुत रामन् की कठिनाइयों से भी परिचित थे। इन कठिनाइयों के होते हुए भी आप जितनी योग्यता, लगन और उत्साह के साथ वैज्ञानिक अनुसन्धान करते रहते थे उसपर विचार कर तथा आपकी असाधारण प्रतिभा एवं विज्ञान साधना को ध्यान में रखते हुए सर आशुतोष ने रामन् ही को विज्ञान कालिज में 'पालित आचार्य' के पद पर नियुक्त करने का निश्चय किया। उस समय आपकी अवस्था २५ वर्ष से अधिक न थी। जिस सरकारी पद पर आप कार्य कर रहे थे उसमें इज्ज़त और आमदनी दोनों ही अधिक थी परन्तु फिर भी विज्ञान सेवा का स्वर्ण अवसर पाकर आपने उसका तिरस्कार करना उचित न समझा और सर आशुतोष के अनुरोध करने पर शीघ्र ही अपनी स्वीकृति दे दी। महत्वपूर्ण एवं भारी आमदनी की सरकारी नौकरी तथा नौकरी छोड़ने के लिए

अपने परिवार वालों तथा दूसरे सगे सम्बन्धियों के विरोध की तनिक भी चिन्ता न की। परन्तु इस कार्य में एक और बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा। सर तारकनाथ पालित ने अपने दानपत्र में पालित आचार्य के पद पर नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति का किसी यूरोपियन विश्वविद्यालय का उपाधिधारी होना अनिवार्य कर दिया था। श्रीयुत रामन् के पास उस समय तक न तो कोई यूरोपियन उपाधि ही थी और न वह उपाधि प्राप्त करने के लिए उस समय इँगलैंड जाने ही के लिए तैयार थे। अस्तु दानपत्र की इस शर्त ने उनके लिए एक नई परेशानी पैदा कर दी।

इस गुत्थी को सुलझाने में आपके मित्र और हितैषी वयोवृद्ध सर गुरुदास बनर्जी ने आपकी बड़ी सहायता की। एक दिन आपने सर गुरुदास के साथ तीसरे पहर चाय पीते समय इन सब बातों का ज़िकर किया। सर गुरुदास को आपकी नवीन नियुक्ति का हाल तो पहिले ही मालूम था। उन्होंने आपको मदद करने का बचन दिया और उपाधि प्राप्त करने के लिए इंगलैंड न जाने की सलाह दी, और कहा कि दानपत्र की यह शर्त भारतीय विद्वानों के लिए घोर अपमानजनक है। मौलिक सन्धान कार्य के लिए भी भारत को विदेशों पर निर्भर रहने और यूरोपियनों के नेतृत्व में काम करने के लिए विवश करती है। इस तरह से सर आशुतोष ने जिस महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर इस कोष का आयोजन कराया है, उसकी पूर्ति ही में इस शर्त से बड़ी बाधा पड़ती है। वास्तव में दानपत्र की यह शर्त भारतीयों के स्वतंत्र मानसिक विकास और बौद्धिक उन्नति के

लिए बहुत घातक सिद्ध होगी, दानपत्र लिखते समय सर तारकनाथ ने इन बारीकियों पर भली भाँति ग़ौर न किया था। अतएव दानपत्र की इस शर्त के कारण सर गुरुदास ने श्रीयुत रामन् को इंगलैंड जाकर उपाधि प्राप्त करने के लिए विवश करना नितान्त अनुचित समझा। उन्होंने सर आशुतोष से भी कड़े शब्दों में इस शर्त की घोर निन्दा की। अन्त में सर आशुतोष भी सर गुरुदास बनर्जी से सहमत हो गये और दोनों ने मिलकर श्रीयुत रामन् को इस शर्त की पाबन्दी से मुक्त करा दिया।

श्रीयुत रामन् की नियुक्ति कराकर सर आशुतोष को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने विज्ञान कालिज के शिलारोपण उत्सव के अवसर पर जो भाषण दिया था उससे उनकी इस प्रसन्नता का बहुत कुछ आभास मिलता है। इस भाषण के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

'हमारा सौभाग्य है कि हम सर तारक नाथ पालित द्वारा आयोजित 'पालित आचार्य' पद के लिए श्रीयुत चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् की सेवायें प्राप्त करने में सफल हुए हैं। श्रीयुत रामन् अपने भौतिक विज्ञान सम्बन्धी महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय मौलिक अनुसन्धानों से यूरोप में भी यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि श्रीयुत रामन् ने ये सब अनुसन्धान अत्यन्त विपरीत और कठिन परिस्थितियों व सरकारी कार्यों के झमेले से वक्त निकालकर किये हैं। मुझे इस बात से तो और भी अधिक प्रसन्नता होती है कि श्रीयुत रामन् ने अपना समस्त महत्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टिवेशन आफ साइंस, की प्रयोगशाला में किया है। इस संस्था

की स्थापना हमारे प्रतिभाशाली सहयोगी स्वर्गीय डा० महेन्द्रलाल सरकार द्वारा की गई थी। श्रीयुत रामन् ने विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी को स्वीकार करके, अपनी भारी वेतन वाली सरकारी नौकरी को छोड़ कर जिस अद्वितीय साहस और अपूर्व आत्मत्याग का परिचय दिया है, उसकी यहाँ यदि मैं हार्दिक और वास्तविक प्रशंसा न करूँ, तो मैं अपने कर्त्तव्य पूर्ति में सफल न होऊँगा। वास्तव में मुझे दुःख है कि यूनिवर्स्टी की इस प्रोफेसरी के लिए उन्हें यथेष्ट उदार वेतन भी तो न मिल सकेगा। श्रीयुत रामन् के इस एक उदाहरण ने मुझे अत्यधिक प्रोत्साहित किया है और मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस विज्ञान मन्दिर में, जिसकी स्थापना का महत् उद्देश्य लेकर आज हम सब यहाँ एकत्र हुए हैं, सत्य के अन्वेषियों की कोई कमी न रहेगी।'

जुलाई १६१७ ई० में श्रीयुत रामन् ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में कार्य आरम्भ किया। १६१६ ई० में डा० अमृतलाल सरकार की मृत्यु के उपरान्त प्रो० रामन् साइंस एसोसिएशन के अवैतनिक प्रधान मंत्री भी निर्वाचित किये गये। इससे पहिले आप एसोसिएशन के उपसभापति का काम करते थे। विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी और एसोसिएशन के मंत्री का पद दोनों ही एक दूसरे के पूरक से थे। प्रोफेसरी स्वीकार करके उन्हें सरकारी काग़ज़ी काम के झमेले में फँसे रहकर अपनी आजीविका उपार्जित करने के झंझट से छुट्टी मिल गई। साइंस एसोसिएशन में उनके पद ने उन्हें विश्वविद्यालय के अध्यापन और परीक्षा सम्बन्धी कार्यों से बेफिक्र होकर स्वच्छन्दतापूर्वक अनुसन्धान कार्य करने की उदार सुविधायें प्रदान कीं। यद्यपि 'पालित आचार्य' पद

स्वीकार करते समय उन्होंने जो शर्तें स्वीकार की थीं उनके अनुसार विज्ञान कालिज में लेक्चर आदि देना उनके लिए अनिवार्य न था, फिर भी वह अपनी इच्छा ही से विद्यार्थियों के पढ़ाने में काफी समय देते थे और मौलिक कार्य करने लिए यथेष्ट समय निकाल लेते थे। विद्यार्थियों को पढ़ाने में प्रमुख भाग लेने से उन्हें विद्यार्थियों के साथ ही उनके पाठ्य विषय के भी निकट सम्पर्क में आने के अवसर मिलते थे। आगामि वर्षों में श्रीयुत रामन् ने अपने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्यों से अपने और अपने देश के लिए जो यश और कीर्ति उपार्जित की तथा जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त की उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हें मिलने वाली इन सुविधाजनक परिस्थितियों को दिया जा सकता है।

परन्तु इन सुविधाजनक परिस्थितियों से भी कहीं अधिक श्रेय तो उनके व्यक्तिगत उत्साह, प्रतिभा और अध्यवसाय को प्राप्त है। अपने असीम विज्ञान प्रेम से प्रभावित होकर ही उन्होंने यथेष्ट आमदनी और इज़्ज़त तथा कम काम की सरकारी नौकरी छोड़कर विज्ञान सेवा का बीड़ा उठाया और अत्यन्त स्वल्प वेतन पर कहीं अधिक परिश्रम करने को तैयार होगये। आपकी इस विज्ञान साधना के फलस्वरूप कलकत्ता विश्वविद्यालय का भौतिक विज्ञान विभाग तथा साइंस एसोसिएशन भारत भर में प्रख्यात होगये। दूर दूर से विद्यार्थी अध्ययन करने तथा अनुसन्धान कार्य के लिए इन संस्थाओं में आने लगे। शीघ्र ही श्रीयुत रामन् की गणना भारत ही नहीं वरन् संसार के भौतिक विज्ञान के कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों में की जाने लगी।

आचार्य रामन् लगातार १५ वर्ष तक—१६१७ से १६३२ तक

कलकत्ता विश्वविद्यालय और साइंस एसोसिएशन में अनुसन्धान कार्य का नेतृत्व करते रहे। इस बीच में आपने जो असाधारण और अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किये उनसे आपका यश और कीर्ति संसार भर में फैलने के साथ ही, भारत का मुख भी उज्ज्वल हो गया।

आचार्य रामन् की शिष्य मण्डली

आचार्य रामन् ने स्वयं उच्चकोटि के वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के साथ ही सैकड़ों भारतीय युवकों को विज्ञानसाधना के लिए अनुप्राणित किया है। वास्तव में विश्वविख्यात वैज्ञानिक लार्ड रुदरफोर्ड के शब्दों में 'आचार्य रामन् ने केवल महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अन्वेषण ही नहीं किये हैं, वरन् अपने उद्योग से कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के अन्वेषण के लिए एक उन्नतिशील, कर्मण्य और उद्योगी संस्था की स्थापना और विकास भी किया है।' विगत २०-२२ वर्षों में आपकी प्रेरणा से कलकत्ते के इण्डियन साइंस एसोसिएशन की प्रयोगशाला से तथा विश्वविद्यालय के साइंस कालेज से अनेक सुयोग्य और प्रतिभा-शाली छात्र निकलकर अपने वैज्ञानिक कार्यों से अपने आचार्य और भारत को गौरवान्वित कर रहे हैं। आपके शिष्य भारत भर में फैले हुए हैं और बहुत ही ज़िम्मेदारी के कार्यों पर तैनात हैं। केवल भौतिक विज्ञान ही नहीं, वरन् रसायन, गणित, वनस्पति विज्ञान और भूगर्भ विज्ञान में अनुसन्धान कार्य करनेवाले व्यक्तियों ने भी आचार्य रामन् से अपने कार्यक्षेत्र में विशेष सहायता प्राप्त की है। आज भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में, रंगून, कलकत्ता, ढाका, प्रयाग, काशी,

चिदाम्बरम्, वाल्टेयर, नागपूर, आगरा, पूना और लाहौर प्रभृति स्थानों के कालेजों में डा० रामन् के शिष्यों ही की देखरेख में भौतिक विज्ञान का अनुशीलन कार्य हो रहा है। वास्तव में डाक्टर रामन् संसार में विज्ञान के किसी भी श्रेष्ठ आचार्य ही की भाँति अपनी शिष्य मण्डली पर उचित गर्व कर सकते हैं। डा० रामन् ही की भाँति उनके शिष्य भी विज्ञान के विभिन्न विभागों में प्रशंसनीय मौलिक कार्य कर रहे हैं। डा० के० एस० कृष्णन् एफ० आर० एस०, आचार्य रामन् के श्रेष्ठतम शिष्य हैं। डा० के० एस० कृष्णन् ने अपने विश्वविख्यात आचार्य का अनुसरण कर अपनी थोड़ी ही आयु में विज्ञान संसार में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली है। डा० कृष्णन् की गणना भी भारत के इनेगिने श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में की जाती है। आचार्य रामन् के कलकत्ते से चले जाने के बाद से डा० कृष्णन् साइंस एसोसिएशन में अनुसन्धान कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं। आचार्य रामन् के श्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्यों तथा उनकी शिष्य मण्डली ने कलकत्ता विश्वविद्यालय और साइंस एसोसिएशन को विज्ञान संसार में अमर कर दिया है। इस सम्बन्ध में प्रिंसपल आर्चिबाल्ड के प्रसिद्ध कथन का यहाँ उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि सुन्दर और भव्यभवन किसी विश्वविद्यालय को नहीं बनाते, वास्तव में विश्वविद्यालय को बनानेवाली उसके आचार्यों और शिष्यों की मण्डली होती है। आचार्य रामन् अपने शिष्यों और उनके महत्वपूर्ण कार्यों पर उचित गर्व कर सकते हैं।

पथप्रदर्शक

आचार्य रामन् ने स्वयं जो महत्वपूर्ण कार्य किये हैं उन सब का

संक्षिप्त हाल बतलाना भी इस पुस्तक के सीमित कलेवर में सम्भव नहीं है। आपकी विज्ञान साधना इतनी महत्वपूर्ण, विविध और सर्वतोमुखी है कि उसके केवल संक्षिप्त विवरण से इस पुस्तक सरीखी कई प्रतियाँ तैयार की जा सकती हैं। अपनी इन सेवाओं और प्रतिभा शाली कार्यों ही के बल पर आज दिन आपकी गणना भारत ही नहीं वरन् संसार के कतिपय सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों में की जाती है। आपने किसी विशेष मार्ग का अनुसरण न करके, अनुसन्धान के विविध क्षेत्रों में सर्वथा नवीन मार्ग तैयार किये हैं। अपने लिए नये मार्ग तैयार करने के साथ ही आपने दूसरों के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है। अपनी विज्ञान साधना आरम्भ करने के समय से बराबर आज तक नवीन सिद्धान्त ढूँढ़ निकालने के साथ ही उन्हें प्रायोगिक एवं व्यवहारिक रूप से भी सिद्ध करने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहते हैं। इन प्रयत्नों में आपको बराबर असाधारण सफलता मिलती रही है। आपने जो कुछ भी कार्य किये हैं मौलिकता और विविधता उनकी विशेषता है। आपके कार्यों से भौतिक और रसायन दोनों ही को समानरूप से यथेष्ट लाभ पहुंचा है। भौतिक विज्ञान वेत्ता, रसायनिक तथा गणित शास्त्री सभी आपको अपने ही में से एक समझते हैं। संक्षेप में आप विस्तृत विज्ञान क्षेत्र में एक सच्चे पथप्रदर्शक हैं। वास्तव में आपकी सर्वतोमुखी विज्ञान साधना से भारत में विज्ञान की असाधारण उन्नति हुई है। भारत ही नहीं वरन् संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों के वैज्ञानिकों ने आपके महत्वपूर्ण कार्यों से मौलिक कार्य करने की प्रेरणा और उत्साह प्राप्त किया है और आपके द्वारा निर्धारित

पथ का अनुसरण करके विज्ञान संसार में यथेष्ट ख्याति अर्जित की है।

वैज्ञानिक कार्य

डा० रामन् का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्य 'रामन् प्रभाव' की खोज है। इसकी गणना संसार के कुछ उत्कृष्ट वैज्ञानिक सन्धानों में की जाती है। रामन् महोदय के इस कार्य को संसार भर के वैज्ञानिक बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। वैज्ञानिक सन्धानों के एक प्रख्यात ब्रिटिश आलोचक के शब्दों में 'रामन् प्रभाव' से अन्वेषण का मार्ग उतना ही प्रशस्त हो गया है जितना कि एक्स किरणों के आविष्कार तथा रेडिओ-एक्टिविटी सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्यों से हुआ था।* गणित शास्त्रियों, भौतिक विज्ञान विशारदों तथा रसायनिक तीनों ही श्रेणियों के वैज्ञानिकों ने, डा० रामन् के इस महत्वपूर्ण कार्य का हार्दिक स्वागत किया।

शब्द विज्ञान—डा० रामन् के वैज्ञानिक कार्यों का सूत्रपात उनकी विद्यार्थी अवस्था ही से होता है। उस समय, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है उन्हें प्रकाश और शब्द विज्ञान में विशेष रुचि थी। आगे चलकर भी आपने जो कार्य किये उनमें से अधिकांश इन्हीं दोनों विज्ञानों से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

---

* The Discovery of Raman Effect has opened up a view of research which has almost paralleled the early history of work in X Rays and Radioactivity.

१६०७–१७ तक, जब कि आप भारतीय अर्थविभाग के अफसर थे, आपका अधिकांश सन्धानकार्य कम्पन और शब्द विज्ञान* ही तक सीमित रहा। इस काल की सब से महत्वपूर्ण खोज वाद्ययंत्रों के सिद्धान्त हैं। आपने वीणा, तानपूरा, मृदंग आदि भारतीय वाद्ययंत्रों तथा वायोलिन, सेलो† और पियानो प्रभृति विदेशी यंत्रों के शाब्दिक‡ गुणों का विशेष अध्ययन किया। बहुत सी नवीन रोचक बातें खोज निकाली और बहुत सी जानी हुई बातों की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में सफलता प्राप्त की। कोलाहल+ और वाद्ययंत्रों की ध्वनि एवं संगीत आदि के अध्ययन के लिए कई नवीन यंत्रों का आविष्कार किया। भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों के लिए वायोलिन बजाने का भी एक नया यंत्र/ बनाया। इस सम्बन्ध में आपने आगे चलकर जो और कार्य किये उनमें सेंटपाल केथेड्रल (गिरजाघर), कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल तथा पटना की ग्रेनरी‖ (खलिहान) के उपांशुवादी गुम्बदों△ का अध्ययन मुख्य हैं। संक्षेप में शब्द विज्ञान में आपने जो कार्य किये हैं, उनके आधार पर आप संसार में इस विज्ञान के प्रामाणिक पण्डित माने जाते हैं।

---

* Vibration and sound.

† Cello ‡ Acoustical Properties.

+ Noises. / Mechanical violin Player.

‖ Patna Granary.

△ Whispering galleries

प्रकाश और रंग—प्रो० रामन् रंगों के अध्ययन में भी एक कलाविद ही की भाँति अभिरुचि रखते हैं। १६१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञानाचार्य का पद ग्रहण करने के बाद लगातार चार वर्षों तक आप प्रकृति के रंगों के अध्ययन और विश्लेषण में लगे रहे और अपने विद्यार्थियों तथा सहयोगियों को भी यही काम करने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित किया। प्रकृति में उत्पन्न होने वाले विभिन्न रंगों को संश्लेषणात्मक उपायों द्वारा प्रयोगशाला में भी तैयार करने की कोशिश की।

आकाश में कुहासा और इसके बादलों द्वारा बने हुए रंगीन किरीट* और इन्द्र धनुषों की व्याख्या इस काल के विशेष उल्लेखनीय कार्य हैं। अभ्रक की बहुत पतली पत्तरों, पानी और हवा के मिलने से बने हुए अत्यन्त सूक्ष्म फिल्म (पटल), पानी और कलोद† गन्धक के रंगीन मिश्रणों के तथा द्रव पायस‡ के रंगों के विश्लेषण और अध्ययन भी इसी काल में किये गये। इन्हीं दिनों प्रकाश की किरणों के किनारों पर मुड़ने+ और मणिभीय पटलों में देखी जानेवाली व्यतिकरण कुण्डलियों/ आदि से सम्बन्ध रखने वाली कई एक गूढ़ समस्याओं को भी सुलझाने की चेष्टा की गई। बहती हुई हवा से भरी

---

* Coloured Coronas, † Colloid.

‡ Liquid emulsions.

+ Bending of light round edges.

/ Interference rings observed in crystalline plates.

हुई २०० फीट लम्बी नलिका में प्रकाश का वेग* मालूम करने का प्रयत्न अपने ढंग का एक सर्वथा नवीन कार्य था। प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी इन सब अन्वेषणों से आचार्य रामन् संसार के प्रमुख प्रकाश विज्ञान विशारदों में गिने जाने लगे। आपने शिष्यों के साथ इस सम्बन्ध में जो कार्य किये हैं उनकी जर्मन वैज्ञानिकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भौतिक विज्ञान की प्रसिद्ध जर्मन पुस्तक† के लिए प्रोफेसर लेऊ ने आपके और आपके सहकारियों के प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी कार्य का वर्णन एक अध्याय में विशेष रूप से विस्तार पूर्वक किया है।

समुद्र जल का नीला रंग—१६२१ की ग्रीष्म ऋतु में यूरोप यात्रा के समय प्रोफेसर रामन् को समुद्र के नीले जल के अवलोकन और अनुशीलन का अवसर मिला। भूमध्य सागर के जल से तो आप विशेष प्रभावित हुए। विज्ञान के अन्वेषक के नाते आपका ध्यान समुद्र जल के नीले होने के कारण ज्ञात करने की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। समुद्र जल के आकर्षक दृश्यों ने अन्वेषण कार्य के लिए एक नवीन कार्यक्षेत्र प्रस्तुत कर दिया। सितम्बर १६२१ में कलकत्ता वापस आने पर आपने जल और उसके जैसे पारदर्शक द्रवों में होकर प्रकाश के आर पार जाने से होने वाली घटनाअ

---

* Velocity of light.

† Prof Laue's article in the "Handbuchder Experimental Physik."

का अनुशीलन एवं अध्ययन आरम्भ कर दिया। इस अनुशीलन और अध्ययन के परिणाम स्वरूप आप जिन निष्कर्षों और सिद्धान्तों पर पहुंचे उनसे विज्ञान संसार में एक हलचल पैदा होगई और दूसरे वैज्ञानिकों के लिए भी एक नवीन कार्यक्षेत्र प्रस्तुत हो गया। इन खोजों का संक्षिप्त विवरण कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से फरवरी १६२२ ई० में एक निबन्ध* रूप में प्रकाशित किया गया। इसके बाद तीन वर्ष तक आप प्रकाश के आणुविक विवर्त्तन सम्बन्धी अन्वेषण कार्य में संलग्न रहे। आपने यह सिद्ध किया कि न केवल पारदर्शक द्रवों में वरन बरफ और स्फटिक† सरीखे ठोस पारदर्शक पदार्थों में भी अणुओं की गति के कारण प्रकाश का परिक्षेपण‡ होता है। परिक्षिप्त प्रकाश की तीव्रता और आचरण+ द्वारा किसी द्रव अथवा वायव्य पदार्थ/ में अणुओं की संख्या का गिनना और उनकी गति का ज्ञान प्राप्त करना भी सम्भव हो गया।

प्रकाश के परिक्षेपण का अध्ययन रसायन विज्ञान के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। प्रत्येक रसायनिक अणु अपने निजी ढंग से प्रकाश का परिक्षेपण करता है। अतएव प्रत्येक पदार्थ केवल प्रकाश सम्बन्धी अवलोकन ही से दूर से भी पहचाना जा सकता है। आणविक

---

* Molecular Diffraction of light.

† Quartz ‡ Scattering.

+ Intensity & character.

/ Gases

गठन,* उसके गुण और प्रकाश के परिक्षेपण करने की शक्ति में जो परस्पर सम्बन्ध है उसे ज्ञात करने के लिए प्रोफेसर वेङ्कट रामन् ने अपने सहकारियों सहित बहुत से अन्वेषण किये। इन अन्वेषणों के परिणाम स्वरूप भौतिक रसायन विशारदों† के लिए भी महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत हो गई।

एक्स किरण अनुशीलन—प्रोफेसर रामन् के इस अनुसन्धान के पहिले यह एक स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता था कि द्रव पदार्थों का संगठन वायव्य एवं वाष्प के संगठन ही के समान होता है। परन्तु आपके अन्वेषण से इसके विपरीत बात सिद्ध हुई, आपने बतलाया कि द्रव पदार्थों का संगठन ठोस पदार्थों के अधिक अनुरूप है। इस नवीन सिद्धान्त ने आपको एक्स किरणों की सहायता से द्रव पदार्थों की गठन का अध्ययन करने को प्रेरित किया। इस अध्ययन और तत्सम्बन्धी प्रयोगों से द्रव पदार्थों की रचना के बारे में जो निष्कर्ष निकले वे आपके प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों के सर्वथा अनुरूप पाये गये। डा० रामन् और उनके सहयोगियों ने द्रवों द्रव मिश्रणों और घोलों का निरीक्षण करके भौतिक विज्ञान और रसायन दोनों ही के लिए बहुत उपयोगी बातें मालूम कीं। एक्स किरणों द्वारा विश्लेषण की रीति आपकी प्रयोगशाला में मणिभों और कलोद पदार्थों की रचना का अध्ययन करने के भी काम में लाई गई है।

---

* Molecular Structure.

† Physical chem

ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ दिन में सूर्य की प्रचंडता के कारण बाहर निकलना कठिन है। इन सब अवस्थाओं में मनुष्य अपना शरीर परिस्थितियों के अनुकूल रखता है। यदि बाह्य-ताप अधिक होता है, तो वह आंतरिक ताप को कम कर देता है। यदि वायु-मंडल बहुत शीतल होता है तो उष्णता अधिक बनने लगती है।

जब वायु-मंडल शरीर से अधिक ठंडा होता है, तो ओपजनीकरण क्रियाओं से शरीर अपने को उष्ण करता है। यह उष्णता हमारे भोजन के जलने से उत्पन्न होती है। हम जो भोजन करते हैं, उसके ओपजनीकरण से हमारे शरीर का ताप बढ़ता है और यद्यपि शारीरिक उष्णता का सदा नाश होता रहता है, कुछ श्वास द्वारा होता है कुछ त्वचा के द्वारा होता है, कुछ उष्णता कार्य-शक्ति में परिणत हो जाती है, फिर भी हमारा शरीर उस कमी को पूर्ण करने के अतिरिक्त शारीरिक ताप को बनाए रखने के लिये पर्याप्त उष्णता उत्पन्न कर लेता है।

यह ओपजनीकरण, जो शरीर को उष्ण रखता है, अधिकतर यकृत और पेशियों में होता है। यकृत में सारे शरीर के रक्त का चौथाई भाग रहता है। वहाँ बहुत-सी रासायनिक क्रियाएँ हुआ करती हैं। इससे जो रक्त यकृत से निकलता है, वह सारे शरीर के रक्त से अधिक उष्ण होता है। पेशी भी सदा क्रिया करते रहते हैं। जिस समय हम विश्राम करते हैं, उस समय भी पेशियों में कुछ संकोच हुआ करता है।

अतएव इन्हीं स्थानों में सबसे अधिक उष्णता बनती है। उष्णता शारीरिक दशा और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार कैसे बनती है? यह किस प्रकार होता है कि यकृत और पेशी उतनी ही उष्णता बनाते हैं, जितने की शरीर को आवश्यकता

असाधारण प्रतिभा दिखलाई है। आपने जो अन्वेषण किये हैं वे महत्व में उपरोक्त श्रेणी के वैज्ञानिकों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। आपका कार्य केवल भौतिक विज्ञान ही की विभिन्न शाखाओं तक सीमित नहीं है। भौतिक विज्ञान के अत्यन्त निकट सम्पर्क के गणित और रसायनविज्ञान में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। आपने अधिकांश कार्य रसायनिक घटनाओं के मूल आधार को समझने की अभिलाषा से प्रेरित होकर किया है। भौतिक विज्ञान के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों ही अंगों में पारंगत होने के कारण आप उच्च गणित में भी अ भरुचि रखते हैं।

रामन्-प्रभाव—जैसा कि पीछे के पृष्ठों में बतलाया जा चुका है 'रामन् प्रभाव' आचार्य रामन् का सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक अन्वेषण माना जाता है। इसी अन्वेषण के उपलक्ष्य में आपको संसार प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ है। रामन् प्रभाव क्या है? यहां हम उसे सरल भाषा में समझाने की चेष्टा करेंगे। वैसे तो सूत्र रूप में इसका विवरण देने के लिए एक ही वाक्य पर्याप्त होगा—प्रकाश का रंग परिक्षेपण द्वारा बदल जाता है। परन्तु इसे अच्छी तरह से समझने के लिए कुछ अधिक बातें जानने की ज़रूरत है।

सूर्य के प्रकाश अथवा अन्य साधारण श्वेत प्रकाश में कई रंगों की किरणें होती हैं। ये रंग प्रकाश की किरणों को साधारण कांच के त्रिपार्श्व में होकर जाने देने से प्रथक किये जा सकते हैं। इस प्रथक् करण द्वारा इन्द्र धनुष के रंगों जैसी एक रंगीन पट्टी बन जाती है। इस रंगीन पट्टी को वर्णपट * कहते हैं। कपड़े का टुकड़ा, काग़ज, लकड़ी

* Spectrum

प्रभृति असमान धरातल* वाले पदार्थ प्रकाश को परिक्षिप्त करते हैं, अथवा उसकी किरणों को इधर उधर बिखेर देते हैं। इससे प्रकाश के वास्तविक गुणों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हां यदि सफेद प्रकाश रंगीन कपड़े, रंगीन कागज अथवा ऐसी ही किसी और रंगीन चीज़ पर पड़ता है तो वह रंगीन पदार्थ वर्णपट के कुछ रंगों का शोषण कर लेता है और शेष भाग बिखर जाता है। आम तौर पर प्रकाश के रंग में केवल ऊपरी परिवर्त्तन† होता है, वास्तविक नहीं। यह बात बिखरे हुए (परिक्षिप्त) प्रकाश के वर्णपट और साधारण श्वेत प्रकाश के वर्णपट के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। दोनों ही वर्णपटों में कोई विशेष अन्तर नहीं देख पड़ता। हां रंगीन पदार्थ से बिखर कर आने वाले प्रकाश के वर्णपट में उसके रंग के अनुसार कुछ रंग बिलकुल गायब हो जाते हैं और कुछ हलके पड़ जाते हैं। अपारदर्शक पदार्थों द्वारा प्रकाश के इस साधारण परिक्षेपण में कोई नया रंग नहीं पैदा होता। परन्तु पानी जैसे पारदर्शक पदार्थ द्वारा परिक्षिप्त प्रकाश में उन्हें सर्वथा नवीन रंग दृष्टिगोचर हुए।

इन प्रयोगों के आधार पर आप इस नवीन निष्कर्ष पर पहुंचे कि परिक्षिप्त होते समय प्रकाश के रंगों में भी परिवर्त्तन हो जाता है। ऐसी कुछ घटनाओं को अपने प्रयोगों में देखा भी था। परन्तु १९२७ में आप इस परिणाम पर पहुंचे कि उपरोक्त घटनायें सार्वभौमिक हैं और बहुत

---

* Rough surface.

† Apparent change.

से रसायनिक द्रवों द्वारा प्रदर्शित होने वाली प्राप्ति * से सर्वथाभिन्न है। १९२८ ई० में आपने पारद दीप † के एक रंग के प्रकाश से जो प्रयोग किये उनसे आपकी धारणाओं की पूरी तौर पर पुष्टि हो गई।

साधारण श्वेत प्रकाश के कई रंगों से मिलकर बने होने के कारण इन प्रयोगों में जान बूझकर केवल एक ही रंग के प्रकाश को काम में लाया गया। एक ही वर्ण के प्रकाश को विभिन्न पारदर्शक एवं अस्फुट दर्शक ‡ पदार्थों में होकर जाने दिया गया और इस प्रकाश का पदार्थ के अन्दर जाने से पहिले व पदार्थ से निकलने के बाद वर्णपट दर्शक + के त्रिपार्श्व द्वारा भली भाँति अध्ययन किया गया। अनुशीलन से पता चला कि दोनों वर्णपटों में बहुत अन्तर है।

परिक्षिप्त प्रकाश के वर्णपट में मूल प्रकाश के वर्णपट से कुछ अधिक रंगों अथवा किरणों की उपस्थिति पाई गई। [एक रंग के प्रकाश से एक ही प्रकार की किरणों का बोध होता है] वास्तव में परिक्षिप्त प्रकाश में नवीन किरणें अथवा रंग उस पदार्थ के अणुओं ही की क्रिया से उत्पन्न होते हैं। जब अणु प्रकाश को परिक्षिप्त करते अथवा बिखेरते हैं उस समय मूल प्रकाश में परिवर्त्तन हो जाता है। नवीन किरणों की उपस्थिति द्वारा यही परिवर्त्तन दृष्टि गोचर होता है।

---

* Fluor.scence.

† Mercury lamp.

‡ Translucent.

+ Spectroscope.

और हृदय धड़कता रहे, तो फुस्फुस में वायु-संचार करने का उद्योग अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य नदी इत्यादि में डूब जाते हैं, उनमें से कुछ आध घंटे व एक घंटे तक कृत्रिम श्वसन करने से बचाये जा सकते हैं। कभी-कभी बच्चा जब गर्भाशय के बाहर आता है, तो उसका श्वास नहीं चलता, श्वासावरोध के सारे चिह्न उसके चेहरे पर अंकित होते हैं। किंतु कुछ समय तक उसके फुस्फुस में श्वास-संचार करने के प्रयत्न से बहुधा बच्चा ठीक हो जाता है और उसका श्वास चलने लगता है।

जिसकी मृत्यु श्वासावरोध से हो, उसको कृत्रिम श्वसन के द्वारा पुनर्जीवित करने का उद्योग अवश्य करना चाहिए।

कृत्रिम श्वास-क्रिया की विधि — कृत्रिम श्वसन कई प्रकार से किया जाता है। इसका सिद्धांत यह है कि एक बार फुस्फुस में वायु का प्रवेश कराना चाहिए और दूसरी बार उसको निकाल देना चाहिए। एक विधि के अनुसार एक मनुष्य उस मनुष्य के, जिस पर श्वसन क्रिया करनी है, सिर की ओर खड़ा होता है और दोनों बाहुओं को पकड़कर जितना भी सिर की ओर खींच सकता है, खींचता है। ऐसा करने से वक्ष चौड़ा होता है। अतएव फुस्फुस भी फैलते हैं और उनके भीतर वायु जाती है। फिर वह मनुष्य बाहुओं को पूर्णतया ऊपर खींचने के पश्चात् फिर उनको वक्ष की ओर लाता है और वक्ष पर रखकर अपने सारे शरीर के भार से उनको वक्ष पर दबाता है। ऐसा करने से वक्ष दबता है और फुस्फुस के भीतर की वायु बाहर निकलती है। इसी प्रकार बार-बार क्रिया की जाती है।

दूसरी विधि प्रोफेसर शेफर की है। मनुष्य को पृथ्वी पर उलटा लिटा दिया जाता है, उसके नीचे कंबल इत्यादि रहते हैं, जिससे

में प्रकाशित होते ही बहुत से वैज्ञानिकों ने उनके आधार पर स्वतंत्र अनुसन्धान कार्य आरम्भ कर दिये। थोड़े ही दिनों में संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में रामन्-प्रभाव का विशद अध्ययन आरम्भ हो गया। इस अन्वेषण में वैज्ञानिकों ने कितनी अधिक अभिरुचि प्रकट की, इसका अनुमान केवल इस बात से लगाया जा सकता है कि अन्वेषण सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशित होने के दस वर्षों के अन्दर इसके बारे में विभिन्न देशों में प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने अपने स्वतंत्र अनुसन्धानों के विवरण १७०० से अधिक खोज निबन्धों के रूप में प्रकाशित कराये। और यह क्रम अभी तक बराबर जारी है। संसार की विभिन्न प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं में बराबर ही रामन् प्रभाव के बारे में नवीन अनुसन्धान कार्यों के विवरण प्रकाशित होते रहते हैं। इन निबन्धों के रूप में मानव ज्ञान भण्डार में जो महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है उसका संक्षिप्त वर्णन करना भी यहां सम्भव नहीं है। 'रामन् प्रभाव' के अन्वेषण द्वारा आचार्य रामन् ने वैज्ञानिकों को अनुसन्धान के लिए नवीन कार्य क्षेत्र बताने के साथ ही कई प्रचलित सिद्धान्तों के प्रबल प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। प्रकाश के सुप्रसिद्ध कणिका सिद्धान्त* कि प्रकाश की किरणें अत्यन्त सूक्ष्म कणों से मिलकर बनती हैं, का रामन् प्रभाव प्रबल समर्थक है। इस सिद्धान्त के समर्थन के साथ ही रामन् प्रभाव ने आधुनिक विज्ञान की अनेक गूढ़ गुत्थियां सुलझाने में भी सफलता प्राप्त की है और भौतिक एवं रसायन विज्ञानों को एक नवीन ढंग से मिलाया है।

---

* Corpscular Theory of Light.

आपके वैज्ञानिक कार्यों की इति श्री रामन् प्रभाव ही से नहीं हो जाती। नोबल पुरस्कार प्राप्त करके यूरोप से वापस आने के बाद आपने और भी अनेक मौलिक अनुसन्धान किये हैं और यह क्रम अभी तक अनवरत रूप से जारी है। प्रकाश की सारभूत अथवा मूल प्रकृति* की खोज करने में आप विशेष अभिरुचि ले रहे हैं।

आजकल यह बात साधारणतया सभी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक गति शील कण† के समान प्रकाश में भी शक्ति‡ और आवेग+ दोनों ही गुण होते हैं। प्रकाश के ताप और यांत्रिक गति/ में परिवर्तित हो सकने से यह सिद्ध होता है कि प्रकाश में शक्ति होती है। प्रकाश में आवेग की उपस्थिति भी प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुकी है। प्रकाश जिस पदार्थ पर गिर कर परिवर्तित|| होता है अथवा सोख लिया जाता है,△ उस पर दबाव डालता है। दबाव का पड़ना प्रकाश में आवेग की उपस्थिति सिद्ध करता है। प्रकाश के ये दोनों गुण तरंग-गति∠ और कणिका सिद्धान्त दोनों ही का समर्थन करते हैं। परन्तु आचार्य रामन् ने अपने शिष्य डा० भागवन्तम् के साथ अनुसन्धान करके निश्चय किया है कि प्रकाश में एक तीसरा गुण भी है। आपका

---

* Fundamental nature.

† Moving Particle   ‡ Energy.

+ Momentum.   / Mechanical Motion.

|| Reflect.   △ Absorb.

∠ Wave Motion.

कहना है कि प्रकाश में वह कण विद्यमान हैं जो शक्ति, आवेग और तन्तु गुण* युक्त हैं।

इधर कई वर्षों से आपकी देखरेख में औद्योगिक अनुसन्धान कार्य भी होने लगा है। औद्योगिक सन्धानों का श्रीगणेश आपने कलकत्ते के साइंस एसोसिएशन की प्रयोगशालाओं ही में कर दिया था। एसोसिएशन की प्रयोगशाला में किये जाने वाले कई अनुसन्धान केवल सैद्धान्तिक ही नहीं वरन् व्यवहारिक महत्व के भी सिद्ध हो चुके हैं।

आज कल आप सरकार के अनुरोध से कलकत्ता विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करके बंगलोर की सुविख्यात इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस में अनुसन्धान कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं। यह संस्था भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं में अग्रगण्य है और अपने ढंग की अकेली है। वैज्ञानिक शोध सम्बन्धी कार्य करने वाली सर्व श्रेष्ठ भारतीय संस्था समझी जाती है। १९३२ से लेकर १९३७ तक आप इस संस्था के डाइरेक्टर भी रह चुके हैं। यहाँ भी भारत के विभिन्न प्रान्तों के अनेक विद्यार्थी आपके नेतृत्व में अन्वेषण कार्य में संलग्न हैं।

अन्य महत्वपूर्ण सेवायें

स्वयं महत्वपूर्ण सन्धान करने और अपने विद्यार्थियों को मौलिक अनुसन्धान करने को प्रेरित करने के अतिरिक्त आपने विज्ञान की ओर भी बहुमूल्य सेवायें की हैं। लगातार १५ वर्ष तक १९१७–३१ तक आप कलकत्ते के साइंस एसोसियेशन के अवैतनिक मंत्री रहे हैं।

---

* Spin.

इस बीच में एसोसिएशन में सन्धान कार्य का नेतृत्व करने के साथ ही आपने उसकी आर्थिक स्थिति को भी दृढ़ बनाने के उल्लेखनीय प्रयत्न किये। अपने व्यक्तिगत प्रभाव से सरकारी और ग़ैर सरकारी साधनों से ढाई लाख रुपया इकट्ठा करके एसोसिएशन को दिये। एसोसिएशन के तत्वावधान में आपने 'इंडियन जरनल आफ फिज़िक्स' के प्रकाशन का सफल आयोजन किया। यह पत्र आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है और विज्ञान के प्रतिष्ठित पत्रों में समझा जाता है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के साइंस विभाग के डीन पद पर काम करते हुए आपने विश्वविद्यालय और उससे सम्बन्ध रखने वाले कालेजों में दी जाने वाली विज्ञान की शिक्षा की काया पलट दी और विश्व-विद्यालय के समस्त स्कूलों में प्रारम्भिक विज्ञान की शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उल्लेखनीय प्रयत्न किये। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के संगठन और संचालन में भी आपका बहुत कुछ हाथ रहा है और अब भी है। कई वर्ष तक लगातार आप इस संस्था के प्रधान मंत्री का काम करते रहे और कांग्रेस के संगठन को सुदृढ़ एवं उपयोगी बनाने की जी तोड़ कोशिश की। बंगलोर की साइंस इंस्टीट्यूट में तो आप वहाँ जाने से बहुत पहिले ही से दिलचस्पी लेते रहते थे। इस संस्था के डाइरेक्टर नियुक्त किये जाने के बहुत पहिले ही से आप इसकी कौंसिल के सदस्य मनोनीत किये जा चुके थे और बराबर समय समय पर स्वयं बंगलोर जाकर संस्था के प्रबन्ध एवं अन्वेषण कार्य के बारे में बहुमूल्य परामर्श देते थे। जब से आप वहाँ गये हैं संस्था में कई महत्वपूर्ण परिवर्त्तन करा चुके हैं। सुयोग्य छात्रों के लिए आपने छात्रवृत्तियों का भी उचित प्रबन्ध कराया

है। इस संस्था की प्रबन्ध एवं व्यवस्था सम्बन्धी जाँच परताल के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त इर्विन कमेटी की सलाह के अनुसार आप डाइरेक्टरी पद से अलग होकर विगत ४—५ वर्षों से अपना सारा समय अन्वेषण कार्य में लगा रहे हैं।

विज्ञान के कार्यक्षेत्र में पदार्पण करते समय ही से आचार्य रामन् की यह हार्दिक अभिलाषा रही है कि भारत को भी विज्ञान संसार में प्रमुख स्थान प्राप्त हो। अपनी इस महत् अभिलाषा की पूर्ति के लिए आपने यथेष्ट प्रयत्न भी किये हैं और स्थान स्थान पर स्वतंत्र अन्वेषण-शालायें स्थापित कराने में तथा विश्वविद्यालयों एवं अन्य वैज्ञानिक संस्थाओं की देख रेख में बहुमूल्य वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य कराने में सफलता प्राप्त की है। कलकत्ते के साइंस एसोसिएशन को सुदृढ़ बनाना तथा उसके तत्वावधान में भौतिक विज्ञान के आचार्य की नियुक्ति कराना आप ही का काम है। आज कल इस पद पर आपके सुयोग्य शिष्य डा० के० एस० कृष्णन् कार्य कर रहे हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त आपने आन्ध्र विश्वविद्यालय की उन्नति तथा वाल्टेयर में साइंस और टेकनालोजी कालेज की स्थापना एवं विकास के लिए भी उल्लेखनीय प्रयत्न किये हैं। बंगलोर पहुंचने के थोड़े ही समय बाद १६३४ में आपने इंडियन एकेडेमी आफ साइंस नामक एक नवीन संस्था की स्थापना की। इस संस्था की ओर से विज्ञान के प्रचार और प्रसार के बहुमूल्य कार्य हो रहे हैं। प्रतिमास इसके कार्य विवरण नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं। भारत में स्थान स्थान पर जो नवीन अन्वेषण कार्य हो रहे हैं उनका भी ब्योरेवार वर्णन इस एकेडेमी की ओर के प्रकाशित

होता रहता है। आपकी प्रेरणा से बंगलोर से अँग्रेजी में 'करैंट साइन्स' नामक एक वैज्ञानिक पत्रिका भी विगत कई वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका ने अपने थोड़े ही से कार्यकाल में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है और भारत में होने वाले वैज्ञानिक कार्यों का विवरण देश विदेश में पहुंचाने वाली प्रामाणिक पत्रिका समझी जाती है।

देश विदेशों में सम्मान

अपनी महत्वपूर्ण विज्ञान-साधना और सेवाओं के लिए आपको स्वदेश ही में नहीं वरन् संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में यथेष्ट यश और सम्मान मिला है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में ३-४ वर्ष काम करने के बाद १९२१ में विश्वविद्यालय की ओर से आप आक्सफोर्ड में होने वाली ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में सम्मिलित हुए। यह आपकी पहली विदेश यात्रा थी। १९२२ ई० में विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने आपकी बहुमूल्य विज्ञान सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको डी० एस-सी० की सम्मानित उपाधि प्रदान की। इसी बीच आपकी ख्याति विदेशों में भी पहुंच गई और उत्कृष्ट विदेशी विद्वान् आपके कार्यों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। २ वर्ष के बाद फरवरी १९२४ ई० में लन्दन की विश्वविख्यात विज्ञान संस्था रायलसोसाइटी ने आपको अपना फैलो मनोनीत किया। उस समय तक भारतीय वैज्ञानिकों को विदेशों में मिलने वाला यह सब से बड़ा सम्मान समझा जाता था और आपसे पहिले श्री निवास रामानुजन् तथा विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु ही केवल ऐसे दो वैज्ञानिक थे जो यह सम्मान पाने

का सौभाग्य प्राप्त कर चुके थे। अब भी केवल इने गिने कुल ७ भारतीय वैज्ञानिक इस संस्था के फैलो मनोनीत किये गये हैं। परन्तु डा० रामन् की विज्ञान सेवाओं के उपलक्ष्य में दिये जाने वाले सम्मानों का तो यह श्री गणेश मात्र था। शीघ्र ही संसार भर से आपको और भी अधिक महत्वपूर्ण सम्मान और उपाधियां प्राप्त हुईं। धीरे धीरे आप संसार भर में प्रसिद्ध हो गये और आज दिन आपकी गणना संसार के इने गिने सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में की जाती है। आपको समय समय पर जो सम्मान प्राप्त हुए हैं उनकी महत्ता का अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है।

रायल सोसाइटी के फैलो	१६२४
इटली की विज्ञान परिषत का मेय्यूसी पदक	१६२८
इंडियन मेथेमेटिकल सोसाइटी के आनरेरी फैलो	१६२६
ब्रिटिश सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि	१६२६
ज्यूरिच की फिज़ीकल सोसाइटी के आनरेरी फैलो	१६३०
रायल सोसाइटी लन्दन का ह्यूजेज़ पदक	१६३०
भौतिक विज्ञान में नोबल पुरस्कार	१६३०
ग्लासगो विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०	१६३०
फ्री बर्ग विश्वविद्यालय के सम्मानित पी० एच० डी०	१६३०
पेरिस विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०	१६३०
बम्बई विश्वविद्यालय के सम्मानित एल- एल० डी०	१६३१
काशी विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०	१६३२
मद्रास विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०	१६३२

ढाका विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०

फिलेडेल्फिया (अमेरिका) की फ्रेंकलिन इंस्टिट्यूट का फ्रेंकलिन पदक १९४१

इनके अतिरिक्त आप संसार की अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं के सम्मानित सदस्य एवं आनरेरी फैलो भी हैं। इनमें कुछ के नाम यहाँ दिये जाते हैं:- रायल फिलासफिकल सोसाइटी, ग्लासगो, रायलआयरिश एकेडेमी, ज्यूरिच फ़ज़ीकल सोसाइटी, ड्यूटशे एकेडेमी आफ म्यूनिक, हंगेरियन एकेडेमी आफ साइंसेज़, इंडियनमैथेमेटिकल सोसाइटी, इंडियन केमिकल सोसाइटी नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंस इंडिया, और इंडियन साइंस कॉंग्रेस आदि आदि।

वास्तव में उपरोक्त संस्थाओं ने सर रामन् की विज्ञान सेवाओं को स्वीकार करके और उन्हें सम्मानित करके स्वयं अपने आपको गौरवान्वित किया है।

विदेश यात्रायें

रायल सोसाइटी के फैलो निर्वाचित होने के बाद विज्ञान संसार में आपकी प्रतिभा की धूम मच गई, और विदेशों की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थायें और विश्वविद्यालय आपको अपने यहाँ भाषण देने के लिए आग्रह पूर्वक आमंत्रित करने लगे। १९२४ में आप दुबारा विलायत गये। सर्व प्रथम लन्दन की रायल सोसाइटी के अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वहाँ आप तीन सप्ताह ठहरे। इस बीच आप का अधिकांश समय लन्दन की सुप्रसिद्ध डेवी-फैराडे-विज्ञानशाला में व्यतीत होता था। रायल सोसाइटी के

उसको इसी दाँत की सहायता से काटना होता है। इसके पीछे जो दाँत होते हैं उनका काम चबाने का है। इनमें भी दो प्रकार के दांत होते हैं। सबसे पीछे की दो डाढें बड़ी और चौड़ी होती हैं किंतु उनके आगे की तीन डाढें छोटी होती हैं। इन दोनों प्रकार के डाढ़ों की बनावट भी कुछ भिन्न होती है।

चित्र नं० ६३—दाँत की आन्तरिक रचना—लंबाई की ओर से लिया हुआ परिच्छेद।
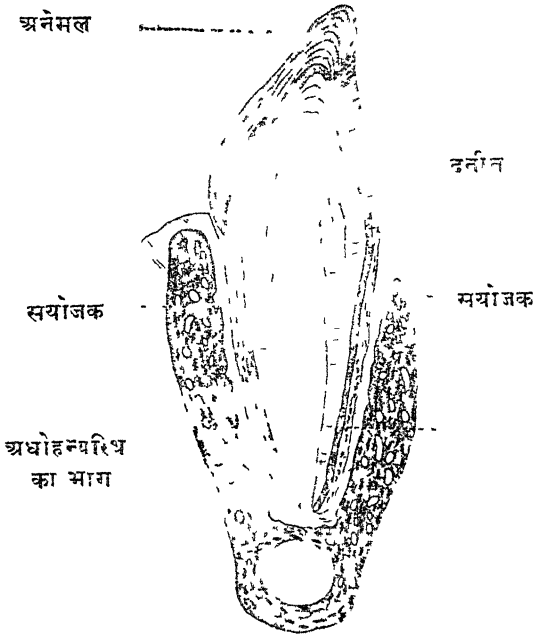
इस प्रकार हमारे मुख में ३२ दांत होते हैं। यदि हम

से अमेरिका में आपकी धूम मच गई और प्रतिष्ठित अमेरिकनों ने व्यक्तिगत रूप से तथा अमेरिकन संस्थाओं ने सार्वजनिक सभायें करके आप का अभिनन्दन किया।

अमेरिका में गणित काँग्रेस के अवसर पर आपसे रूस की-विज्ञान परिषद् के प्रतिनिधियों ने रूस आने का वचन ले लिया था। उस अवसर पर तो आप रूस न पहुंच सके परन्तु तीसरी बार विदेश यात्रा के मौके पर रूस भी गए। अमेरिका से फिर इंगलैन्ड वापस आकर आप नार्वे गये और वहाँ से यूरोप के प्रमुख प्रमुख नगरों की यात्रा की। बर्लिन में आप विश्वविख्यात वैज्ञानिक नील्सबोहर से मिले और उनकी प्रयोगशाला में कार्य करने वाले अपने शिष्य डा० विधुभूषण राय के कार्य का निरीक्षण किया। इस तरह लगभग दस मास विदेशों में रहने के बाद यथेष्ट यश और कीर्ति उपार्जित करके १८ मार्च १९२५ को आप भारत वापस आये।

समस्त संसार के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों एवं विद्वज्जनों द्वारा यथेष्ट रूप से सम्मानित किये जाने के बाद, भारत सरकार को भी अपनी प्रतिष्ठा के लिए आपको सम्मानित करने की फिकर हुई। ३ जून १९२९ को सम्राट के जन्म दिवस पर आप को 'सर' की उपाधि प्रदान की गई। उस अवसर पर आपको देश भर में बधाइयाँ दी गई। कई क्लबों, समाजों और संस्थाओं ने आपका अभिनन्दन किया। कलकत्ते के दक्षिणभारत क्लब के अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए आपने सरकारी उपाधियों के खोखलेपन पर समुचित प्रकाश डाला और बतलाया कि एक सच्चे वैज्ञानिक के लिए इस प्रकार की उपाधियों का विशेष महत्व नहीं है। सच्चे वैज्ञानिक को तो केवल काम करने ही में आनन्द आता है। उसे कभी अपने काम के

उपलक्ष्य में सम्मान अथवा उपहार पाने की अभिलाषा नहीं होती। उपाधि, उपहार अथवा सम्मान प्राप्त करना उसके जीवन में एक अत्यन्त गौण सी बात है।

सर वेङ्कट रामन् की असाधारण प्रतिभा के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए भारत के अधिकांश विश्वविद्यालय आपको आनरेरी उपाधियां प्रदान कर चुके हैं। कई विश्वविद्यालय आपको अपने उपाधिवितरण उत्सवों पर दीक्षान्त भाषण देने को आमंत्रित कर चुके हैं। भारत ही नहीं विदेशों के भी बहुत से विश्वविद्यालयों और प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको साग्रह आमंत्रित कर आदर सत्कार किया है। इनमें से कुछ संस्थाओं के नाम यहाँ दिये जाते हैं:— 'ब्रिटिश एसोसिएशन फार दि एडवांसमेंट आफ सांइस, फैराडे सोसाइटी, इंगलैंड, फ्रांस, बेलजियम, डेनमार्क और स्वीज़रलैंड की फिजीकल सोसाइटीज़ (भौतिक विज्ञान परिषदें) कनाडा की रायल इन्स्टिट्यूट, अन्तर्राष्ट्रीय गणित कांग्रेस, मेंडलीफ की रसायन कांग्रेस; लन्दन, केम्ब्रिज, एडिनबरा, ग्लासगो, पेरिस, म्यूनिक, आचेन, फ्रीबर्ग, स्टाकहोम, उपसाला, गोटबर्ग, ओसलो, लेनिनग्राड, और टारेन्टो, प्रभृति स्थानों के विश्वविद्यालय। भारत के तो प्रायः सभी विश्वविद्यालय आपकी व्याख्यान मालाओं का लाभ उठा चुके हैं। १६२६ में आप विज्ञान कांग्रेस के सभापति भी निर्वाचित किये गये थे।

ह्यूजेज़ पदक

नवम्बर १६३० में लन्दन की सुप्रसिद्ध रायल सोसाइटी ने आपके वैज्ञानिक कार्यों के उपलक्ष्य में आपको ह्यूजेज़ स्वर्ण पदक प्रदान किया।

रायल सोसइटी जब किसी वैज्ञानिक के प्रति उसकी विज्ञानसाधना के लिए सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्रकट करना चाहती है तो इस पदक को प्रदान करती है। इससे पहिले और बाद में भी अभी तक और किसी भारतीय वैज्ञानिक को इस पदक को प्राप्त करने का गौरव नहीं मिल सका है।

नोबल पुरस्कार

ह्यूजेज़ पदक प्रदान किये जाने का समाचार मिले हुए एक सप्ताह भी न बीत पाया था कि स्टाकहोम से आपको रामन् प्रभाव के आविष्कार के उपलक्ष्य में भौतिक विज्ञान के नोबलपुरस्कार दिये जाने की घोषणा प्रकाशित हुई। इस समाचार के प्राप्त होते ही सारे देश में असाधारण आनन्द और हर्ष प्रकट किया गया। भारत की समस्त शिक्षा संस्थाओं, सभा सोसाइटियों, विज्ञान परिषदों और विश्वविद्यालयों ने अपने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक को इस उचित सम्मान प्राप्ति के अवसर पर हार्दिक बधाइयाँ दीं और आनन्द उत्सव मनाये। भारत ही नहीं एशिया भर में आप पहिले वैज्ञानिक हैं जिन्हें उस समय तक और उसके बाद आज तक यह विश्वविख्यात उत्कृष्ट पुरस्कार पाने का गौरव प्राप्त हुआ है। भारत में सर रामन् के पहिले विश्वकवि रवीन्द्रनाथ को साहित्य में यह पुरस्कार प्रदान किया जाचुका था।

यह पुरस्कार प्रख्यात स्वेडिश वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबल द्वारा प्रदान किये गए कोष से प्रति वर्ष संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों को दिया जाता है। अल्फ्रेड नोबल ने अपने आविष्कारों से, जिनमें डाइनेमाइट, बिना धुएं की बारूद तथा नकली रबड़ बनाने की विधियाँ विशेष उल्लेखनीय

आमाशय, पक्वाशय इत्यादि। आमाशय के अंतिम भाग और पक्वाशय के प्रारंभिक भाग की सामने की भित्ति काटकर दोनों भागों के बीच का द्वार दिखाया गया है।
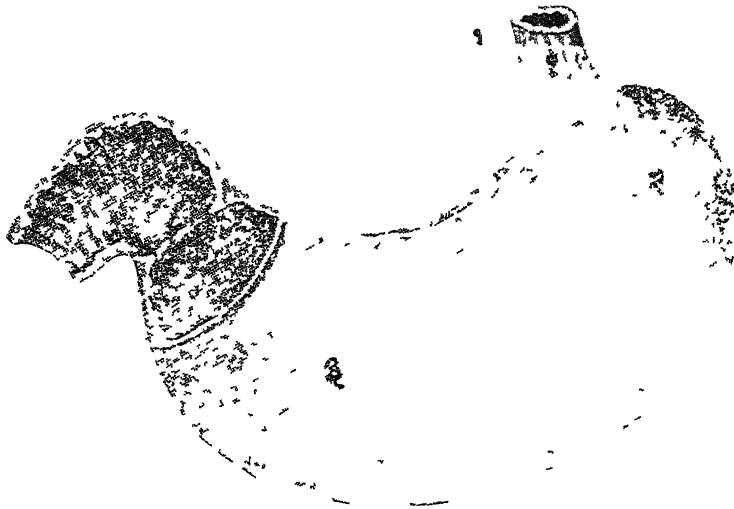
१ अन्न-प्रणाली का अन्तिम भाग, जिसके द्वारा भोजन मुख से आमाशय में पहुँचता है। २, ३ आमाशय के मध्यभाग और दक्षिणांश भाग। ४ पक्वाशय। ५ पक्वाशय और आमाशय के बीच का द्वार।

ग्लासगो से भारत वापस आते समय आप फ्रांस, स्वीज़रलैंड, इटली और सिसली प्रभृति देशों में भी गये। फ्रांस के प्रमुख विश्वविद्यालय ने आप को अपने देश की सर्वश्रेष्ठ उपाधि प्रदान की। इस यात्रा में आप जहां भी गये अपने लिए यश और कीर्ति अर्जित करने के साथ ही भारत का यश भी दिगदिगन्त में फैला दिया।

फ्रैंकलिन पदक

नोबल पुरस्कार के बाद तो आपको मिलने वाली उपाधियों और सम्मानों का ताँता सा लग गया। इनका संक्षिप्त विवरण पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। मार्च १९४१ में—आपको अमेरिका का सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक पुरस्कार—फ्रैंकलिन पदक देने की घोषणा की गई है। यह पदक अमेरिका की सुविख्यात फ्रैंकलिन इंस्टिट्यूट (फिलेडल्फिया) द्वारा केवल कुछ इनगिने महान् वैज्ञानिकों ही को सुविख्यात महान् अमेरिकन वैज्ञानिक, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ बेजांमिन फ्रैंकलिन की स्मृति में प्रदान किया जाता है। अभी तक अमेरिका के बाहर के बहुत ही कम वैज्ञानिकों को इस पुरस्कार के पाने का गौरव प्राप्त हुआ है। सुविख्यात वैज्ञानिक आयन्स्टीन, डा० मिलिकन और डा० काम्पटन पिछले वर्षों में इस पदक द्वारा पुरस्कृत किये जा चुके हैं। विगत ३० वर्षों में सर रामन् के नेतृत्व में भौतिक विज्ञान सम्बन्धी जो अत्यन्त महत्वपूर्ण, असाधारण प्रतिभाशाली और युगप्रवर्तक कार्य हुए हैं उनके उपलक्ष्य में फ्रैंकलिन इंस्टिट्यूट ने सर्वसम्मति से यह पदक आपको प्रदान करने का निश्चय किया है। इधर हाल में आचार्य

रामन् के नेतृत्व में बंगलोर की विज्ञानशाला में प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी, जो बहुमूल्य कार्य हुए हैं उनसे विज्ञान की कई महत्वपूर्ण समस्याओं के सुलझने की आशा है। इन समस्याओं को सुलझाने में इंगलैंड और अमेरिका के भी कतिपय श्रेष्ठ वैज्ञानिक संलग्न हैं। डा० रामन् को उन सब की अपेक्षा अब तक कहीं अधिक सफलता मिल चुकी है।

जन्मजात वैज्ञानिक

सर वेङ्कट रामन् वास्तव में जन्मजात वैज्ञानिक हैं। आपने अपनी अन्तःप्रेरणा ही से विज्ञान साधना आरम्भ की। वैज्ञानिक अनुसन्धान आरम्भ करने के समय से लेकर आज तक सर रामन् के जीवन में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विशेष उल्लेखनीय बात है। वैज्ञानिक अनुसन्धान आरम्भ करते समय उन्हें न तो किसी से इस कार्य के लिए प्रेरणा ही मिली और न उल्लेखनीय सहायता ही। अपने व्यक्तिगत परिश्रम, अध्यवसाय, उत्साह और प्रतिभा ही के बल आप आज इतने महान् वैज्ञानिक हो सके हैं। इन प्रयत्नों में आपकी शिष्य मण्डली से अलबत्ता आप को बराबर समुचित सहायता मिलती रही है। आचार्य रामन् ने कभी किसी विदेशी प्रयोग शाला में वैज्ञानिक अनुसन्धान करने की शिक्षा नहीं पाई और न विज्ञान के किसी महान् आचार्य के पास बैठकर वैज्ञानिक अनुसन्धान करने ही की प्रेरणा प्राप्त की। फिर भी स्वयं असाधारण महत्व के अनुसन्धान और अन्वेषण करने के साथ ही जिस अद्वितीय योग्यता के साथ अनुसन्धान कार्य का संचालन और संगठन किया है और अब भी कर रहे हैं, तथा देश

के सैकड़ों नवयुवकों को वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य के लिए जो प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान की है वह आपकी मौलिक प्रतिभा एवं जन्मजात वैज्ञानिक होने के प्रबल प्रमाण हैं। विज्ञान संसार में यथेष्ट ख्याति अर्जित कर लेने के बाद, एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक की हैसियत से विदेशों की यात्रा करने वाले आप एक मात्र भारतीय हैं। इन विदेश यात्राओं से आपने अपने प्रौढ़ ज्ञान को प्रौढ़तर बनाया है तथा जहां जहां गये हैं तथा जिन महान् वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आये हैं उन पर अपनी महत्ता और उसके साथ ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता की छाप छोड़ आये है।

विज्ञान के अतिरिक्त आप इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि के भी पण्डित हैं और अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बराबर जागरूक रहते हैं। भारत की कई भाषाओं के साथही आपको यूरोप की भी कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। आप के समान आपकी पत्नी भी भारत की ८--१० भाषाओं को जानती हैं और बीणा बजाने में विशेष पटु हैं।

इतने महान् वैज्ञानिक होते हुए भी आपकी विनम्रता और सादगी में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यश कीर्ति तथा सम्मानों के साथ ही साथ आपकी नम्रता भी बढ़ती ही गई है। आपकी साधारण, नियमित एवं संयमपूर्ण दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। आज दिन भी आप अपना जीवन विशुद्ध भारतीय विद्वानों ही के समान बड़ी सादगी से व्यतीत करते हैं और दिन रात विज्ञान साधना में एक तपस्वी की भाँति लगे रहते हैं।

आमाशय में फैलने की शक्ति बहुत होती है। जिस समय इस-में कुछ भोजन नहीं होता, उस समय इसकी भित्तियाँ आपस में मिली रहती हैं। किंतु जब यह भोजन से भर जाता है, तब फैलता है। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक भोजन कर सकते हैं। उनके आमाशयों में अधिक स्थान होता है। कुछ मनुष्यों का व्यवसाय ही भोजन करने का होता है। उनके आमाशय बहुत अधिक फैले हुए मिलते हैं; किंतु उनमें वह शक्ति नहीं होती, जो एक साधारण स्वस्थ मनुष्य के आमाशय में होनी चाहिए।

दूसरी ओर जहाँ आमाशय समाप्त होता है और क्षुद्र अंत्रियों का वह भाग, जो पक्काशय कहलाता है, आरंभ होता है, वहाँ भी एक छिद्र रहता है, जिसके चारों ओर पेशियाँ रहती हैं। ये पेशी संकुचित होकर इस छिद्र को बंद कर देती हैं, जिससे प्रत्येक समय भोजन आमाशय से पक्काशय में नहीं जा सकता। जब आमाशय में भोजन पक चुकता है, तब यह द्वार खुलता है और भोजन पक्काशय में जाता है।

यदि भीतर से आमाशय को काटकर देखा जाय, तो वहाँ भी विचित्र बनावट दिखाई देगी। भीतर की कला समान नहीं होती, किंतु झालर की भाँति वह सिकुड़ी हुई रहती है। कहीं पर वह उठी रहती है, और कहीं पर फिर नीचे की ओर दब जाती है। इस प्रकार सारे आमाशय में भीतर की ओर बहुत बड़ी और गहरी झुर्रीं पड़ी रहती हैं। कभी-कभी माथे की पेशियों को सिको-ड़ने से वहाँ के चर्म में सिकुड़न पड़ जाती है। यदि इन सिकुड़नों को गहरी और बड़ी कल्पना कर लें, तो हम आमाशय के भीतर की कला के सिकुड़नों की कल्पना कर सकते हैं।

आमाशय की दीवारों में वे ग्रंथियाँ रहती हैं जो आमाशय
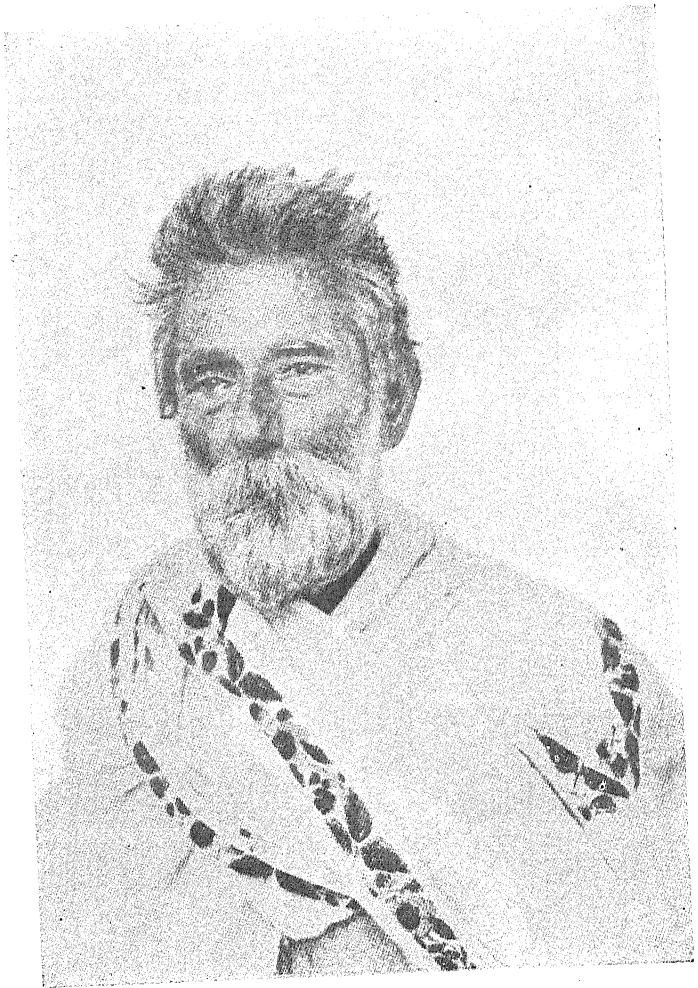
आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय
[जन्म १८६१ ई०]

आचार्य डा० सर प्रफुल्लचन्द्र राय

[जन्म १८६१ ई०]

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का जन्म २ अगस्त १८६१ ई० को बंगाल के खुलना ज़िले में ररूली कतिपरा नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव अब भी कपोवाच्चा नदी के किनारे मौजूद है। आपके पिता श्री हरिश्चन्द्र राय अपने समय के फारसी के अच्छे विद्वानों में गिने जाते थे। वे और उनके पूर्वज कई पीढ़ियों से समाज सेवा के लिए भी प्रसिद्ध थे। श्री हरिश्चन्द्र राय अपने जिले में अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। उन्होंने अपने गाँव में 'माडल स्कूल' भी स्थापित किया था। यह स्कूल अब उन्नति करके हाई स्कूल हो गया है। आचार्य राय अपनी आमदनी का एक अच्छा भाग बराबर इस स्कूल को देते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्रफुल्लचन्द्र राय की शिक्षा उनके पिता के इसी स्कूल में शुरू हुई। श्री हरिश्चन्द्र राय अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने के पक्ष में थे। अतएव गावँ के स्कूल की पढ़ाई के खतम होने के बाद वह १८७० ई० में सपरिवार कलकत्ता जाकर रहने लगे। बालक प्रफुल्लचन्द्र को तत्कालीन सुप्रसिद्ध हेअर स्कूल में दाखिल कराया गया। इस स्कूल में चार साल तक पढ़ने के बाद प्रफुल्लचन्द्र बहुत बीमार हो गये।

पेचिश ने उन्हें बेज़ार कर दिया। इस बीमारी के फलस्वरूप मजबूरन दो साल तक प्रफुल्लचन्द्र की स्कूली पढ़ाई बन्द रखनी पड़ी। परन्तु बीमारी के दिनों में भी वह घर पर चुपचाप न बैठे रह सके। अपने पिता के सत्संग से छुटपन ही से ज्ञानोपार्जन की एक तीव्र उत्कण्ठा उनमें उत्पन्न हो चुकी थी। बीमारी की हालत में अपने पिता के पुस्तकालय की बहुत सी पुस्तकें पढ़ डालीं। इतिहास, भूगोल और साहित्य सभी विषयों की पुस्तकें पढ़ीं। इससे उनको बँगला साहित्य के साथ ही अँग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान हो गया। गोल्डस्मिथ और एडिसन की रचनायें उनको विशेष प्रिय होगईं।

स्वस्थ होने पर प्रफुल्लचन्द्र को एलबर्ट स्कूल में दाखिल कराया गया। वहाँ अपनी प्रतिभा से स्कूल के हेडमास्टर श्री कृष्णबिहारी सेन को बहुत जल्दी मुग्ध कर लिया। उनके सम्पर्क में रह कर आप अँग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन में और अधिक रुचि लेने लगे। इस स्कूल में पढ़ते हुए आपको केशवचन्द्र सेन, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्द मोहन बसु प्रभृति नेताओं के भाषण सुनने के अवसर प्राप्त हुए। इन भाषणों ने आपको बहुत प्रभावित किया और बाल्यकाल ही से आप में स्वदेश प्रेम के भाव भर गये। श्री केशवचन्द्र सेन के भाषणों ने आपको ब्रह्म समाज की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। और आप थोड़े ही दिन बाद ब्रह्म समाज के स्थायी सदस्य बन गये।

कालेज में शिक्षा

१८७९ ई० में इन्ट्रेंस की परीक्षा पास करने के बाद प्रफुल्लचन्द्र कलकत्ते की मेट्रोपालिटन इंस्टिट्यूट में दाखिल हुए और १८८२ ई०

तक इस संस्था में अध्ययन करते रहे। यह संस्था सुप्रसिद्ध शिक्षाविद और समाज सुधारक पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्थापित की थी। इस संस्था में पढ़ते हुए भी वह विद्यासागर कालेज में अध्ययन करने के लिए बड़े उत्सुक रहते थे। उन दिनों सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी विद्यासागर कालेज में पढ़ाया करते थे और प्रफुल्लचन्द्र की सुरेन्द्रनाथ के चरणों में बैठकर उनका शिष्य बनकर पढ़ने की बड़ी अभिलाषा थी। परन्तु विद्यासागर कालेज में प्रवेश न पा सकने पर भी; वह बराबर उनके बर्क सम्बन्धी भाषणों को सुनने जाया करते थे। सुरेन्द्रनाथ द्वारा की गई बर्क की रचनाओं की व्याख्या से प्रफुल्लचन्द्र बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने स्वयं भी बर्क की रचनाओं और खास तौर पर उसकी फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति सम्बन्धी पुस्तक* का गम्भीर अध्ययन किया। इससे उनकी स्कूल जीवन में उत्पन्न होने वाली स्वदेश प्रेम की भावनायें और अधिक दृढ़ एवं सबल हो गईं।

उन दिनों मेट्रोपालिटन इंस्टिट्यूट में विज्ञान की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। प्रफुल्लचन्द्र राय, साहित्य और इतिहास में विशेष दिलचस्पी रखते हुए भी विज्ञान की ओर आकर्षित हो चुके थे। मेट्रोपालिटन कालेज में पढ़ते हुए. विज्ञान का अध्ययन करने प्रेसीडैंसी कालेज जाते थे। प्रेसी-डैंसी कालेज में इन्हें, भौतिक और रसायन के सुप्रसिद्ध विद्वानों—सर जान इलियट और सर एलेकजेन्डर पेडलर के साथ रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। इन विद्वानों के सम्पर्क में आने से आपका विज्ञान प्रेम

---

* Burke-Reflections on the French Revolution.

बहुत बढ़ गया। एलेक्ज़ेन्डर पेडलर की शिक्षा से रसायन विज्ञान के अध्ययन में आप विशेष अभिरुचि लेने लगे। भारत में तब तक विज्ञान की शिक्षा का उचित प्रबन्ध न हो पाया था। अतएव कालेज में पढ़ते समय ही आप विलायत जाकर विज्ञान का अध्ययन करने की आवश्यकता महसूस करने लगे।

गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति

इस बीच में आपके पिता की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई थी। उन पर बहुत अधिक कर्जा हो चुका था और पैतृक जायदाद इसी कर्जे के भुगतान में धीरे धीरे समाप्त होती जा रही थी। विलायत जाना तो बहुत दूर, उनकी सी आर्थिक स्थिति में विलायत जाने का विचार करना भी दुस्तर था। परन्तु तरुण प्रफुल्ल इन आर्थिक कठिनाइयों से तनिक भी न घबराये। इन कठिनाइयों ने आपको प्रोत्साहित ही किया।

उन दिनों विलायत जाकर अध्ययन करने के लिए गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति की प्रतियोगिता परीक्षा होने वाली थी। अपनी बी० ए० की परीक्षा के लिए अध्ययन करते हुए आप ने चुपचाप, घर वालों से छिपा कर, इस परीक्षा में शामिल होने की तैयारी शुरू कर दी। परीक्षा में सारे भारत के छात्र सम्मिलित हुए थे परन्तु सफलता की दौड़ में आप आगे रहे। छात्रवृत्ति आप ही को प्रदान की गई। १८८२ ई० में इस परीक्षा की सफलता के द्वारा आपकी विलायत जाकर अध्ययन करने की अभिलाषा पूरी हुई। शीघ्र ही, आपने इङ्गलैंड के लिए प्रस्थान

किया और अक्टूबर मास में एडिनबरा विश्वविद्यालय में दाखिल हो गये और ६ वर्ष तक वहां अध्ययन करते रहे।

एडिनबरा में अध्ययन

एडिनबरा विश्वविद्यालय में पहुंच कर आपने रसायन और भौतिक विज्ञान के साथ ही वनस्पति विज्ञान और जन्तु विज्ञान का भी अध्ययन आरम्भ किया। वहां आपको भौतिक और रसायन विज्ञान पढ़ाने के लिए क्रमशः पीटर गाथरीटेट और एलेक्ज़ेन्डर क्रम ब्राउन सरीखे उत्कृष्ट आचार्य पाने का सुयोग प्राप्त हुआ। ये दोनों ही विद्वान अपने समय में अपने अपने विषय के ज्ञान में कोई सानी नहीं रखते थे। इतने सुयोग्य आचार्यों के साथ ही आपको भौतिक—रसायन के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० जेम्सवाकर एफ० आर० एस०, स्वर्गीय प्रो० हफ मार्शल तथा रसायन के प्रसिद्ध विद्वान एलेक्ज़ेन्डर स्मिथ सरीखे प्रतिभावान सहपाठी पाने का भी अवसर मिला। इन प्रतिभावान सहपाठियों और ब्राउन सरीखे रसायनाचार्य के सत्संग से प्रफुल्लचन्द्र भी रसायन विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन करने लगे।

'ग़दर के पूर्व और बाद का भारत'

जिन दिनों आप बी० एस-सी० की परीक्षा की तैयारी में लगे हुए थे, एडिनबरा यूनिवर्स्टी के लार्ड रेक्टर ने एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया। निबन्ध का विषय था 'ग़दर के पूर्व और बाद का भारत'। इस निबन्ध प्रतियोगिता से प्रफुल्लचन्द्र राय की इतिहास संबंधी प्रवृत्तियां जैसे पुनः जग गईं। कुछ समय के लिए आपने प्रयोगशाला

की टेस्टट्यूब को अलग रख दिया और जी जान से इस निबन्ध की तैयारी में लग गये। महीनों तक पुस्तकालय में समाधि सी लगाये रहे— निबन्ध को उच्च कोटि का बनाने के लिए आपने इतिहास के साथ ही राजनीति एवं अर्थशास्त्र का भी विशेषरूप से अध्ययन किया।

आपके निबन्ध की निर्णायकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उसे अति उच्च कोटि का बतलाया। परन्तु फिर भी आपको उस पर पारितोषिक न मिल सका। आपने अपने निबन्ध में ब्रिटिश सरकार की तीव्र और अति कटु आलोचना की थी। इस प्रतियोगिता के संयोजक लार्ड डेडलस्तेख जो उस समय एडिनबरा विश्वविद्यालय के लार्डरेक्टर थे, कुछ समय के लिए भारत मंत्री भी रह चुके थे। वे भला कब इस प्रकार के निबन्ध के लिए पारितोषिक प्रदान करने को सहमत हो सकते थे। निर्णायकों के अतिरिक्त और दूसरे विद्वानों ने भी इस लेख की बड़ी प्रशंसा की। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्र 'स्काटास्मैन' ने तो यहां तक लिखा था कि 'भारत के बारे में ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक ही एकमात्र साधन है।'

इस निबन्ध को पूरे करने के बाद श्री राय पुनः विज्ञान के अध्ययन में लग गये और १८८५ ई० में बी० एस-सी० परीक्षा पास की। २ वर्ष के बाद आपने डी० एस-सी० की परीक्षा भी सम्मान पूर्वक पास की। अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता से आपने रसायन विज्ञान में विशेष योग्यता प्रदर्शित करने के उपलक्ष्य में होप छात्रवृत्ति भी पाई। डी० एस-सी० की परीक्षा के लिए उन्होंने जो मौलिक निबन्ध लिखा था उसकी भी निर्णयकों और आप के आचार्यों द्वारा बड़ी प्रशंसा की गई थी। अपना

अध्ययन समाप्त करने के पूर्व ही आप वहां की यूनिवर्स्टी केमिकल सोसाइटी के उपसभापति भी बनाये जा चुके थे।

काला हिन्दुस्तानी

डी० एस-सी० परीक्षा सम्मान पूर्वक उत्तीर्ण कर चुकने के बाद आपने, प्रोफेसरों की सिफारिशी चिट्ठियां और स्वतः दिये गये प्रमाण पत्र आदि लेकर, लन्दन के इण्डिया आफिस में इण्डियन एजुकेशनल सर्विस (आई० ई० एस०) में भर्ती होने की कोशिश की। परन्तु काले हिन्दुस्तानी का अखिल भारतीय सर्विसों में प्रवेश निषिद्ध था और सब भांति सुयोग्य होते हुए भी आपको आपकी योग्यता के अनुकूल कार्य न दिया गया। सर डबल्यू० एम० म्योर तथा सर चार्ल्स बरनार्ड प्रभृति की कोशिशें भी बेकार गईं।

प्रेसिडैंसी कालेज में प्रोफेसर

डी० एस-सी० परीक्षा पास करने के कुछ मास बाद प्रफुल्लचन्द्र कलकत्ता वापस आये। यहां आपको प्रांतीय शिक्षा विभाग में नौकरी प्राप्त करने के लिए पूरे एक साल तक इन्तज़ार करना पड़ा। यह समय आपने प्रो० जगदीशचन्द्र बसु के यहां रसायन सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं के के अध्ययन में बिताया। साल भर के बाद १८८६ ई० में आप प्रेसिडैंसी कालेज में २५०) मासिक पर असिस्टेंट प्रोफेसर नियुक्त किये गये। यहां आप को फिर गोरी ब्रिटिश सरकार की काली भेद नीति का शिकार बनना पड़ा। आपसे कम योग्यता के लोग आपही के कालेज में हजार आठ सौ रुपये तक वेतन पा रहे थे। यह अन्याय आपको असह्य

हो गया। इसके प्रति विरोध प्रकट करने के लिए आप शिक्षा विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर से मिले।

डाइरेक्टर का व्यंग

डाइरेक्टर अंग्रेज था और वह आपके इस उचित विरोध को बरदाश्त न कर सका। उसने व्यंग भरे शब्दों में उत्तर दिया कि यदि आप अपने को इतना योग्य केमिस्ट समझते हैं तो स्वयं कोई व्यवसाय क्यों नहीं चलाते ?

डाक्टर राय इस तीखे व्यंग को न भूल सके। ये शब्द आपको लग गये और उस अँग्रेज डाइरेक्टर का व्यंग का सब से बढ़िया और मुंहतोड़ जवाब "बंगाल केमिकल वर्क्स" के संगठन और संचालन द्वारा दिया। इस कारखाने के बारे में विस्तृत बातें आगे के पृष्ठों में बतलाई जायँगी।

शिक्षा विभाग के इस अन्यायपूर्ण व्यवहार को आपने चुपचाप बड़े धैर्य के साथ बरदाश्त किया और जो कुछ कठिनाइयाँ मार्ग में आईं उनका सामना करते हुए दत्तचित्त होकर विज्ञानसाधना में लग गये।

विज्ञान साधना का सूत्रपात

आपने यूरोप में देखा था कि अध्यापकों की प्रतिष्ठा उनकी नवीन ज्ञान सम्बन्धी उपलब्धियों पर निर्भर होती है, अधिक वेतन या ऊँचे सरकारी ओहदे पर नहीं। जो प्रोफेसर नवीन तथ्यों की खोज में जितना अधिक सफल होता है, वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है।

इस आदर्श को सामने रखकर आपने प्रेसिडेंसी कालेज में अध्यापन कार्य के साथ ही अन्वेषण कार्य का भी सूत्रपात किया। भारत में तब तक अन्वेषण कार्य को तनिक भी महत्व न दिया जाता था और किसी भी विद्यालय में अन्वेषण कार्य के लिए कोई प्रबन्ध न था। आचार्य राय के कुछ ही वर्ष पहले जगदीशचन्द्र वसु की भी नियुक्ति इसी कालेज में हो चुकी थी और उन्हें भी इन्हीं असुविधाओं का सामना करना पड़ा था और शिक्षा-अधिकारियों द्वारा प्रयोगशाला का समुचित प्रबन्ध कराने में पूरे दस वर्ष लगे थे। डा० प्रफुल्लचन्द्र राय ने इन सब कठिनाइयों की तनिक भी चिन्ता न करते हुए भारत में अन्वेषण कार्य का मार्ग प्रशस्त करने का दृढ़ निश्चय किया और अपने विद्यार्थियों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करने लगे।

प्रेसिडेंसी कालेज में आपने स्वयं और अपने शिष्यों से जो अनुसन्धान कार्य कराया, उसका विवरण 'प्रेसिडेंसी कालेज में रसायनिक अनुशीलन कार्य' के नाम से एक स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कराया। इस पुस्तिका के प्रकाशन से संसार को आपकी खोजों का पता लगा और विज्ञान संसार में आप का नाम आदर से लिया जाने लगा। आपकी गणना तत्कालीन अच्छे वैज्ञानिकों में की जाने लगी।

अनुसन्धान और अन्वेषण

डा० राय की सर्व प्रथम खोज पारे और उसके मिश्रण से बने हुए पदार्थों के सम्बन्ध में हुई। पारद नाइट्राइट* नामक पारद यौगिक संसार में सबसे पहले आप ही ने तैयार किया। यह सन् १८९६ ई० की

---

* Mercurous nitrite

बात है। आपकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि का सूत्रपात भी इस अन्वेषण में होता है। आपके इस अन्वेषण की चर्चा करते हुए १८६३ ई० (सर) एलेक्ज़ेंडर पेडलर ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के सभापति पद से भाषण देते हुए कहा था कि "डा० राय ने इस यौगिक को बनाकर पारद के योगिकों का शून्यस्थान भर दिया है।" यूरोप के प्रसिद्ध रसायनिकों में सर हेनरी रास्को और एम० बरथेलो ने फौरन ही आपको इस सफलता के लिये बधाइयाँ भेजी। यूरोप की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं में इसके बारे में कई लेख प्रकाशित हुए। बाद में इस यौगिक की सहायता से आपने अपने शिष्यों के साथ लगभग ८० नये यौगिक और तैयार किये और कई एक महत्वपूर्ण एवं जटिल समस्याओं पर प्रकाश डाला। अमोनियम नाइट्राइट के बारे में भी महत्वपूर्ण सन्धान किये तथा ज़िंक, केडमियम, केल्सियम, स्ट्रांशियम, बेरियम और मेगनिशियम प्रभृति के नाइट्राइट्स के बारे में उपयोगी गवेषणायें कीं। अमाइन* नाइट्राइट्स को उनके विशुद्ध रूप में तैयार करके उनके भौतिक एवं रसायनिक गुणों का पूरा विवरण तैयार किया। उसके बाद से तो आपने रसायनिक विषयों पर अब तक सैंकड़ों मौलिक अन्वेषण निबन्ध देश विदेश के प्रमाणिक वैज्ञानिक पत्रों में प्रकाशित कराये हैं। बाद के वर्षों में आपने आर्गेनोमेटलिक† यौगिकों विशेषकर प्लेटिनम, गंधक और पारद आदि के संयोग से से बनने वाले यौगिकों का विशेष रूप से अध्ययन किया और उनके बारे में कई रोचक एवं उपयोगी तथ्यों क

---

* Amine Nitrites † Organometallic

पता लगाया। पारद, गन्धक और आयोडिन के संयोग से एक नवीन यौगिक* तैयार किया और बतलाया कि प्रकाश में रखने पर इसके रवों का रंग बदल जाता है और अँधेरे में रखे जाने पर फिर मूल रंग वापस आजाता है। संक्षेप में आचार्य राय ने अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानों और अन्वेषणों से यह सिद्ध कर दिया कि भारतवासी आधुनिक विज्ञान के अध्ययन, अनुशीलन और अन्वेषण में किसी भी विदेशी से कम नहीं हैं।

विदेशों में सम्मान

पारद-नाइट्राइट के अन्वेषण से आपकी यूरोप में यथेष्ट ख्याति हो जाने के बाद १६०४ ई० में बंगाल सरकार ने आपको सरकारी खर्चे से यूरोप की विभिन्न रसायनशालाओं के निरीक्षण के लिए भेजा। यूरोप में आप जहाँ भी गये वहाँ के विद्वानों और रसायनिकों ने आपका बड़ा आदर सम्मान किया। प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको अभिनन्दन पत्र समर्पित किये। और अपने अन्वेषण पर भाषण देने के लिए साग्रह आमंत्रित किया। लन्दन की केमिकल सोसाइटी और फ्रांस की एकेडेमी आफ साइंस ने आपके सम्मान में विशेष उत्सवों का आयोजन किया। लन्दन की यह केमिकल सोसाइटी अब आपको अपना सम्मानित फैलो भी बना चुकी है।

हिन्दू रसायन का इतिहास

इन अनुसन्धानों से भी कहीं अधिक प्रसिद्धि आपको अपने सुप्रसिद्ध

---

* I-Hg-S-S-Hg-I

ग्रन्थ 'हिन्दू रसायन का इतिहास' की रचना से मिली। १०-१२ वर्ष तक अध्ययन करने के बाद आचार्य महोदय ने 'हिन्दू रसायन का इतिहास'* नामक ग्रन्थ तैयार किया। इसका प्रथम भाग १६०२ ई० में प्रकाशित हुआ। प्रकाशित होने के दो वर्षों के अन्दर इसके प्रथम दो संस्करण हाथों हाथ बिक गये। प्रथम भाग के प्रकाशित होने के पाँच वर्ष बाद दूसरा भाग भी प्रकाशित हुआ।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ द्वारा आपने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की सहायता से प्राचीन भारतीयों के रसायन ज्ञान की उत्कृष्टता को सिद्ध किया। और अकाट्य प्रमाण देकर बतलाया कि प्राचीन भारत में रसायन की प्रगति आधुनिक प्रगति की टक्कर की थी। इस पुस्तक के प्रकाशित होने से पाश्चात्य विद्वानों में एक तहलका सा मच गया, और प्राचीन भारतीयों के उत्कृष्ट रसायन ज्ञान का परिचय पाकर उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इस पुस्तक ने भारत को रसायन के इतिहास में समुचित स्थान प्रदान किया। विज्ञान के इतिहास के एक अज्ञात किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय को विज्ञान संसार के सम्मुख रखने के लिए पाश्चात्य विद्वानों ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जर्मनी के एक प्रसिद्ध लेखक हरमान शैलेंज ने उस समय कहा था, डा० राय की पुस्तक में 'रत्न समुच्चय' के जिन प्रयोगों का वर्णन दिया हुआ है उनसे ज्ञात होता है कि १३ वीं और १४ वीं शताब्दियों के हिन्दू रसायनिक समकालीन यूरोपियन विद्वानों से कहीं बढ़े चढ़े थे।

---

* History of Hindu Chemistry

रसायन विज्ञान उन दिनों भारत में पूर्णता को प्राप्त हो गया था। तत्कालीन दूसरे देश इस विषय में भारत से बहुत पिछड़े हुए थे। सुप्रसिद्ध रसायनिक बर्थोंले ने इस पुस्तक की प्रशंसा में 'जर्नल दे सवां' नामक फ्रेंच पत्रिका में पूरे १५ पृष्ठों की आलोचना लिखी थी।

डाक्टर राय ने अपने ग्रन्थ के प्रथम भाग में प्राचीन भारत के रसायनिक ज्ञान का वर्णन करते हुए उस युग को चार भागों में विभाजित किया है। (१) आयुर्वेद काल बुद्ध भगवान के पूर्व से आरम्भ होकर ईसा की आठवीं सदी में समाप्त होता है, (२) संक्रान्ति काल—९ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक (३) तांत्रिककाल—१३ वीं शताब्दी से सोलह वीं शताब्दि के मध्य तक और (४) आरम्भिक रसायन काल। चरक, सुश्रुत एवं वागभट्ट प्रभृति वैज्ञानिकों की गणना प्रथम काल में की गई है। वृन्द और चक्र पाणि की दूसरे में, तीसरे में रसार्णव और चौथे में रत्न समुच्चय प्रमुख बतलाये गये हैं। इसी सूची में कतिपय अन्य संस्कृत ग्रन्थ एवं हस्तलिखित पत्र आदि भी शामिल हैं। दूसरा भाग भी पहले ही भाग से सम्बद्ध है। अपनी पुस्तक में अचार्य राय ने नागार्जुन के रसरत्नाकर नामक रसायन ग्रन्थ का पूर्ण उपयोग किया है। स्थान-स्थान पर इसी ग्रन्थ का हवाला दिया गया है। नागार्जुन के साथ ही उसके शिष्य रत्न घोष के कार्यों का भी विवरण है। बौद्धकाल में नागार्जुन ही ने भारत में कीमिया * का प्रवेश किया था। राय महोदय ने अपनी अकाट्य युक्तियों द्वारा बौद्ध

---

* Alchemy

काल में भारत में रसायन के ज्ञान की यथेष्ट उन्नति होने और बौद्ध मठों में तन्त्रों एवं कीमिया के प्रयोगों का किया जाना पूर्ण रूप से सिद्ध किया। १३ वीं शताब्दि में 'रससागर' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक गोविन्दाचार्य ने भी इन्हीं बौद्ध भिक्षुकों से कीमिया सीखी थी।

आचार्य राय की यह महान् पुस्तक थोड़े ही समय में संसार भर में बड़े सम्मान और विश्वास की दृष्टि से देखी जाने लगी। यूरोप की कई भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित किये गये। इसके उपलक्ष्य में डरहम विश्वविद्यालय ने १६१२ ई० में आपको डी० एस-सी० की सम्मानित उपाधि प्रदान की।

आचार्य की शिष्य मण्डली

आचार्य राय ने स्वयं उच्चकोटि के अन्वेषण करने के साथ ही अपने अनेक शिष्यों को भी उच्चकोटि की मौलिक गवेषणायें करने के लिए अनुप्राणित किया है। आज दिन रसायन विज्ञान के सम्बन्ध में भारत की विभिन्न रसायनशालाओं में जो महत्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य हो रहा है वह सब आचार्य राय ही के परिश्रम और अध्यवसाय का परिणाम है। आपने रसायन की केवल शिक्षा ही नहीं दी है, वरन् रसायन के सैकड़ों उत्कृष्ट विद्वान तैयार किये हैं, ये विद्वान् आज देश भर में फैले हुए हैं, और रसायन के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुशीलन में लगे हुये हैं।

आप स्वयं जो कुछ भी अनुसन्धान करते रहे हैं उसका अधिकांश श्रेय बराबर अपने शिष्यों ही को देते रहे हैं। स्वयं अपने मौलिक कार्यों

तथा अपनी शिष्य मंडली के प्रयत्नों से आचार्य राय ने जो प्रसिद्धि प्राप्त की है उस पर समस्त देश गर्व कर सकता है। आप अपने शिष्यों को उचित शिक्षा देने और उन्हें सन्धान कार्य में प्रवृत्त करने के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के महत्व को दृष्टि से नहीं देखते। एक सच्चे भारतीय आचार्य की भाँति अपने शिष्यों ही को अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति समझते और कहते हैं कि मैं स्वदेश के लिए इन से बढ़कर और कोई धन अथवा सम्पत्ति नहीं छोड़ सकता। आपकी यह हार्दिक अभिलाषा रहती है कि आपके शिष्य आपसे भी अधिक योग्य और प्रसिद्ध बनें। आपका कथन भी है कि अध्यापक को अपने शिष्यों को छोड़कर और सभी जगह विजय की अभिलाषा करनी चाहिए।

आप के शिष्यों में डा० नीलरत्नधर, डा० रसिकलालदत्त, डा० ज्ञानेन्द्र घोष, डा० पंचानन नियोगी और डा० ज्ञानेन्द्र मुखर्जी, प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० ज्ञानेन्द्र घोष ने भौतिक रसायन में बहुत ही महत्वपूर्ण और अति उच्चकोटि की खोज की है। उनका विषय भी बहुत गहन है और उस पर वांटहाफ, अर्हीनियस एवं ओस्ट्वाल्ड प्रभृति संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक लगातार कई वर्ष तक काम करने पर भी ठीक ठीक फल न प्राप्त कर सके थे। परन्तु डा० घोष को अपने अनुसन्धान में पूर्ण सफलता मिली। उन्होंने जो सिद्धान्त और नियम बनाये हैं उन्हें समस्त विज्ञान संसार ने एक स्वर से स्वीकार कर लिया है।

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रफुल्लचन्द्र राय और उनके शिष्यों की चर्चा करते हुए एक बार कहा था कि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का व्यक्ति-

बात में किसी को संदेह नहीं है कि अग्नि-रस, जो अग्न्याशय ग्रंथि से पक्वाशय में पहुँचता है, प्रोटीन का पहले पेप्टोन के रूप मे भजन करता है। इसके पश्चात् यह पेप्टोन पोलीपेप्टाइड (Polypeptides) के रूप में परिवर्तित होता है और अंत में पोलीपेप्टाइड से अमीनोअम्ल (Amino Acids) बन जाते हैं। यह प्रोटीन के अंतिम स्वरूप हैं। इस प्रकार भोजन के सब अवयवों पर इस रस की क्रिया अन्य रसों की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है।

आमाशय में पहुँचने पर दूध फट जाता है। इससे छेना और पानी अलग हो जाते हैं। अग्न्याशय-रस में भी आमाशय-रस की भाँति रेनिन रहता है, जिससे दूध तुरंत ही फट जाता है। दूध के फटने की क्रिया शरीर में आमाशय ही में पूर्ण हो जाती है। पक्वाशय तक पहुँचने पर दूध का कुछ भी भाग साधारण दशा में नहीं रहता।

अग्नि-रस का वह भाग, जो प्रोटीन पर क्रिया करता है, ट्रिप्सिन (Trypsin) कहलाता है। जिस भाँति आमाशय-रस मे पेप्सिन और मौखिक रस मे टायलिन होती हैं, उसी भाँति इस रस मे ट्रिप्सिन होती है। इसके अतिरिक्त लायपेज़ और एमायलेज़, वसा और श्वेतसार पर क्रिया करनेवाले अवयव भी इस रस में रहते हैं।

यद्यपि अग्नि-रस सबसे तीव्र रस है और उसकी क्रिया भी बहुत विशेष है, क्योंकि वह भोजन के सब भागों को पचाता है, किंतु मुख का रस और आमाशय का रस भी शरीर के लिये कुछ कम महत्त्व का नहीं है। अग्नि-रस के कारण हम इन रसों की अवहेलना नही कर सकते। पाचन की क्रिया को आरंभ करने-वाले ये ही रस होते हैं और इन रसों की क्रिया से दूसरे रस

थीं उनके प्रति आदर और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए विश्वविद्यालय ने, आपको अवकाश ग्रहण कर लेने के बाद अपना 'सम्मानीय अवकाश-प्राप्त आचार्य' नियुक्त किया।

रसायनिक उद्योग धन्धों के नेता

आचार्य राय की विज्ञानसाधना केवल विशुद्ध विज्ञान के नवीन तथ्यों का पता लगाने ही तक सीमित नहीं रही है। उन्होंने अपने अध्यवसाय से जो ज्ञान उपार्जित किया है उसको कार्य रूप में परिणत करने तथा उसकी सहायता से अपने देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का सदुपयोग करने के भी उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण प्रयास किये हैं। राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ाकर देश के दुख दारिद्र्य को दूर करने की भरसक चेष्टा की है। 'बंगाल केमिकल एन्ड फार्मेसिटिकल वर्क्स' की स्थापना, संगठन और सुचारु रूप से उसका संचालन, आगे आने वाली सन्तति को बराबर आप की याद दिलाते रहेंगे।

बचपन ही से आप में देश प्रेम की भावनायें जाग्रत हो चुकी थीं और प्रति वर्ष लाखों करोड़ों रुपयों की औषधियाँ तथा रसायनिक द्रव्यों का विदेशों से भारत में आना बहुत अखरता था। विद्यार्थी जीवन समाप्त होने के बाद ही से आप बराबर इस धुन में लगे रहते थे कि किसी तरह इन सब चीज़ों को भारत में भी तैयार करने का प्रबन्ध किया जाय और भारत में एक ऐसा कारखाना खोला जाय जहाँ अँग्रेजी औषधियाँ तथा आवश्यक रसायनिक द्रव्य तैयार किये जा सकें।

बंगाल केमिकल की स्थापना

प्रेसिडैंसी कालेज में प्रोफेसर नियुक्त होने के बाद शिक्षाविभाग के अँग्रेज डाइरेक्टर के तीखे व्यंग ने आपको इस काम के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। उन दिनों आपको केवल २५०) मासिक वेतन मिलता था। इसी रुपये में से आपको पैतृक ऋण भी चुकाना पड़ता था। पैतृक ऋण चुकाने के साथ ही इसी वेतन में से आप दूसरों को दान और आर्थिक सहायता भी देते थे। इस गाढ़ी और स्वल्प कमाई से आपने दो तीन साल के अन्दर ८००) बचाकर अपने रहने के कमरे ही में, देशी जड़ी बूटियों और औषधियों से विलायती ढंग की दवाइयाँ तैयार करने के लिए बंगाल केमिकल और फार्मेसिटिकल वर्क्स का श्री गणेश किया। यह सन् १८६२ ई० की बात है। आपको प्रेसिडैंसी कालेज में काम करते हुए पूरे तीन साल भी न हो पाये थे। १० बजे से ५ बजे तक आचार्य जी कालेज की प्रयोगशाला में रहते और वहाँ कस कर मेहनत करते। सुबह शाम का अपना सारा समय इस कारखाने के काम में लगाते। आपका कमरा ही आपकी फैक्टरी थी।

इस काम में आपको अपने ही सरीखे उत्साही और कर्त्तव्यपरायण दो सहयोगी भी मिल गये। ये दोनों, डा० अमूल्यचरण बसु एम० बी० और श्री सतीशचन्द्र सिंह एम० ए० थे। तीनों ही मित्र जीवन क्षेत्र में प्रवेश करने वाले नौसिखिये नवयुवक थे। न उनके पास पूंजी थी और न व्यवसायिक अनुभव। यदि कुछ था तो उत्साह और विचार शक्ति, स्वदेश प्रेम और अपने काम की लगन। उन दिनों स्वदेशी और विदेशी का भी कोई खयाल न था अस्तु आचार्य राय और उनके सहयोगियों

को अपने आयोजन में प्रोत्साहन मिलना तो बहुत दूर उलटी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर आचार्य राय और उनके साथियों ने इन कठिनाइयों की तनिक भी परवाह न की। बराबर अपने कार्य में सचाई के साथ लगे रहे, फलस्वरूप उनका यह कारखाना आज बंगाल ही नहीं सारे भारत का गौरव है।

धीरे धीरे आपके कारखाने की औषधियों का अच्छा प्रचार हो गया, डाक्टर, चिकित्सक एवं जन साधारण उन पर विश्वास करने लगे। परन्तु दुर्भाग्यवश तीनों नवयुवक अधिक समय तक साथ साथ काम न कर सके। थोड़े ही दिन के बाद राय महोदय के इन दोनों साथियों का स्वर्गवास हो गया। सतीशचन्द्रसिंह ने तो काम करते करते अपने आपको विज्ञान की वेदी पर ही निछावर कर दिया। कारखाने में काम करते हुए प्रशिक एसिड * के विषैले प्रभाव से उनकी मृत्यु हुई। आपको अपने. साथियों के असमय ही में छिन जाने का बहुत अधिक दुख हुआ और इससे कारखाने के काम को भी बड़ा धक्का लगा, पर आप हतोत्साह न हुए और दूसरे सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं, विशेषकर अपने बंगाली शिष्यों को जुटाकर अपने काम को और अधिक उन्नत बनाने के लिए दृढ़ता से अग्रसर हुए। इस बीच में आपको प्रो० चन्द्रभूषण भादुड़ी का सहयोग प्राप्त हुआ। प्रो० भादुड़ी जैसे निस्स्वार्थ और चुपचाप लगन के साथ काम करने वाले सहकारी के मिल जाने से श्री बसु और श्री सन्हा की मृत्यु से होने वाली क्षति की बहुत कुछ पूर्ति हो गई। १६०१

---

* Prussic Acid

में आपने कारखाने को ५० हजार के मूलधन से पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के रूप में रजिस्टर करा लिया। अब तो कारखाने की पूंजी ५० हजार से बढ़कर ५० लाख से भी अधिक हो गई है।

औषधियों के अतिरिक्त नाना प्रकार के रसायन, निःसंक्रामक एवं संसर्ग दोष निवारक पदार्थ, चीर फाड़ के काम की चीजें, आग बुझाने और गैस बनाने के यंत्र, प्रयोगशालाओं की सामग्री, वैज्ञानिक तुलायें तथा दूसरे उपकरण बनाना इस कारखाने की विशेषता है। रसायनिक द्रव्यों, औषधि उपचार की सामग्री के अतिरिक्त कारखाने में नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, प्रसाधन एवं शृङ्गार की श्रेष्ठ सामग्री भी तैयार की जाती है और विभिन्न विषयों में अनुसन्धान कार्य का बहुत बढ़िया प्रबन्ध है। कारखाने का गन्धक का तेज़ाब बनाने वाला विभाग भारत ही नहीं एशिया में अपना सानी नहीं रखता।

कारखाने के मज़दूरों को दूसरे स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधायें हैं। कम से कम वेतन पाने वाले साधारण मज़दूरों तक के लिए प्राविडेंट फंड की व्यवस्था है। कारखाने में होने वाले मुनाफे में मज़दूरों को भी यथोचित हिस्सा दिया जाता है। मज़दूरों की शिक्षा के लिए स्कूल, पुस्तकालय एवं वाचनालय तथा मनोविनोद के लिए क्लब तथा खेल-कूद के साधनों का पर्याप्त प्रबन्ध कारखाने की ओर से है।

बंगाल केमिकल की सफलता, सुप्रबन्ध, सुव्यवस्था एवं असाधारण उन्नति का श्रेय इसके संस्थापक एवं प्राण शक्ति आचार्य राय को प्राप्त है। वयोवृद्ध हो जाने पर भी आप बराबर इसे और अधिक उन्नत

बनाने के लिए सदैव उत्सुक एवं प्रयत्न शील रहते हैं। इस कारखाने की स्थापना और श्रेष्ठ प्रबन्ध एवं उन्नति के द्वारा आपने भारतीय व्यवसायियों के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करने के साथ ही रसायनिक उद्योग धन्धों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है और आज इसकी देखादेखी बंगाल ही नहीं सारे भारत में रसायनिक पदार्थ एवं औषधियां आदि तैयार करने के बीसियों कारखाने खुल चुके हैं। इस कारखाने के द्वारा आपने अपने इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित किया है कि किसी भी व्यवसाय को शुरू करने के लिए भव्य भवनों एवं भारी रकमों की ज़रूरत नहीं है। आज आचार्य राय द्वारा अपने रहने के कमरे में प्रारम्भ किये जाने वाला अत्यन्त नगण्यसा कारखाना भारत का गौरव है।

विज्ञान कांग्रेस के सभापति

संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि आचार्य राय ने अपना सारा जीवन ही भारत में रसायन विज्ञान की शिक्षा एवं अन्वेषण को पुनर्जीवित करने तथा उसे उन्नति पथ पर अग्रसर करने में उत्सर्ग कर दिया है। आचार्य महोदय अपनी विज्ञान साधना आरम्भ करने के समय ही से देश की विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं में भी सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं। १६२० ई० में अपनी सफल विज्ञान साधना और विज्ञान के लिए की गई महत्वपूर्ण सेवाओं के उपलक्ष्य में आप भारतीय विज्ञान काँग्रेस के सभापति निर्वाचित किये गये।

उस अवसर पर नवयुवकों से आधुनिक संसार में उन्नति शिखर पर आरूढ़ होने के लिए विज्ञान के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुशीलन

में अति उत्साह पूर्वक भाग लेने की अपील करते हुए आपने कहा था कि 'शताब्दियों से हम शास्त्रों के अंधभक्त बने हुये हैं, इससे हमारी विचार शक्ति लुप्त प्राय हो गई है और हमारे मानसिक विकास में बड़ी बाधायें उपस्थित हुई हैं, और इसी लिए हम विगत एक हजार वर्षों से कोई उल्लेखनीय उन्नति करने में सफल भी नहीं हो सके हैं। देश की उन्नति के लिए विज्ञान की शिक्षा अनिवार्य है। विज्ञान अन्ध विश्वास पर निर्भर नहीं रह सकता, विज्ञान तो सत्य पर निर्भर है और वैज्ञानिक अनुशीलन का उद्देश्य सत्य को ढूँढ निकालना है। अतएव उदार मानसिक विकास के लिए हमें इसी वैज्ञानिक प्रवृत्ति को अपनाना होगा। हमारे युवकों में योग्यता की कमी नहीं है। आवश्यकता है धैर्य और उद्देश्य सिद्धि की अभिलाषा की। इसके साथ ही हक्सले के अनुसार विज्ञान के लिए आत्मत्याग भी अनिवार्य है।'

इंडियन केमिकल सोसाइटी

संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि आचार्य राय ने स्वयं अपना सारा जीवन भारत में रसायन की शिक्षा एवं अन्वेषण को पुनर्जीवित करने तथा उसे उन्नति पथ पर अग्रसर करने में उत्सर्ग करने के साथ ही अपने शिष्यों एवं अन्य विद्यार्थियों को भी ऐसाही करने के लिए शतशः प्रयत्न किये हैं और परम निस्स्वार्थ भाव से। भारतीय विज्ञान कांग्रेसके सभापति निर्वाचित किये जाने के पूर्व ही आप भारत में रसायन सम्बन्धी अन्वेषण कार्य करने वाले वैज्ञानिकों को संगठित करके उनके कार्यों में पूर्ण सामञ्जस्य एवं सहकारिता स्थापित करने की बात सोच रहे थे।

विज्ञान कांग्रेस के सभापति बनाये जाने के बाद आपने इस ओर विशेष ध्यान दिया और लगातार तीन चार साल तक कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के मौकों पर रसायनिकों का एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित करने पर बहुत ज़ोर दिया। इन प्रयत्नों के फल स्वरूप १६२४ में, आप इंडियन केमिकल सोसाइटी की स्थापना कराने में सफल हुए। प्रारम्भ ही में यह संघ अखिल भारतीय स्थिति को पहुंच गया। आचार्य राय ही इस सोसाइटी के प्रथम सभापति भी बनाये गये। अपने अदम्य उत्साह से आपने इस संस्था को वह संजीवनी शक्ति प्रदान की कि स्थापना के दो चार साल के अन्दर ही इसकी गणना भारत की प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं में की जाने लगी और आज तो यह संस्था भारत ही नहीं संसार की रसायन सम्बन्धी श्रेष्ठ संस्थाओं में मानी जाती है। इस संस्था ने भारत में रसायन के प्रचार और प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। आचार्य जी ने इस संस्था की स्थापना के अतिरिक्त, इस को भवन निर्माण के लिये १०३५० रुपये का दान भी दिया है।

सोसाइटी ने भी अपने संस्थापक और संरक्षक के प्रति आदर और प्रेम प्रकट करने के लिए उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर १६३१ ई० में उन्हें एक स्मारक ग्रन्थ समर्पित किया था। इस ग्रन्थ में भारत में होने वाले रसायन सम्बन्धी मौलिक अन्वेषण निबन्ध तथा मौलिक अनुसन्धान और अन्वेषण कार्यों के विवरण संग्रह किये गये थे। यह ग्रन्थ आधुनिक भारत में रसायन की प्रगति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। भारत के सभी श्रेष्ठ रसायनिकों ने इस ग्रन्थ में अपने अन्वेषणों के

अवयवों को रक्त में मिला देती हैं। रस-वाहिनी नलिकाएँ वसा के कणों को सोख लेती है।

भोजन का बहुत कुछ शोषण भौतिक सिद्धांतों के अनुसार होता है।

व्यापन और अभिसरण (Diffusion & Osmosis) की क्रियाएँ अंत्रियों मे होती हैं। यदि किसी लवण की काफ़ी मात्रा थोड़े-से जल में घोलकर अंत्रियों के भीतर रख दी जाय, तो लवण तुरंत ही अंत्रियों के भित्तियों के द्वारा रक्त मे जाने लगेगा और रक्त से जल निकलकर लवण में मिलने लगेगा, जब तक लवण की मात्रा रक्त और अंत्रियों मे समान न हो जायगी। अगर स्वयं पशु का सीरम ही उसकी अंत्रियों मे रख दिया जाता है, तो अंत्रियाँ उसको भी सोख लेती हैं, यद्यपि उसमें लवणों की कोई भी अधिकता नहीं है। यह शोषण की शक्ति अंत्रियों के भीतर की श्लैष्मिक कला के सेलों की शक्ति है। हमको अभी तक शोषण क्रिया का पूर्ण ज्ञान नहीं है। केवल रासायनिक और मौलिक सिद्धांतों से इस क्रिया की पूर्ण व्याख्या नहीं होती। अंत्रियों की कला के सेलों में यह विशेष शक्ति मालूम होती है कि वहाँ पर जो शोषण के योग्य वस्तु पहुँचती है, उसे वह तुरत ही सोख लेते हैं।

मुख और आमाशय मे भोजन का शोषण नहीं होता। मुख में एक तो भोजन को समय ही बहुत कम मिलता है; अन्न-प्रणाली के द्वारा भोजन तुरंत ही निकल जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ की कला भी ऐसी मोटी है कि वह शोषण के लिये उपयुक्त नहीं है। आमाशय मे भी इसी प्रकार भोजन के शोषण की शक्ति नहीं है। यदि आमाशय के भीतर जल को कुछ समय तक रहने दे, तो जल की बहुत थोड़ी सी मात्रा का शोषण होता है। जब तक

शेक्सपीयर के बारे में कई महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित कराये हैं। इनमें से दो-एक निबन्ध तो इसी वर्ष, उनकी ८० वीं वर्षगांठ मनाये जाने के कुछ ही पूर्व, कलकत्ता-रिव्यू में प्रकाशित हुए हैं। गम्भीर साहित्य के अतिरिक्त आप थैकरे, जार्ज इलियट और डिकेंस के उपन्यास भी बड़े चाव से पढ़ते हैं। आपने अँग्रेजी में अपनी आत्मकथा * "बंगाली केमिस्ट की जीवनी और अनुभव" के नाम से लिखी है। इसका प्रकाशन लन्दन की पाल कम्पनी से हुआ है।

समाज सेवा और देश सेवा

उच्चकोटि के वैज्ञानिक होने के साथ ही आचार्य राय प्रमुख समाजसेवी एवं देश प्रेमी भी हैं। आपने केवल अपने वैज्ञानिक कार्यों एवं हिन्दू रसायन के इतिहास की रचना ही से देश का मुख उज्ज्वल नहीं किया है वरन् स्वदेश की उन्नति और समाज सुधार के लिए बराबर ठोस और रचनात्मक कार्यों में भी संलग्न रहे हैं। आपकी रचनात्मक कार्य करने की प्रवृति केवल बंगाल केमिकल के संगठन और संचालन ही से नहीं शान्त हो गई है। स्वदेशी और खादी में आपका दृढ़ विश्वास है। १६३१ के राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों सारे देश में दौरा करके स्वदेशी का प्रचार किया और स्थान स्थान पर स्वदेशी प्रदर्शिनियों का संगठन कराकर उनका उद्घाटन किया। उन दिनों जब देश भर में प्रचण्ड

---

* Life & Experiences of a Bengali Chemist: by Prafulla Chandra Ray, London, Kagan Paul & Co., Ltd., 1932.

दमन दावानल का दौर दौरा था, आपके भाषणों से राष्ट्रीय युद्ध से थके हुए देश में जागृति और उत्साह की एक नई लहर दौड़ गई थी। स्वदेशी प्रचार और रसायनिक उद्योग धन्धों के संगठन के साथ ही आपने खादी प्रचार और खादी निर्माण के लिए भी उल्लेखनीय कार्य किया है। बंगाल का सुप्रसिद्ध खादी प्रतिष्ठान आप ही के प्रयत्नों का सुफल है। खादी प्रतिष्ठान द्वारा खादी प्रचार के साथ ही सैकड़ों निर्धन एवं असहाय परिवारों की रोटी की समस्या हल हो रही है। आपने कांग्रेस के दूसरे रचनात्मक कार्यों में भी सक्रिय भाग लेकर कांग्रेस कार्य क्रम को जो शक्ति प्रदान की है, बड़े बड़े कांग्रेसी नेता भी उसकी मुक्त कण्ठ से सराहना करते हैं।

अपनी आदर्श समाज सेवाओं के लिए आप १९१७ ई० में अखिल भारतीय समाज सुधार कानफरेंस के सभापति भी बनाये गये थे। उस अवसर पर आपने समाज सुधार की अन्य योजनाओं के साथ ही अछूतो-द्धार पर भी बहुत ज़ोर दिया था। यह बात देश में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन तथा कांग्रेस द्वार अछूतोद्धार कार्य क्रम के अपनाये जाने से चार वर्ष पहिले की है। अछूतोद्धार सम्बन्धी आपके विचारों को सुनकर कट्टर पंथी एवं सनातनी लोग बड़े क्रुद्ध हुए थे और यहां तक कहने लगे थे कि आचार्य राय देश की राजनैतिक प्रगति में रोड़े अटका रहे हैं। परन्तु धीरे धीरे लोग आपकी बातों की यथार्थता और सचाई को समझने लगे और आगे चलकर कांग्रेस ने भी महात्माजी के नेतृत्व में इस काम को आपने कार्यक्रम का प्रमुख अंग माना।

आपके बहुत शिष्यों और मित्रों का कहना है कि देशभक्ति की भावनाओं ने आपकी अन्वेषण एवं व्यवसायिक प्रतिभा को पूर्णतया विकसित नहीं होने दिया है। देश के लिए आपने अन्वेषण कार्य की भी परवाह नहीं की है और सैकड़ों ही बार भाषण देते हुए घोषणा की है कि "अन्वेषण रुक सकते हैं, उद्योग और धन्धों का संगठन भी रुक सकता है, परन्तु स्वराज्य नहीं रोका जा सकता।" आपकी देशभक्ति की भावनायें बाल्यकाल ही से विकसित होकर उमर के साथ पुष्ट और प्रौढ़ होती गई हैं आप इस बुढ़ापे में भी जितनी लगन और उत्साह से काम करते हैं कि उसे देखकर नवयुवकों तक को दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है।

चर्खा प्रचार

१६२२ ई० में उत्तरी बंगाल में बाढ़ आने और अकाल पड़ने पर आपने जिस अदम्य उत्साह के साथ काम किया था उसकी स्मृति अब भी बहुतों के लिये कल की सी बात है। आप इस काम में तन मन धन से जुट गये थे। आप के साथ ही आपके सैकड़ों तरुण शिष्य इस मानवोचित कार्य में अग्रसर हुए। आपकी संगठन शक्ति को देख कर बड़े बड़े सरकारी अफसरों के दाँत खट्टे हो गये। कुछ गोरे अफसरों को तो यहाँ तक कहना पड़ा कि अगर महात्मा गांधी को आचार्य राय सरीखे दो चार सहकारी और मिल जाते तो उन्हें एक ही वर्ष में स्वराज्य ले लेने में अवश्य सफलता मिलती।

इस भारी सार्वजनिक संकट के समय आपको महात्मा गांधी के चर्खे और खादी की महत्ता समझ में आई और आप जन साधारण के कष्ट

निवारण के लिए चर्खे के प्रचार में लग गये। अब आप चर्खे की उपयोगिता और महत्ता में, एक वैज्ञानिक होते हुए भी, दृढ़ विश्वास रखते हैं। आपका चर्खा प्रेम रसायन प्रेम से किसी भी अंश में कम नहीं कहा जा सकता। १९२४ में कोकानाडा कांग्रेस के अवसर पर खादी प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए आप ने बतलाया था कि चर्खे से केवल सूत ही नहीं कतता, और भी बहुत से छोटे छोटे ग्रामीण उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन मिलता है। जिस समय एक पूरा गाँव चर्खा चलाने लगता है गाँव में करघे भी ज़ोरों से चलने लगते हैं। रंगरेज़ और बढ़ई को भी रोज़गार मिल जाता है। लोहार को भी तकुए बनाने और उनकी मरम्मत करने से फ़ुरसत नहीं मिलती। वास्तव में चर्खे से सूत कातना ही एक ऐसा ग्रामीण धन्धा है जिससे हमारे गाँवों की सभी ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। चर्खा ग्रामीणों में साहस, आत्मविश्वास, चपलता आदि गुणों का भी विकास करता है। इन गुणों से गाँव में जीवन और जागृति की एक नई लहर फैल जाती है और गाँव का गाँव अधोगति में गिरने से बच जाता है।

स्वदेशी मेरा धर्म है

स्वदेशी के आप ज़बरदस्त पैरोकार हैं। कुछ वर्ष पूर्व मद्रास स्वदेशी प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए आपने कहा था 'मैं स्वदेशी हूं। स्वदेशी ही मेरा धर्म है। राजनैतिक परिवर्त्तन और आन्दोलन मुझे मेरे निश्चय से डिगा नहीं सकते। मुझे बहिष्कार शब्द से घृणा है। स्वदेशी प्रचार के साथ बहिष्कार शब्द का व्यवहार भी उचित नहीं प्रतीत

होता। बहिष्कार किसी खास उद्देश्य को सामने रख कर किया जाता है। उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर फिर बहिष्कार की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। अतः वह एक सामयिक एवं अस्थायी बात हो सकती है। परन्तु स्वदेशी प्रचार करना और स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम करना स्थायी बात है। अपने देश की उन्नति करना, उसके उद्योग धन्धों की रक्षा करना, यह तो निर्मल स्वदेश प्रेम के भावों से परिपूर्ण है।'

संक्षेप में अचार्य राय ने अपना सारा का सारा जीवन मातृभूमि की सेवा में उत्सर्ग कर दिया है। शिक्षा, विज्ञान, समाजसुधार, राजनीति, स्वदेशी व्यवसायों की उन्नति आदि आदि अनेक क्षेत्रों में सक्रिय रुप से आपने भारत की सेवा की है। और इन सेवाओं के लिए आधुनिक तरुण भारत के निर्मात्ताओं में आपका नाम सदैव अग्रगण्य रहेगा।

यथेष्ट वयोवृद्ध हो जाने पर भी इन कार्यों में आप सक्रिय रूप से बराबर भाग लेते रहते हैं। आज कल भी आप बंगाल की सुप्रसिद्ध संकट तारन समिति तथा नारी कल्याण आश्रम प्रभृति लोकोपकारी संस्थाओं के सभापति हैं।

सरकार द्वारा सम्मानित

अपनी इन सेवाओं के लिए आपको जन साधारण के साथ ही साथ सरकार से भी समय समय पर यथेष्ट सम्मान मिलता रहा है। १६११ ई० में आपको सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की गई थी। और उसके बाद महायुद्ध की समाप्ति पर आपको 'सर' का खिताब दिया गया। इन ऊंचे खिताबों को पाकर तथा सरकारी पेंशनर होते हुए भी आप सरकारी

ए, बी और सी जीवाणु होते हैं। इन जीवाणुओं का संवहन तीन प्रकार से होता है। अँगुलियों द्वारा, आहार द्वारा तथा मक्खियों द्वारा (Finger, Food & Flies)। रोगी के परिचारक तथा सुश्रूषक रोगी के मल, मूत्र, वस्त्र, आहार आदि छूने से अँगुलियों द्वारा जीवाणुओं को अपने मुख में तथा अपने आहार में पहुँचा देते हैं। जल में संगदूषण पहुँच सकता है। आहार के पदार्थों में मक्खियाँ दोष को पहुँचाने का विशेष साधन होती हैं। जल दूध को दूषित करने का विशेष कारण है।

रोग के लक्षण : ज्वर ही विशेष लक्षण है जो निरन्तर बना रहता है, किसी समय नहीं उतरता। वह प्रायः तीन सप्ताह के पश्चात् उतरता है। ६ या ८ सप्ताह तक ज्वर रह सकता है। प्रथम सप्ताह में ज्वर धीरे-धीरे बढ़ कर १०३ या १०५ तक पहुँच जाता है। दूसरे सप्ताह में वैसा ही बना रहता है। तीसरे सप्ताह में धीरे-धीरे उतरना प्रारम्भ होता है। एक या आधा डिगरी नित्य कम हो जाता है और तीसरे सप्ताह के अन्त तक या उससे दो चार दिन पहिले या पीछे बिलकुल उतर जाता है। दूसरे सप्ताह में पेट का फूलना, पतले दस्त, दस्तों में रक्त का आना आदि उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। टाइफ़ाइड रोग भयंकर होता है। अब क्लोरम्फ़िनिकाल इसकी विशिष्ट औषधि निकल आई है।

पैराटाइफ़ाइड ए, बी, सी हलके ज्वर हैं। वे थोड़े ही समय में उतर जाते हैं।

प्रतिषेध के उपाय : मक्खियों का नाश, आहार की संगदूषण से रक्षा, केवल शुद्ध गरम आहार, उबाला हुआ गरम दूध पीना रोग से बचने के उपाय हैं। टी० ए० बी० टीका रोग से रक्षा करने में बहुत सफल प्रमाणित हुआ है।

विशूचिका या हैजा (Cholera)

यह बड़ा ही तीव्र और भयंकर रोग है जिसमें एक या दो दिन में और कभी-कभी बारह घंटे में मृत्यु हो जाती है। रोग का कारण एक जीवाणु होता है जिसको 'कौलरा विब्रियो' (Cholera Vibrio) कहते हैं। यह अंग्रेजी, जैसा होता है। रोग की पराकाष्ठा के समय जीवाणु रोगी के मल में भरे रहते हैं। मल के साथ भूमि में पहुँच जाते हैं। टाइफ़ाइड की भाँति इस रोग का संक्रमण भी आहार, अँगुलियों और मक्खियों द्वारा फैलता है। मक्खियाँ रोग फैलाने में बहुत भाग लेती हैं। गंगा की मुहानी के क्षेत्र में यह रोग स्थानिक मारी की भाँति सदा बना रहता है और यातायात के द्वारा वहाँ से समय-समय पर फैला करता है। रोग प्रायः गरमी के अन्त काल से लेकर शरद ऋतु के प्रारम्भ तक अर्थात् जून से सितम्बर तक अधिक फैलता है।

इसका उद्भवन काल कुछ घंटों से लेकर १ या २ दिन तक होता है।

रोग के लक्षण : वमन और पतले दस्त रोग का विशेष लक्षण हैं। दस्त पानी के समान पतले कुछ श्वेत रंग लिये हुए होते हैं। इनको चावल के माँड के समान दस्त (Rice-

उदाहरण है। आचार व्यवहार में आप पूर्णतया बंगाली हैं और इतनी अधिक सादगी से रहते हैं कि बहुधा भेंट करने वालों को आपको पहचानने में भी दिक्कत होती है। सादा रहन सहन के साथ ही आप का स्वभाव भी बहुत ही सरल है।

अपूर्व आत्म त्याग

धन संग्रह की आपको तनिक भी लालसा नहीं है। अपनी आमदनी का अधिकांश रुपया आप बराबर निर्धन विद्यार्थियों, सार्वजनिक एवं शिक्षण संस्थाओं को बाट देते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९२१ के बाद से १९३६ तक पंद्रह वर्ष लगातार आपको जो कुछ भी आय हुई है उसे अपने वेतन सहित आपने रसायनशाला के पुनः निर्माण, रसायन के अन्वेषण एवं रसायन अन्वेषण करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां देने के लिए विश्वविद्यालय ही को दान कर दिया। यथेष्ट धन उपार्जित करते हुए भी आप अपनी आमदनी का शतांश भी अपने ऊपर खर्च नहीं करते। आपकी निजी आवश्यकतायें बहुत ही सीमित और स्वल्प हैं। पुस्तकों की कुछ अलमारियां कुछ पुरानी कुर्सियां एक अति जीर्ण मेज तथा एक बिस्तर यही सर राय जैसे महान् वैज्ञानिक की गृहस्थी का सामान है। आपने विवाह नहीं किया है और अपने शिष्यों ही को सन्तानवत समझते हैं।

लाखों रुपये दान कर चुकने पर भी आप कभी अपने आप अपने दान की चर्चा तक नहीं करते। और न अपने इस कार्य को कुछ महत्व ही देते हैं। आपका कहना है कि सब दानों में धन का दान

लते हैं, उस समय यह पेशी नीचे की ओर गिरकर स्वर-यन्त्र के छिद्र को बंद कर देती है और भोजन का ग्रास इस पेशी पर होकर अन्न-प्रणाली में चला जाता है। यदि किसी कारण मांस-पेशी समय पर बंद न हो सकी, तो भोजन का ग्रास स्वर-यन्त्र के छिद्र में होकर फुस्फुस में जा पहुँचेगा। पहले तो श्वास-नलिका का ही अवरोध हो जायगा, जिससे श्वास भीतर न जा सकेगा। यदि यह भी न हुआ, तो फुस्फुस में पहुँची हुई वस्तु वहाँ शोथ उत्पन्न करेगी, जिससे निमोनिया हो जायगा अथवा फुस्फुस सड़ने (Gangrene) लगेगा। किंतु प्रकृति ने नाड़ियों के द्वारा ऐसा प्रबंध किया है कि ज्यों ही भोजन गले के पिछले भाग में पहुँचता है त्यों ही स्वर-यन्त्र के छिद्र पर की पेशी की नाड़ी उत्तेजित होकर पेशी को सिकुड़ने की आज्ञा भेज देती है और छिद्र बंद हो जाता है कभी-कभी जब जल इत्यादि श्वास-नलिका में पहुँच जाता है, तो बड़े वेग से खाँसी आने लगती है। इसको कहीं-कहीं हूता लगना कहते हैं। इसका कारण इस मांस-पेशी की भूल है।

अन्न-प्रणाली की दीवारें साधारणतया आपस में मिली हुई रहती हैं। इसकी नलिका के भीतर कोई स्थान नहीं रहता। जब इसमें भोजन जाता है तब यह खुलती है। जब भोजन का ग्रास इसमें पहुँचता है तो उसकी मांस-पेशियों के सूत्रों में, जिनसे यह बनी होती है, संकोच होता है, यह संकोच भी अद्भुत होता है। नली में जिस स्थान पर भोजन का ग्रास होता है उसके ऊपर के सूत्र तो संकोच करते हैं किंतु आगे के सूत्र फैल जाते हैं। इस प्रकार पीछे से ग्रास को आगे की ओर धक्का लगता है और वह आगे को बढ़ता है। इसी प्रकार उसको आमाशय तक भेजा जाता है।

शिक्षा प्रणाली में सुधार

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की भी आपने समय समय पर बड़ी कड़ी और खरी आलोचना की है। इस प्रणाली का सब से बड़ा दोष आप विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना बतलाते हैं। आप आधुनिक शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के पक्ष में है और इस बारे में कई उपयोगी सुझाव भी पेश कर चुके हैं। आपका कहना है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षा देकर देश ने अपने अधिकांश नवयुवकों को बिगाड़ डाला है। इससे उनका बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक विकास एकदम बन्द हो गया है। डिगरी प्राप्ति की अत्यन्त उन्मादपूर्ण और उन्मत्त अभिलाषा देश के मानसिक विकास में घुन के समान लग गई है। आपका कहना है कि जिस शिक्षा से भली भांति अपना पेट भी नहीं पाल सकते उससे क्या लाभ? विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देने के साथ ही आप उन्हें लौकिक कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए भी बराबर उपयोगी बातें बतलाते रहते हैं। स्वयं सादगी से रहने के साथ ही अपने शिष्यों को भी सादगी एवं सच्चाई का पाठ पढ़ाया है।

सफलता का रहस्य

आपने जिस क्षेत्र में भी प्रवेश किया और जो काम भी अपने हाथ में लिया उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त करके ही शान्त हुए हैं। आपकी इस सर्वतोमुखी सफलता का रहस्य आपके सुव्यवस्थापूर्ण सक्रिय जीवन में निहित है। आप एक काम को एक ही समय में करने और उसी को

पूरी तौर पर करने में विश्वास रखते हैं। आपका कहना है कि एकाग्र होकर जो काम किया जाता है उसमें अवश्य सफलता मिलती है। अध्ययन के लिए तो एकाग्रता बहुत ही आवश्यक है। एकाग्रता के साथ ही आप जो भी काम करते हैं वह एक व्यवस्था और नियम के साथ तथा निश्चित समय पर। कभी भी अपनी चित्तवृत्ति को अपने ऊपर विजय प्राप्त करने नहीं दिया। प्रयोगशाला में काम करते समय आप संसार भर की दूसरी सभी बातों को पूरी तौर पर भूल जाते हैं और अपने प्रयोग के अतिरिक्त और किसी भी बात का ध्यान नहीं रह जाता। आपने विद्यार्थी जीवन ही से नियमित रूप से स्वाध्याय करने की आदत डाली है। यह क्रम अब भी बना हुआ है और आज कल भी प्रातःकाल आप निश्चित रूप से अवश्य कुछ न कुछ अध्ययन करते हैं। इसी तरह से आपने शाम को नित्य प्रति घूमने जाने का भी नियम बना लिया है। जाड़ा हो या गर्मी, बरसात हो या आंधी आपके इस नियम में कभी अन्तर नहीं पड़ता। चौरंगी के मैदान के किसी एकान्त कोने में शाम को दो तीन मित्रों के साथ आपको किसी भी दिन देखा जा सकता है, विशुद्ध बंगाली वेष भूषा में। आमतौर पर कहा जाता है कि वैज्ञानिक ईश्वर में विश्वास नहीं करते परन्तु आचार्य राय इस कथन के प्रत्यक्ष प्रतिवाद हैं। ईश्वर में आप का दृढ़ विश्वास और अगाध भक्ति है। ब्रह्मसमाजी होते हुए भी आपका यह विचार नहीं है कि केवल उसी मंदिर में आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, हिन्दू कुरीतियों तथा ब्रह्म समाज के मिथ्याचरणों को आप समान रूप से दूषित समझते हैं।

आचार्य का अभिनन्दन

आचार्य ने भारत की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिए जो स्तुत्य प्रयत्न किये हैं उनके लिए देश चिरकाल तक आपका ऋणी रहेगा। तरुण भारत के राष्ट्र निर्माताओं में आपका नाम सदा अग्रगण्य रहेगा। आज दिन भी सारा भारत और विशेषकर बंगाल प्रांत आप को बड़े आदर, सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। २ अगस्त १९४१ को आचार्य की ८० वीं वर्ष गांठ सारे देश में जिस धूम धाम और उत्साह से मनाई गई थी उस से आचार्य की लोकप्रियता और महत्ता का अच्छा परिचय मिलता है। कलकत्ता में उस अवसर पर विशेष रूप से आयोजन किया गया था। देश की प्रमुख प्रमुख वैज्ञानिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के द्वारा आपको अभिनन्दन पत्र समर्पित किये गये। इन अभिनन्दन पत्रों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन सब को पढ़ा भी नहीं जा सका। केवल अभिनन्दनपत्र देने वाली संस्थाओं की सूची ही पढ़कर सन्तोष कर लिया गया था। विभिन्न संस्थाओं की ओर से इतनी अधिक पुष्प मालायें आई थीं कि सभास्थल पर उनका एक विशालकाय ढेर लगगया था।

आचार्य महोदय ने इस उत्सव के अवसर पर दिये जाने वाले अभिनन्दन पत्रों तथा अन्य भाषणों का उत्तर देते हुए जो शब्द कहे थे वे उनकी महत्ता को और अधिक बढ़ा देते हैं:— 'मैं अपनी मृत्यु के बाद भी उन व्यक्तियों के रूप में जीवित रहूंगा जो अज्ञान, अत्याचार और अन्याय के प्रति युद्ध में लगे हुये हैं और मानव समाज को दासता एवं दुःख दारिद्रय से उन्मुक्त करने के लिए प्रयत्न शील हैं।'

ज्योतिर्भौतिक विज्ञान के पण्डित

डा० मेघनाथ साहा एफ० आर० एस०

[जन्म सन् १८६३]

भारत के जिन वैज्ञानिकों ने भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अपने मौलिक अनुसन्धानों से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है उनमें डा० सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् के बाद डा० मेघनाथ साहा अग्रगण्य हैं। डा० साहा अपने मौलिक सन्धानों के महत्व पर रायल सोसाइटी के फैलो बनाये जा चुके हैं। इन्होंने और भी बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के सम्मान प्राप्त किये हैं। संसार के कतिपय सर्वश्रेष्ठ ज्योतिर्भौतिक विज्ञान-विशारदों में आपकी गणना की जाती है। भारत में तो आप इस विषय के सर्वमान्य श्रेष्ठतम वैज्ञानिक हैं। एक साधारण से देहाती परिवार में जन्म लेकर अपनी प्रतिभा और परिश्रम से अति उच्चकोटि के वैज्ञानिक कार्य करके डा० साहा ने भारतीय नवयुवकों के सम्मुख एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है।

बाल्यकाल और शिक्षा

मेघनाथ साहा का जन्म १८६३ ई० में ढाका ज़िले के सिओरा ताली नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता श्रीयुत जगन्नाथ साहा साधारण व्यापारी थे। आधुनिक विज्ञान तो बहुत दूर उनका आधुनिक अँग्रेज़ी शिक्षा से भी कोई घनिष्ट सम्पर्क न था। उन्होंने बालक मेघनाथ

डा० मेघनाथ साहा एफ० आर० एस०

[जन्म १८९३ ई०]

की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध अपने गाँव की देहाती पाठशाला ही में किया। पाठशाला में बालक मेघनाथ ने अपनी प्रतिभा से समस्त शिक्षकों को चकित कर दिया और मिडिल की परीक्षा में ढाका ज़िले में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। इस उपलक्ष्य में इन्हें एक सरकारी छात्रवृत्ति प्रदान की गई। १९०९ ई० में मेघनाथ ने ढाका के एक स्कूल से कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। पूर्वीय बंगाल में प्रथम रहे और गणित में विश्वविद्यालय के समस्त छात्रों से अधिक अंक प्राप्त किये। १९११ ई० में आपने ढाका कालेज से विज्ञान की इन्टरमीडिएट परीक्षा भी सम्मान के साथ पास की। कलकत्ता विश्वविद्यालय में इनका तीसरा स्थान था और गणित एवं रसायन में विश्वविद्यालय भर में सब से अधिक अंक मिले थे।

प्रेसिडैंसी कालेज में

इन्टरमीडिएट की परीक्षा पास करने के बाद यह कलकत्ता में सुप्रसिद्ध प्रेसिडैंसी कालेज में भर्ती हुए। इस कालेज में इनको आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय और सर जगदीशचन्द्र बसु सरीखे महापुरुषों के पास शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन महान् वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने पर विद्यार्थी मेघनाथ को वैज्ञानिक विषयों में अभिरुचि लेने और स्वयं सन्धान कार्य करने के लिए विशेष प्रेरणा मिली। अनेक अंशों में डा० मेघनाथ साहा की वर्त्तमान प्रसिद्धि और विज्ञान साधना की सफलता का श्रेय इन दोनों महापुरुषों से मिलने वाली प्रेरणा को दिया जा सकता है। यद्यपि उन दिनों मेघनाथ की गणित में

विशेष रुचि थी, तथापि वह रसायन और भौतिक विज्ञान पढ़ाने वाले इन दोनों ही प्रोफेसरों के बहुत निकट सम्पर्क में रहते थे और उनके प्रिय छात्रों में से थे। १६१३ में श्री साहा ने गणित में बी० एस-सी० आनर्स परीक्षा और १६१५ में इसी विषय में एम० एस-सी० परीक्षा सम्मानपूर्वक प्रथम श्रेणी में पास की। इन दोनों ही परीक्षाओं में विश्वविद्यालय में इनका स्थान द्वितीय रहा।

अन्वेषण का श्री गणेश

एम० एस-सी० पास करने के उपरान्त श्री साहा १६१६ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के नवसंगठित विज्ञान कालेज में एम० ए० की कक्षाओं को गणित और भौतिक विज्ञान की शिक्षा देने के लिए लेक्चरार नियुक्त किये गये। इस पद पर काम करते हुए आपको चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् के साथ काम करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस सुयोग का आपने समुचित लाभ उठाया और अध्ययन के साथ ही अन्वेषण कार्य में भी अभिरुचि लेने लगे। आपकी पहली स्वतन्त्र खोज 'फेब्रीपेरा के व्यतिकरण मापक यंत्र की व्यतिकरण सीमा' के सम्बन्ध में थी*। दो तीन साल के अन्दर ही आपने अन्वेषण कार्य में अच्छी प्रगति प्राप्त करली और अपनी स्वतंत्र कार्यपद्धति एवं मौलिक विचारों का यथेष्ट परिचय देने लगे। १६१६ में आपको अन्वेषण कार्यों के उपलक्ष्य में सुप्रसिद्ध प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति प्रदान की

* The limit of interference in a Febry-Perot Interferometer.

होता है। सेल्यूलोज़ पर पाचक-रसों की कुछ भी क्रिया नहीं होती। बृहद् अन्त्र में जिस समय यह वस्तु आती है तो यहाँ जीवाणुओं की क्रिया से इसका भी भंजन होता है। इससे वसाम्ल बनते हैं जो शरीर द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं। लघु अंत्र में यही वसाम्ल वसा के टूटने से बनता है।

मनुष्य में यह अंग चार क्रियाएँ करता है। सबसे पहले इसकी भित्तियों की ग्रंथियाँ एक ऐसी चिकनी वस्तु बनाती हैं जिससे मल में चिकनाई आ जाती है और वह सुगमता से बाहर निकल जाता है। दूसरे बृहद् अन्त्र कुछ वस्तुओं को शरीर से निकाल करके मल में मिला देता है। लोह, केलशियम, मेगनेशियम, फास्फोरस इत्यादि को यह शरीर से निकाल देता है। कुछ ओषधियाँ भी शरीर को इसी अंग द्वारा त्याग करती हैं। पारा यदि ओषधि की भाँति खाने को दिया जाता है तो वह बृहद् अन्त्र द्वारा शरीर से निकल कर मल में मिलता है। तीसरी क्रिया, जो ऊपर कही जा चुकी है, वह भी इसी स्थान में होती है। सेल्यूलोज़ के भंजन से वसाम्ल बनते हैं। इनके अतिरिक्त मीथेन नामक गेस, कार्बन-डाई-ओक्साइड, और हाइड्रोजन-सल्फाइड भी बनते हैं।

चौथी जो इसकी सबसे मुख्य क्रिया है वह जल-शोषण की शक्ति है। चौबीस घंटे में बृहद् अन्त्र द्वारा ४०० सी० सी० * जल का शोषण होता है। किंतु यहाँ किसी भाँति की भी पोषक वस्तु का शोषण होता हुआ नहीं मालूम होता। केवल ग्लूकोज एक ऐसी शर्करा है जिसका कुछ शोषण हो जाता है। जितनी मात्रा का शोषण होता है उससे शरीर को कुछ भी लाभ की आशा नहीं की जा सकती।

* १६ बूँद की एक सी० सी० होती है।

रखने वाली कुछ अत्यन्त जटिल और महत्वपूर्ण समस्याओं ने आपका ध्यान विशेषरूप से आकर्षित किया। इनमें से कुछ समस्याओं को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक लोग कई वर्षों से प्रयत्नशील थे। १६२० ई० में डा० साहा के नवीन सिद्धान्त * द्वारा यह समस्यायें बड़ी खूबी से हल हो गईं। आपने यह सिद्ध किया कि अधिक ऊंचे तापक्रमों पर तथा अल्प दबाव पर सूर्य के वर्णमण्डल † के परमाणु आयोनाइज्ड होते हैं और इसी कारण सूर्य के वर्णमण्डल के रश्मिचित्रों में कुछ रेखायें मोटी देख पड़ती हैं। आपने यह भी सिद्ध किया कि किसी विशेष गैस में किसी दिये हुए दबाव और तापक्रम पर कितना गैस आयोनाइज्ड ‡ हो जायगा इसके लिए आपने निम्नलिखित समीकरण भी बनाया।

$$\frac{\text{दय}^{2}}{१ - \text{य}^{२}} = \text{त}$$

यहाँ द = दबाव, य = वह भिन्न जो बतलाता है कि कुल गैस का

---

* Selective Radiation Pressure & its application to Astrophysics.

† Chromosphere.

‡ वायु के परमाणुओं का इस प्रकार विन्यास हो जाना कि उनके द्वारा बिजली चल सके आयोनिज़ेशन (Ionisation) कहलाता है। यह विन्यास रसायनिक आयोनिज़ेशन से भिन्न है। जिस वायु के परमाणुओं का विन्यास हो जाता है उसके लिए कहा जाता है कि वायु आयोनाइज़्ड हो गई। सूर्य की ज्वालाओं से भी आयोनिज़ेशन होता है।

कितना भाग आयोनाइज्ड हो गया है और न केवल गैस और उसके तापक्रम पर निर्भर है।

डा० साहा के इसी समीकरण से ज्योतिषियों की अनेक उलझनें सुलझ गईं। आपके इस सिद्धान्त से पहिले इंगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर नारमन लाकियार का सिद्धान्त प्रचलित था उसके अनुसार रश्मि-चित्र की रेखाओं का मोटी हो जाने का कारण अधिक तापक्रम बतलाया जाता था। इससे यह असम्भव परिणाम निकलता था कि सूर्य के वर्णमण्डल में क्रमशः ऊपर की ओर तापक्रम बढ़ता ही जाता है। डाक्टर साहा के सिद्धान्त से वर्णपट की रेखाओं के मोटी होने के शुद्ध कारण का पता लग गया। क्रमशः ऊपर बढ़ने से दबाव कम हो जाता है और इसलिए आयोनिजेशन के कारण रेखायें मोटी हो जाती हैं। इस समस्या को हल करने के अतिरिक्त यह सिद्धान्त वर्णमण्डल, सूर्य, सूर्यकलंक और सूर्य के पलटाऊ तह * के रश्मिचित्रों के सूक्ष्म अन्तरों को प्रख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर मिचल † के कथनानुसार सुन्दर और स्पष्ट रीति से समझाता है। तारों के रश्मिचित्रों से उनकी दूरी नापने में भी डाक्टर साहा का यह सिद्धान्त बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

वास्तव में डा० साहा के सुप्रसिद्ध तापयापन ‡ सम्बन्धी सिद्धान्त एवं तत्सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्यों का श्री गणेश भी इसी सिद्धान्त से होता है।

---

* Reversible layers.

† Mitchell : Eclipses of the Sun.

‡ Thermal Ionisation.

इंगलैंड में अन्वेषण

इस सर्वथा मौलिक सिद्धान्त की महत्ता को स्वीकार करते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको उसी वर्ष यूरोप-यात्रा के लिए एक विशेष ट्रवेलिंग फैलोशिप * प्रदान की। यह पुरस्कार लगभग १००००) का था। इससे आपको यूरोप जाकर पाश्चात्य देशों के अग्रगण्य वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने का सुयोग प्राप्त हुआ। उसी वर्ष आपको ग्रिफिथ स्मारक पुरस्कार † भी प्रदान किया गया।

१६ सितम्बर १६२० को आपने इंगलैंड के लिए प्रस्थान किया। वहां आप जनवरी १६२१ तक लन्दन के सुप्रसिद्ध इम्पीरियल कालेज आफ साइंस में प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो० फाउलर की प्रयोग शाला में कार्य करते रहे। वहां रह कर आपने प्रो० फाउलर तथा दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा नक्षत्रों के रश्मिचित्रों सम्बन्धी कार्यों की अपने सिद्धान्त की दृष्टि से व्याख्या और विवेचना की और अपने स्वतंत्र अन्वेषण के आधार पर 'नक्षत्रों के रश्मि-चित्र का भौतिक सिद्धान्त' ‡ नाम से एक और नवीन सिद्धान्त प्रकाशित किया।

जर्मनी में

आपकी इस नवीन खोज से विज्ञान संसार में हलचल मच गई और अन्वेषण कार्य के लिए एक बिलकुल ही नवीन मार्ग प्रशस्त हो गया।

---

* Travelling fellowship.

† Griffith-memorial Prize.

‡ Physical Theory of Stellar Spectra.

यह अनुमान लगाया गया है कि एक मनुष्य जो कोई विशेष परिश्रम नहीं करता चौबीस घंटे में ४१० केलोरी के बराबर उष्णता का व्यय करता है। क्योंकि विश्राम की अवस्था में भी शरीर के अंगों में कर्म हुआ ही करते हैं। इस क्षति को पूर्ण करने के लिये ऐसे भोजन की आवश्यकता है, जो कम-से-कम छः गुनी उष्णता उत्पन्न कर सके अर्थात् २५०० केलोरी उष्णता उत्पन्न करे। जो अधिक परिश्रम करनेवाले लोग हैं, उनको इससे अधिक भोजन की आवश्यकता है। नौका-विभाग (Navy) के सैनिकों को ४००० केलोरी के मूल्य का भोजन प्रतिदिन दिया जाता है।

उत्तम भोजन—यह उष्णता यदि हम चाहें, तो केवल एक ही प्रकार के भोजन से प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु अनुभव यह सिखाता है कि ऐसा करने से मनुष्य की शक्तियों का ह्रास होता है। इस प्रकार का भोजन उत्तम नहीं है। भोजन में सब अवयव रहने चाहिए। उत्तम भोजन, प्रोटीन, कर्बोज, वसा, लवण और जल से मिलकर बनता है। इन अवयवों के अतिरिक्त उसमें विटेमीन भी काफी मात्रा में रहनी चाहिए। आगे चलकर विटेमीन का भी वर्णन किया जायगा।

प्रोटीन के जो पहले गुण और कार्य बताए जा चुके हैं, उनके अनुसार प्रोटीन शरीर के लिये बहुत आवश्यक वस्तु है। शरीर के ततुओं की क्षति और शरीर के रसों को बनाने के लिये प्रोटीन का भोजन में उपस्थित होना अनिवार्य है। प्रोफेसर चिटिंडन (Chittenden) के अनुसार एक मनुष्य के लिये १ छटाँक प्रोटीन प्रतिदिन काफी है। एक छटाँक प्रोटीन पाव भर मांस, या ९ मुर्गी के अंडे, या पाव भर सूखी हुई मटर, या ४ सेर अनन्नास, या १७ सेर सेब या ४½ सेर दूध से मिल सकता है।

अपने सिद्धान्त की व्यवहारिक सत्यता प्रमाणित करने के लिए यहां आपने प्रयोग आरम्भ किये और अपने तरुण सहकारियों के साथ कई और नवीन अन्वेषणों का सूत्रपात किया।

प्रयाग विश्वविद्यालय में

१९२३ में आप प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। यहां अपना अन्वेषण कार्य जारी रखने के लिए आपको और भी अधिक सुविधायें मिलीं। आपने भौतिक विज्ञान के लिए एक नवीन अन्वेषणशाला का संगठन किया और में सर्वथा नवीन अन्वेषणों का श्रीगणेश किया। इस पद पर आप लगातार १५ वर्ष तक (१९३८ तक) प्रशंसनीय ढंग से काम करते रहे। जुलाई १९३८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के आचार्य प्रोफेसर देवेन्द्रमोहनबसु के सुविख्यात बसु रिसर्च इंस्टिट्यूट के डाइरेक्टर नियुक्त हो जाने पर डा० मेघनाथ साहा भौतिक विज्ञान के पलित आचार्य नियुक्त किये गये। प्रो० देवेन्द्र मोहन के पूर्व इस पद पर सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् काम करते थे।

वैज्ञानिक अनुसन्धान

ज्योतिर्भौतिक के अतिरिक्त डा० साहा ने भौतिक विज्ञान के दूसरे विभागों में भी उल्लेखनीय कार्य किये हैं। वास्तव में जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है डा० साहा का खोज सम्बन्धी कार्य १९१७ से आरम्भ होता है। १९१७ ई० में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय के नवसंगठित साइंस कालेज में सबसे पहले विद्युतसिद्धान्तों पर कार्य

आरम्भ किया था। इस विषय में आपने जो सन्धान किये थे, उनके उपलक्ष्य में आपको डी० एस-सी० की उपाधि प्रदान की गई। १९१८ ई० में आपने प्रकाश विज्ञान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण मौलिक प्रयोग किये।

यहाँ यह बतलाना अप्रसांगिक न होगा कि जब प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है तो मेक्स्वैल के सिद्धान्त के अनुसार यह प्रमाणित किया जा सकता है कि उस वस्तु पर दबाव पड़ेगा। पर यह दबाव इतना सूक्ष्म होता है कि उसे नापना बहुत ही कठिन है। प्रो० लैबड्यू ने पहले पहल यह प्रयोग किया था। डा० साहा ने अपने सहकारी श्री चक्रवर्ती के साथ इस प्रयोग को अधिक सूक्ष्म और प्रमाणिक रीति से किया। १९२० में उन्होंने प्रकाश के इसी दबाव का उपयोग सूर्य की भौतिक विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में किया। इन्हीं प्रयोगों से आपकी सुप्रसिद्ध ज्योतिर्भौतिक खोजों का भी श्रीगणेश होता है।

अपनी खोजों से आपने यह सिद्ध किया कि प्रकाश का दबाव सब पदार्थों पर एक सा नहीं पड़ता। दबाव कुछ तत्वों के अणुओं पर अधिक और कुछ पर कम पड़ता है। सूर्य के तापक्रम के कारण सूर्य के प्रकाश में कुछ रंग विशेष तीव्र होते हैं, यदि किसी विशेष तत्व के परमाणु उन्हीं के आस-पास शोषण करने लगें तो फिर वही परमाणु इतनी शक्ति ले लेने के कारण ऊपर उठ जायँगे। प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी यह खोज अपने ढंग की अकेली ही है। इसके आधार पर आजकल और भी प्रयोग किये जा रहे हैं।

ज्योतिष सम्बन्धी भौतिक विज्ञान में तो आजकल संसार की विभिन्न प्रयोगशालाओं में अधिकांश कार्य आपके नवीन सिद्धान्तों ही के अनुसार हो रहा है। आपका 'तापयापन' सिद्धान्त विज्ञान संसार में विशेष महत्व की दृष्टि से देखा जाता है। इनके अतिरिक्त आपके सक्रिय नोषजन,* वर्णपट विज्ञान, परमाणु की रचना,† डाइरेक का ऋणाणु सिद्धान्त‡ विकिरण दबाव/ और धातु लवणों के रंग‖ सम्बन्धी कार्य भी विशेष उल्लेखनीय हैं। इधर कुछ वर्षों से आप ऊर्ध्ववायुमण्डल के विषय में विशेष रुचि लेने लगे हैं और अपनी मौलिक गवेषणाओं के द्वारा विज्ञान संसार को इस विषय की भी बहुत नवीन और महत्व की बातें बतलाई हैं। १६३५ ई० में विश्वभ्रमण करते समय आपने पश्चिम के उत्कृष्ट वैज्ञानिकों से ऊर्ध्ववायुमण्डल सम्बन्धी सिद्धान्तों और विचारों के बारे में समुचित परामर्श और वाद-विवाद किये तथा उनकी श्रेष्ठ प्रयोगशालाओं में इस विषय पर यथेष्ट कार्य किया। यूरोप की प्रयोग-शालाओं के अतिरिक्त आपने अमेरिका के हारवेर्ड कालेज की सुप्रसिद्ध वेधशाला में भी कुछ दिन तक रह कर उपयोगी अन्वेषण किये।

उन्हीं दिनों आपने अमेरिका के एक विश्वविद्यालय के लिए ऊर्ध्वाकाश से आकाश और नक्षत्रों को निरीक्षण करने के लिए एक नवीन ढंग की वेधशाला बनाने की योजना तैयार की। इस योजना

---

* Active Nitrogen. † Molecular Structure.

‡ Dirac's theory of the electron

/ Radiation pressure, ‖ Colours of inorganic salts.

के अनुसार कार्य होने पर ज्योतिष और भौतिक विज्ञान सम्बन्धी कई नई बातें मालूम होने की आशा है।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक, सापेक्षवाद सिद्धान्त के प्रणेता प्रोफेसर आयन्स्टीन, अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० रसेल तथा जर्मनी के प्रो० एमडेन ने आपकी खोज 'उच्चताप क्रमों पर तत्वों के वर्त्ताव' की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

रायल सोसाइटी के फैलो

प्रयाग विश्वविद्यालय में कार्य आरम्भ करने के बाद ही डा० साहा अपने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्यों के लिए नित नवीन सम्मानों से विभूषित किये जाने लगे। अपनी महत्वपूर्ण मौलिक खोजों के लिए आप शीघ्र ही भारत ही नहीं, संसार भर के वैज्ञानिकों में प्रख्यात हो गये। इन खोजों के महत्व से प्रभावित होकर देश विदेश की प्रमाणिक वैज्ञानिक संस्थायें आपके प्रति समुचित सम्मान प्रदर्शित करना अपना अहोभाग्य समझने लगीं। १६२७ ई० में विश्वविख्यात वैज्ञानिक संस्था रायल सोसाइटी ने आपके सुप्रसिद्ध नात्क्षत्रिक रश्मिचित्र सिद्धान्त * सम्बन्धी महत्वपूर्ण मौलिक वैज्ञानिक कार्य के उपलक्ष्य में आपको अपना फैलो निर्वाचित किया। इस पद के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मौलिक कार्य करने वाले कुछ उत्कृष्ट वैज्ञानिक ही चुने जाते हैं। भारत में इस सम्मान को प्राप्त करने वाले आप चौथे वैज्ञानिक थे। आपके पूर्व यह सम्मान केवल श्री रामानुजन्, सर जगदीशचन्द्र बसु

---

* Theory of Stellar Spectra.

तथा सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन् को मिला था। आपके बाद तीन भारतीय वैज्ञानिक और इस सम्मान से सम्मानित किये जा चुके हैं डा० बीरबल साहनी, डा० के० एस० कृष्णन् और डा० होमी जे० भाभा इन तीनों के जीवन चरित्र और वैज्ञानिक कार्यों के संक्षिप्त विवरण पुस्तक के अगले अध्यायों में दिये गये हैं।

विदेशों में सन्मान

उसी वर्ष आप इटली में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक-विज्ञान कानफरेंस में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए आमंत्रित किये गये। वहां वोल्टा शताब्दि उत्सव में भी आपने सक्रिय भाग लिया और नाक्षत्रिक रश्मिचित्र सिद्धान्त के बारे में व्याख्यान दिये।

पूर्ण सूर्य-ग्रहण की जांच के लिए नार्वे जाने वाले वैज्ञानिकों के दल के साथ आप नार्वे भी गये। कुछ समय पूर्व आपने अपने सिद्धान्तों के आधार पर सूर्य रश्मि चित्रों के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की थी इस जांच के परिणाम स्वरूप वह सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई।

इंगलैंड की इंस्टिट्यूट आफ फिजिक्स तथा उसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिः सभा ने भी आपको अपना फैलो मनोनीत किया। १९३० में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी के भी आप फैलो निर्वाचित किये गये।

विज्ञान कांग्रेस के सभापति

१९३४ में आप भारतीय विज्ञान कांग्रेस के बम्बई में होने वाले इक्कीसवें अधिवेशन के सभापति निर्वाचित किये गये। उससे पूर्व १९२६ ई० में आप कांग्रेस के भौतिक और गणित विभाग के अध्यक्ष भी

बनाये जा चुके थे। बम्बई अधिवेशन के अवसर पर डा० साहा ने बहुत ही विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया था। सैद्धान्तिक महत्व की बातें बतलाने के साथ ही आपने भारत में वैज्ञानिकों के संगठन और उनके वैज्ञानिक कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए भी कई व्यवहारिक बातें सुझाईं थीं। आपने इस विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि और असंख्य नक्षत्रों के बारे में बहुत सी बातें बतलाईं थीं। आज कल नक्षत्रों के सम्बन्ध में भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के समक्ष जो अनेक समस्याएँ उपस्थित हैं जैसे—(१) असंख्य नक्षत्रों की उत्पत्ति कैसे होती है, और उनके जीवन का रहस्य क्या है? (२) नक्षत्र अपनी शक्ति को किस प्रकार संचित रखते हैं? (३) नक्षत्रों से जो विकिरण निकल कर आकाश में आता है, उसका क्या होता है? (४) इस विश्व का अन्तिम परिणाम क्या होगा?—उन पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला था। अपने भाषण के अन्त में डा० साहा ने भारत में 'इंडियन एकेडेमी आफ सायंस' नामक संस्था स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। इसका आदर्श आपने इंगलैंड की रायल सोसाइटी और जर्मनी की प्रशियन सोसाइटी बतलाया। आपकी इस योजना का अच्छा स्वागत किया गया और उसी अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से इस प्रकार की संस्था की स्थापना के बारे में अपनी राय देने के लिए एक उपसमिति नियुक्त कर दी गई। इस कमेटी ने १९३५ के कलकत्ता अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट और सिफारिशें पेश कीं और उसी अवसर पर ७ जनवरी १९३५ ई० को कलकत्ता में 'नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज़' की स्थापना की गई।

हैं। आपके शिष्यों में से कई को नवीन वैज्ञानिक खोजों पर डी० एस-सी० की उपाधि मिल चुकी है। आपके शिष्यों ने भारत ही नहीं वरन् इंगलैंड में भी समुचित सम्मान प्राप्त किया है। कई विद्यार्थी विलायत की आई० सी० एस० परीक्षा में भौतिक विज्ञान को लेकर इंगलैंड के विद्यार्थियों के मुकाबिले में सर्वोच्चस्थान प्राप्तकर चुके हैं। कई एक शिष्य भारतीय विश्वविद्यालयों में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काम कर रहे हैं तथा स्वतंत्र रूप से अन्वेषण कार्य का संचालन कर रहे हैं। वास्तव में आपके ये शिष्य राष्ट्र को आपकी सबसे बहुमूल्य देन है।

भौतिक विज्ञान पर आपने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की है। ये ग्रन्थ भारत ही नहीं वरन् विदेशी विश्वविद्यालयों में भी पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाये जाते हैं। देश विदेश के प्रमुख वैज्ञानिकों ने इन ग्रन्थों की यथेष्ट प्रशंसा की है। इन पुस्तकों में 'ताप'* और आधुनिक भौतिक विज्ञान † नामकी दो पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय है।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

अंग्रेजी के साथ ही जर्मन, फ्रेंच तथा और भी कई विदेशी भाषाओं का आप को अच्छा ज्ञान है। इन भाषाओं में प्रकाशित होने वाले वैज्ञानिक साहित्य का आप बराबर अध्ययन करते रहते हैं। फलस्वरूप आपको भौतिक विज्ञान के प्रत्येक पहलू पर और गणित तथा रसायन के कुछ अंशों पर संसार भर में क्या हो रहा है एवं नवीन खोजों

---

* Theory of Heat.

† Modern Physics.

के लिए कहां स्थान है इत्यादि का पूर्ण ज्ञान रहता है। आप इन बातों में अपने शिष्यों को बराबर बहुमूल्य परामर्श देते रहते हैं।

आपकी सूझ अद्वितीय है और स्मरण शक्ति ग़ज़ब की है। पढ़ाते समय और व्याख्यान देते समय देखा जाता है कि संख्याएँ और अंक एक के बाद एक आप धारा प्रवाह रूप से कहे चले जाते हैं। बरसों पहले वैज्ञानिक साहित्य में कोई लेख प्रकाशित हुआ हो, पर समय आने पर वह आपको ऐसे ही स्मरण रहता है जैसे कल की बात हो, नये विचारों का वे चाहे अपने शिष्यों ही के क्यों न हो—स्वागत करने के लिए आप सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

भौतिक विज्ञान के साथ ही आपको दूसरे विज्ञानों पर भी अच्छा अधिकार है। विद्यार्थी जीवन में आपको गणित में विशेष अभिरुचि थी। एम० एस सी० भी आपने इसी विषय में किया। परन्तु विज्ञान साधना आरम्भ करने पर अन्वेषण आरम्भ किया भौतिक विज्ञान में, और आज आप भारत ही नहीं वरन् संसार भर में ज्योतिर्भौतिक विज्ञान के सर्व श्रेष्ठ पंडितों में गिने जाते हैं। रसायन विज्ञान में भी आपकी अच्छी पैठ है इनके अतिरिक्त आप दूसरे विज्ञानों के बारे में भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए विशेष उत्सुक रहते हैं।

विज्ञान के अतिरिक्त आप प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में भी रुचि लेते हैं। भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास का समुचित अध्यन करने के साथ ही आपको प्राचीन यूनान, रोम और मिश्र के इतिहास एवं संस्कृति का भी अच्छा ज्ञान है। वैज्ञानिक तथ्यों के समान ही आप को ऐतिहासिक घटनायें भी तिथियों

सहित स्मरण रहती हैं। इतिहास और विज्ञान के संयुक्त प्रेम से प्रेरित होकर आपने प्राचीन काल में भारत, मिश्र, यूनान और रोम प्रभृति देशों में विज्ञान की प्रगति के बारे में उल्लेखनीय ज्ञान प्राप्त किया है।

औद्योगीकरण के समर्थक

डा० साहा ने वैज्ञानिक तथ्यों के केवल सैद्धान्तिक अन्वेषण ही नहीं किए हैं, आपने प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास एवं विज्ञान का अध्ययन करके देश के व्यवसाय और व्यापार को अधिक सुचारु तथा सुसंगठित रूप से चलाने और अधिक उपयोगी बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण एवं व्यवहारिक योजनायें भी तैयार की हैं। इस बात पर आप बराबर ज़ोर देते रहते हैं कि विश्वविद्यालयों को अपने अन्वेषण और अनुसन्धान संबन्धी कार्य केवल सैद्धांतिक महत्व की बातों तक सीमित न रखना चाहिये अब वह समय आगया है जब वैज्ञानिक अन्वेषण और संधान से देश की औद्योगिक समस्याएँ सुलझाई जाँय।

आपका यह निश्चित और स्पष्ट मत है कि देश की निर्धनता एवं बेकारी को दूर करने तथा देश की रक्षा के साधन जुटाने के लिए बड़े बड़े उद्योग व्यवसाइयों का संगठन एवं संचालन अनिवार्य है। १६३८ ई. में नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज आफ इंडिया के कलकत्ता अधिवेशन के सभापति पद से अपने भाषण में इस विषय की बहुत महत्वपूर्ण एवंविस्तृत विवेचना की थी। आपका कहना है कि दूसरे उन्नत देशों क अपेक्षा भारत अभी २०० गुना पिछड़ा हुआ है। इस बीसवीं शताब्द में भी भारत मध्ययुग ही के समान जीवन यापन कर रहा है। यहाँ न

शक्ति है और न संगठन। सारा का सारा देश हर किसी से शोषित किये जाने के लिये तैयार देख पड़ता है इस गिरी हुई दशा को सुधारने के लिये सरकारी और ग़ैर सरकारी दोनों ही-ओर से जो प्रयत्न हुये हैं वे सर्वथा अपर्याप्त एवं असन्तोषजनक है। रेडियो का उदाहरण देते हुये आपने बतलाया था कि यदि आल इंडिया रेडियो ने अपनी वर्तमान नीत में शीघ्र ही क्रान्तिकारी परिवर्तन न किए तो भारत में पाश्चात्य देशों सरीखा रेडियो का प्रचार होने में ६००० वर्ष लगजांयगे। यही दशा और दूसरे विभागों की भी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि सरकारी नीति एवं गैर सरकारी प्रयत्नों में अमूल्य परिवर्त्तन न हुये तो भारत को इंगलैंड, अमेरिका एवं जापान जैसे समृद्ध और उन्नत अवस्था तक पहुंचने में १६०० वर्ष लग जाएगें।

देश में बड़े बड़े उद्योग धन्धों के शीघ्र अति शीघ्र संगठन और संचालन पर ज़ोर देते हुए आपने जो विचार प्रकट किये हैं तर्क किये हैं यहां उनका सारांश देना अप्रासंगिक न होगा।

यह बात सभी जानते हैं कि भारत कृषि प्रधान देश है। १६३१ की जन गणना के अनुसार भारत की ६६ प्रतिशत आबादी खेती किसानी में लगी है अर्थात् ६६ प्रतिशत जनता किसान है और देश के लिए खाद्य सामग्री प्रस्तुत करने में लगी रहती है। शेष उनमें केवल ११ प्रतिशत जनता नगरों में रहती है अर्थात् उद्योग धन्धों एवं दूसरे पेशों में लगी हुई है। बाकी २३ प्रतिशत में गाँव के कारीगर, दूकानदार, साहूकार और ज़मीदार प्रभृति लोग तथा ऐसे देश वाले लोग शामिल हैं जो अपनी आजीविका के लिए गावों पर निर्भर हैं।

'यह बात भी सभी स्वीकार करेंगे कि पेशों के अनुसार जिस तरह आबादी यहां वितरित है, वह बहुत ही असन्तोषजनक एवं अस्वास्थ्य प्रद है। चीन जैसे पिछड़े हुए देशों को छोड़कर संसार के और किसी भी देश में इतने अधिक किसान नहीं हैं और ये किसान भी क्या अच्छी तरह से गुजर बसर कर पाते हैं? कुछ झोपड़ियां जिनमें न दरवाजे हैं और न खिड़कियां, कुछ चटाइयां और चीथड़े, कुछ क्षुधातुर जानवर, क्षुधा और ऋण तथा आये दिन घर दबाने वाले रोग यही सब उनकी सम्पदा है।'

'किसानों की इस हीनावस्था को सुधारने और उनके रहन सहन के ढंग को ऊंचा उठाने के लिए आज सभी उत्सुक और आतुर हैं। परन्तु यह हो कैसे? मध्यम श्रेणी की बेकारी को दूर करने के लिए कुछ लोगों ने शहर के रहने वालों को देहातों में जाकर बसने की सलाह दी है। परन्तु नागरिकों के देहातों में जाकर बस जाने से यह समस्या न सुलझेगी। इससे तो दुख दारिद्रय में फँसे हुए गांवों की स्थिति और अधिक शोचनीय ही होगी और उनकी मुसीबतें बहुत ज्यादा बढ़ जांयगी। खेती किसानी के तरीकों को सुधारना और उन्नत बनाना अवश्य ही उचित है और इससे खाद्य सामग्री तथा खेती से पैदा होने वाली दैनिक जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ जैसे कपास प्रचुर मात्रा में और सस्ती मेल सकेंगी परन्तु फिर भी इससे निर्धनता और बेकारी की समस्या तनिक भी तो हल न हो सकेगी। खेती किसानी की रीतियों के सुधारने और उसकी निपुणता के बढ़ाने का स्पष्ट परिणाम यह होगा कि आज कृषि से जो उत्पत्ति हो रही है और उसके उत्पादन में जितने आदमी लगे हुये हैं उसके आधे आदमी ही उतना उत्पादन

करने लगेंगे। आजकल किसानों की संख्या कुल आबादी का लगभग ६६ प्रतिशत है। ये सभी लोग अति प्राचीन रीतियों से खेती करते हैं। यदि सुधरी हुई वैज्ञानिक रीतियों को व्यवहार में लाया जाय तो सारे देश की आवश्यकताओं से भी कहीं अधिक मात्रा में यह सब सामग्री केवल ३० प्रतिशत आबादी द्वारा उत्पन्न की जा सकेगी। इससे खेती करने वाली लगभग ३६ प्रतिशत आबादी बेकार हो जायगी। मध्यम श्रेणी की वर्त्तमान बेकारी के साथ मिलकर यह नवीन बेकारी स्थिति को और ज्यादा बिगाड़ देगी।'

'इसके साथही यदि जनता की अधिक अच्छे ढंग से रहने की भावनाओं का विश्लेषण किया जाय तो पता लगता है कि सभी चाहते हैं कि उनके खाने-पीने का उचित प्रबन्ध हो। परन्तु यह तो उनकी अल्पतम मांग है। हरेक व्यक्ति चाहता है कि वह अच्छे कपड़े पहने और अच्छे मकान में रहे, वह स्वयं और उसका परिवार अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सके, काम करने के बाद उसे समुचित अवकाश मिले, दास्यवृत्ति से छुटकारा मिले और वह अपने जीवन का पूर्ण उपभोग कर सके। इन मांगों की पूर्ति के लिए देश की वर्त्तमान औद्योगिक उत्पत्ति को दस-बीस गुना अधिक बढ़ाना होगा, इसके उद्योग धन्धों का उचित संगठन करना होगा और गांवों की बहुत बड़ी आबादी को खेती किसानी के काम से हटा कर उद्योग धंधों में लगाना होगा। वास्तव में गांवों के सुधार का एक मात्र उपाय गांव वालों को अधिक संख्या में नगरों में आबाद कराना है और औद्योगिक कार्य के लिए अच्छी संख्या में नवीन नगरों का निर्माण करना है।'

डा० साहा का कहना है कि इतिहास से भी हमें यही शिक्षा मिलती है कि जो जाति औद्योगिक उत्पत्ति के नवीनतम और उन्नत साधनों को व्यवहार में लाने से चूक जाती है वह अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ हो जाती है।

भारत को उन्नतिपथ पर अग्रसर करने के लिए उसके उद्योग धन्धों का संगठन उत्पत्ति के नवीनतम साधनों के आधार पर करना अनिवार्य है। भारत संसार के उन तीन देशों (दूसरे दो रूस और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका) में है जहाँ औद्योगीकरण के नवीनतम साधनों को व्यवहार में लाने के लिए प्रकृतप्रदत्त प्रचुर सामग्री, शक्ति उत्पादन के साधन, खनिज एवं वनस्पति आदि का अक्षय भण्डार भरा हुआ है। जबतक इसका उचित प्रबन्ध न होगा यहाँ की बेकारी और ग़रीबी-की समस्याएं किसी भी तरह सुलझ न सकेंगी।

औद्योगीकरण की सफलता और संगठन के लिए सस्ती और सुलभ बिजली का बाहुल्य होना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए भी डा० साहा के अनुसार देश में यथेष्ट प्राकृतिक साधन प्रस्तुत हैं। परन्तु उनका अभी तक समुचित उपयोग नहीं किया जारहा है। जो बिजली उपलब्ध भी है वह जनता ही को महँगी नहीं दी जाती वरन् उद्योग धन्धों को भी बहुत ज्यादा लागत में दी जाती है। विदेशों की तुलना में भारत की सस्ती से सस्ती बिजली का मूल्य चौगुने के लगभग होता है। बिजली का इतना अधिक महँगा होना उद्योग धन्धों की सफलता में ज़बरदस्त बाधा उपस्थित कर रहा है। इस महँगाई और बिजली कम्पनियों द्वारा जन साधारण के शोषण को दूर करने के लिए डा० साहा विगत कई वर्षों से आन्दोलन कर

रहे हैं और इन प्रयत्नों के फल स्वरूप व्यवसायियों को बिजली कम्पनियों से कुछ सुविधायें मिलने भी लगी हैं।

आपने देश की नदियों के बहते पानी का सदुपयोग करने की भी योजना तैयार की हैं। इस पानी को काम में लाकर देश के कोने कोने में सस्ती बिजली पहुंचाने का प्रबन्ध किया जा सकता है। नदियों का पूरी तौर पर सदुपयोग करने के लिए आप नदी अन्वेषणशाला * की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। १६३८ में नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज़ आफ इंडिया के सभापति पद से आपने इस विषय की भी विस्तृत विवेचना की थी और इस प्रकार की अन्वेषणशालाओं की आवश्यकता को भली भांति समझाया था।

इधर वर्त्तमान महायुद्ध के आरम्भ होने के कारण विदेशों से बहुत से ज़रूरी वैज्ञानिक उपकरण आदि आना बहुत कठिन हो गया है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ बहुत ही ज़रूरी और नाज़ुक यंत्र आप स्वयं अपनी प्रयोगशाला में अपनी देख रेख में तैयार कराने के प्रयत्न कर रहे हैं।

सादा जीवन

इतने बड़े वैज्ञानिक होते हुए भी आप बहुत सादगी के साथ रहते हैं। अभिमान तो आपको छू तक नहीं गया है। अपनी धुन के पक्के हैं और जिस समय अपने काम में व्यस्त होते हैं या गहन समस्याओं पर विचार करने में मग्न होते हैं आपको दुनिया की किसी भी बात की

---

* River Physics Laboratories

सुध-बुध नहीं रहती। अध्ययन का आप को बड़ा शौक है और विज्ञान एवं इतिहास के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी समय निकाल कर बराबर ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं। ज्ञान प्राप्ति के समय आप अपना बड़प्पन बिलकुल भूल जाते हैं और अपने से छोटों से भी नवीन बातें सीखने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

वैज्ञानिक संस्थाओं के निर्माता

स्वयं उत्कृष्ट एवं भौतिक वैज्ञानिक कार्य करने के साथ ही आप तरुण वैज्ञानिकों को संधान कार्य के लिए बराबर प्रोत्साहित करते रहते हैं। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर तथा भारत में विज्ञान की उन्नति का पथ प्रशस्त करने के विचार से आपने भारत में कई प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं के निर्माण और संगठन में प्रमुख भाग लिया है।

इन संस्थाओं में प्रयाग की नेशनल एकेडेमी आफ साइंसेज़, इंडियन फिज़ीकल सोसाइटी और नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज़ आफ इंडिया के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नेशनल एकेडेमी के आप संस्थापक सभापति भी रह चुके हैं। यह संस्था केवल युक्तप्रांत ही में नहीं वरन् सारे उत्तर भारत में उच्चकोटि के अन्वेषण कार्य को विशेष-रूप से प्रोत्साहित कर रही है। तरुण वैज्ञानिकों को अन्वेषण कार्य करने के लिए इसने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। इस संस्था के सभापति रहने के अतिरिक्त, आप इंडियन साइंस कांग्रेस, इंडियन फिज़ीकल सोसाइटी तथा नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज के भी सभापति निर्वाचित किये जा चुके हैं।

प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना, संगठन और संचालन में प्रमुख भाग लेकर आपने केवल विज्ञान ही की नहीं वरन् समस्त राष्ट्र की बहुमूल्य सेवायें की हैं। वास्तव में डाक्टर साहा के कार्य केवल प्रयोगशाला ही तक सीमित नहीं हैं। आप अपनी विज्ञान साधना को राष्ट्रहित के कार्यों में लगाने को भी सदैव तत्पर रहते हैं। जब जब अवसर मिलते हैं, स्वयं ऐसे कार्यों में भाग लेने के साथ ही आप अपने सहयोगी तथा दूसरे श्रेष्ठ वैज्ञानिकों को भी राष्ट्रीय अभ्युत्थान के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। पं० जवाहर-लाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने जो राष्ट्र निर्माण समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) संगठित की थी उसमें डाक्टर साहा प्रमुख भाग लेते रहे हैं।

शिक्षित समाज में विज्ञान का प्रचार करने, सरकारी अधिकारियों पूंजीपतियों एवं व्यवसायियों का ध्यान वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित करने के लिए तथा उद्योग धन्धों एवं वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य में सामञ्जस्य स्थापित करने के उद्देश्य से १९३५ में आपने अपने अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय से भारतीय वैज्ञानिक समाचार समिति * का संगठन किया है। इस समिति की ओर से 'साइंस एंड कलचर,' † नाम की श्रेष्ठ वैज्ञानिक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक शुरू से लेकर अब तक बराबर आप ही हैं।

---

* Indian Science News Association.

† Science & Culture.

उत्पन्न हुए हैं । ३२० दिन पर प्रसव होते हुए भी देखा गया है । गर्भकाल का कम व अधिक होना मासिक ऋतु के काल पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यह साधारणतया देखा जाता है कि जिनका मासिक काल कम है, स्राव २४ व २५ वे दिन पर होता है, उनका गर्भकाल भी २८ व २९ दिन पर स्राव होनेवाली स्त्रियों से कम होता है।

प्रसव-दिवस की गणना—यह मालूम करने के लिये कि प्रसव कौन से दिवस पर होगा, अंतिम मासिक स्राव के दिनो से हिसाब लगाया जाता है। उसके लिये यह मान लिया जाता है कि अंतिम स्राव के पश्चात् ही सभोग से गर्भाधान हो गया था। अतएव अंतिम स्राव के प्रथम दिन से गणना आरंभ करके प्रथम चार दिन स्राव के लिये छोड़ दिए जाते हैं । इसके पश्चात् तीन दिन और छोडे जाते है। यह माना जाता है कि गर्भाधान इन तीन दिनों के पश्चात् हुआ है, इस प्रकार स्राव के प्रथम दिन से आरंभ करके सात दिन छोड़ देते हैं। इन सात दिनों को २७३ दिनों में जोड देते हैं, जो कि वह समय समझा जाता है, जब कि गर्भ गर्भाशय के भीतर रहता है। इस प्रकार अंतिम मासिक स्राव के प्रथम दिन से २८० वाँ दिन प्रसव-दिवस समझा जाता है। यदि किसी स्त्री को अंतिम स्राव ३ नवबर को हुआ, तो उसका प्रसव-दिन अनुमान से १० अगस्त होगा। हिसाब लगाने में सुगमता के लिये बहुधा ऐसा करते हैं कि स्राव के प्रथम दिन में ७ दिन जोड दिए और आगे के नौ महीने गिन लिए।

प्रसव-दिवस मालूम करने के लिये कई और प्रकार से भी हिसाब लगाया जाता है, किंतु साधारणतया जिसको सुगमता से काम में ला सकते हैं उसका ऊपर वर्णन किया गया है। कुछ लोग

१९३९ ई० में इसके लिए प्रो० लारेंस को नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया था।

इस यंत्र के भारत में लग जाने पर भारतीय वैज्ञानिकों के लिए भारत में एक सर्वथा नवीन कार्यक्षेत्र का मार्ग प्रशस्त हो जायगा इससे वैज्ञानिकों को विश्व ब्रह्माण्ड की रचना की गुत्थी सुलझाने में भी समुचित सहायता मिलेगी। वास्तव में डा० साहा जिस ढंग से वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं उससे देश को बहुत कुछ आशायें हैं और अनुमान किया जाता है कि निकट भविष्य में यदि भारत में किसी वैज्ञानिक को फिर नोबल पुरस्कार पाने का सौभाग्य प्राप्त होगा तो वह भाग्यशाली व्यक्ति सम्भवतः डा० मेघनाथ साहा ही होंगे।

पुरा-वनपस्पति विज्ञान के पण्डित

डा० बीरबल साहनी एफ० आर० एस०

[जन्म सन् १८६१]

विज्ञानाचार्य स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बसु के अतिरिक्त जिन भारतीय वैज्ञानिकों न वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है, उनमें लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० बीरबल साहनी डी० एस-सी०, एस सी० डी०, एफ० जी० एस०, एफ० आर० एस०, एफ० आर० ए० एस० बी०, का नाम अग्रगण्य है। डा० बीरबल साहनी बड़े बाप के बड़े बेटे हैं। विज्ञान प्रेम आपको अपने पिता से विरासत में मिला है। आप के पिता प्रो० रुचिराम साहनी पंजाब विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त रसायनाचार्य हैं।

प्रो० रुचिराम साहनी की गणना प्रमुख शिक्षाविदों एवं वैज्ञानिकों में की जाती है। भारत में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए इन्होंने अत्यन्त सराहनीय प्रयत्न किये हैं। भारतीय वैज्ञानिको के लिए यथेष्ट सम्मान और कीर्ति अर्जित करने तथा विदेशों में उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में भी आपका प्रमुख हाथ रहा है। आज भी आपकी गणना रसायन विज्ञान के प्रतिष्ठित भारतीय विद्वानों में की जाती है।

प्रो० रुचिराम साहनी जैसे विद्वान वैज्ञानिक के सुपुत्र होने के साथ ही आपको एक आदर्श माता पाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आपकी माता स्वर्गीया श्रीमती ईश्वरी देवी अपनी सुसंस्कृति और उदार विचारों के लिए प्रांत भर में प्रसिद्ध थीं। उनके सम्पर्क में आने वाले लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे। हमारे चरित नायक प्रो० रुचिराम और श्रीमती ईश्वरी देवी के तीसरे पुत्र हैं। आपका जन्म १४ नवम्बर १८६१ ई० को पंजाब के भेड़ा नाम के कस्बे में हुआ था। ऐसे सुयोग्य माता पिता के सुयोग्य पुत्र होने के नाते डा० बीरबल साहनी का अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का वैज्ञानिक होना स्वाभाविक ही है।

सुयोग्य माता पिता पाने के साथ ही आपको अपने बाल्यकाल ही से सुयोग्य और विद्वान शिक्षक पाने का भी सौभाग्य प्राप्त रहा है। बाल्यकाल में स्वयं माता पिता आपकी शिक्षा-दीक्षा में विशेष दिल-चस्पी लेते रहे। कालेज में आपको स्वर्गीय प्रो० शिवराम कश्यप जैसे आदर्श शिक्षक मिले।

स्वर्गीय प्रो० कश्यप ने अपने विद्यार्थियों को वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने के लिए जो प्रोत्साहन दिया है वह चिरस्मरणीय रहेगा। वास्तव में उनकी आजीवन विज्ञान सेवा और प्रेरणा ही का फल है कि उनके शिष्य आज देश के कोने कोने में फैले हुए हैं और विज्ञान-शिक्षा एवं अन्वेषण के उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। बीरबल साहनी प्रो० कश्यप के उत्तम शिष्यों में थे। आपको विज्ञान साधना में प्रवृत्त करने और इस कार्य में बराबर प्रोत्साहित करते रहने का बहुत कुछ श्रेय स्व० प्रोफेसर कश्यप को दिया जा सकता है। प्रोफेसर कश्यप के अतिरिक्त आपको अपने आदरणीय पिता से भी कुछ कम प्रेरणा और

प्रोत्साहन नहीं मिला है। प्रो० रुचिराम ने बाल्यकाल ही से आपको वैज्ञानिक विषयों में अभिरुचि लेने के लिए प्रवृत्त किया और बराबर मौलिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते रहे।

इंगलैंड में शिक्षा और अन्वेषण कार्य

लाहौर कालेज में अपनी शिक्षा अति सम्मान पूर्वक समाप्त करने के बाद १६११ ई० में आप वनस्पति विज्ञान के विशेष अध्ययन के लिए केम्ब्रिज गये। केम्ब्रिज में भी आपने अपनी प्रतिभा से शीघ्र ही विश्वविद्यालय में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। शिक्षक आपकी योग्यता देखकर मुग्ध हो गये और आपके कार्यों में विशेष रुचि लेने लगे। आपने भी अपने प्रोफेसरों की शिक्षा और सत्संग का विशेषकर केम्ब्रिज के प्रतिष्ठित आचार्य ए० सी० स्टीवर्ड के सत्संग और सहयोग का पूरा पूरा लाभ उठाया। केम्ब्रिज के इमैनुएल कालेज में आपने छात्रवृत्ति प्राप्त की और बाद में उसी कालेज के आजीवन सदस्य भी बना लिये गये। केम्ब्रिज और लन्दन दोनों ही विश्वविद्यालयों में आपने अपने मौलिक सन्धान कार्यों से विशेष सम्मान प्राप्त किया। आपके मौलिक कार्यों पर उपरोक्त दोनों विश्वविद्यालयों ने आपको विज्ञान के आचार्य (डी० एस-सी०) की उच्च पदवियां प्रदान कीं।

विज्ञान के आचार्य

केम्ब्रिज और लन्दन विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की पदवियां प्राप्त करके आप १६१६ में भारत वापस लौटे। उसी वर्ष आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग के मुख्य आचार्य नियुक्त

किये गये। इसके एक वर्ष बाद आपने पंजाब विश्वविद्यालय में लाहौर में एक वर्ष तक काम किया। फिर १६२१ में लखनऊ विश्वविद्यालय का कार्य आरम्भ होने पर आप वहाँ वनस्पति विज्ञान के मुख्य आचार्य नियुक्त किये गये और तब से अब तक बराबर वहीं काम कर रहे हैं।

अपने प्रयत्नों से आपने लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग का सुदृढ़ संगठन किया, उसकी प्रयोगशालाओं को सुसम्पन्न बनवाया तथा अन्वेषण कार्य के लिए विशेष प्रबन्ध किया। आप के प्रयत्नों के फलस्वरूप आज लखनऊ विश्वविद्यालय की वनस्पति विज्ञानशाला भारत ही नहीं वरन् संसार के दूसरे उन्नत देशों में प्रमुख मानी जाती है। अध्यापन कार्य के साथ ही साथ आपका खोज का काम बराबर चलता रहा है और अभी तक जारी है। आपकी खोजों की महत्ता अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध के प्रमाणिक वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार की जा चुकी है। वास्तव में भारतीय वैज्ञानिकों में डा० बीरबल साहनी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति जो वनस्पतियों के पुरातत्व पर अति महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आपने धरती के भीतर गड़ी उन वनस्पतियों के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय खोजें की हैं जिनकी जातियां अब नष्ट हो चुकी हैं। राजमहल की सपुष्प वनस्पतियां के अवशेष पर आप की खोजों ने अधिकारी विद्वानों के बीच में आपको विशेष सम्मान दिलवाया है। स्वयं विज्ञान साधना में लगे रहने के साथ ही साथ अपने बहुत से शिष्यों और सहकारियों को भी इस ओर प्रवृत किया है और उनके द्वारा भी महत्वपूर्ण सन्धान कार्य कराने में सफलता प्राप्त की है।

बहुत कुछ आशा होती है कि आगे चलकर कुछ परिवर्तनों के पश्चात मधुमेह-रोग से रोगियों को बचाने में यह वस्तु लाभ-दायक सिद्ध होगी।

वसा-विभजन—यकृत का काम यहा भी समाप्त नहीं होता। वह वसा के संबंध में काफी काम करता है। शरीर में वसा वसामय ततुओं में एकत्रित रहती है। जब आवश्यकता होती है तब वह रक्त द्वारा पेशियों के पास पहुँचती है जहा उसका ओषजनीकरण होता है। ओर पेशी उससे शक्ति ग्रहण करते हैं। रक्त ही इस वसा को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता है। सौत्रिक ततु मे जो लायपेज रहती है वह इस वसा का ग्लिसरिन और वसाम्ल मे भजन करती है। यह वसाम्ल यकृत के पास पहुँचते है जहा इनका भजन प्रारभ होता है। पहले इनसे नीची श्रेणी के अम्ल बनते है। इसी प्रकार टूटते हुए यह कार्बन-डाइ-ओक्साइड और जल के रूप मे बदल जाते है।

वसा-सश्लेषण—यकृत वसा का केवल भंजन ही नही करता किंतु उनको तैयार भी करता है। विशेषत ऐसे वसा जिनके परि-माणु बडे और गूढ होते है, जैसे फोस्फोटाइड यकृत के द्वारा तैयार किए जाते हैं। ऊपर कही हुई वस्तु नाडियो के ततु मे मिलती है। इन वस्तुओ को अकेला यकृत ही नही तैयार करता किंतु प्रत्येक अंग में इनको बनाने की शक्ति होती है।

यकृत और नाइट्रोज़न—प्रोटीन के पाचन में बताया गया था कि बहुत सा प्रोटीन जो शरीर के काम मे नहीं आता उसे यकृत किसी-न-किसी स्वरूप मे बदलकर शरीर के बाहर निकाल देता है। मूत्र मे एक वस्तु रहती है जिसको यूरिया (Urea) कहते है। इसका रासायनिक सकेत Con₂ H₂ है जिससे विदित

के विशद संग्रह की जाँच एवं वर्गीकरण का काम भूगर्भ सर्वे विभाग की ओर से कुछ वर्ष पूर्व आप ही से कराया जा चुका है। इस सम्बन्ध में आपने जो महत्वपूर्ण कार्य किये हैं उनका विस्तृत विवरण सर्वे विभाग के विवरणों * में प्रकाशित हो चुका है।

भूगर्भ सर्वे विभाग की पत्रिकाओं और विवरणों के अतिरिक्त आपके मौलिक अन्वेषण-निबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि की विभिन्न वैज्ञानिक पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहते हैं। लन्दन की रायल सोसाइटी के मुखपत्र में भी आपके कई मौलिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं †। यहाँ यह बतलाना असंगत न होगा कि रायल सोसाइटी

---

* 1. Records of the Geological Survey of India
Vol. Liv, pt 3, pp. 277-280
Vol, Lviii, pt 1, pp. 77-79
Vol, Lxv, pp. 441-442
Vol, 66, pp. 430-437
Vol, 71, pt II, pp. 152-165 (1936)

2. Memoirs of Geological Survey of India Palœntologia Indica new series Vol, xi page 149.
" Vol, xx, pages 1-19 **आदि आदि**

† 1. Philosophical Transactions of the Royal Society of London June 1925 P 41.

2. Royal Society Transactions 1930; vol 218, pp 447-471 and 1932, vol 222 pp 29-45.

के मुखपत्र में केवल कुछ इने गिने प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ही के अत्यन्त महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये जाते हैं। भारत के तो बहुत ही थोड़े वैज्ञानिकों को यह गौरव प्राप्त हुआ है।

रायल सोसाइटी के फैलो

आपके मौलिक अन्वेषण कार्य की महत्ता एवं श्रेष्ठता से प्रभावित होकर केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने १६२६ में आपको एस-सी० डी० की अत्यन्त सम्मानपूर्ण उपाधि से विभूषित किया। यह सम्मान भारत में अब तक केवल तीन वैज्ञानिकों ही को प्राप्त हुआ है : लाहौर सरकारी कालेज के प्रो० जार्ज मथाई (जन्तु विज्ञान) डा० बीरबल साहनी, और कर्नल सर रामनाथ चोपड़ा (१६३७)। वास्तव में डा० साहनी, पहिले भारतीय हैं जिन्हें यह सम्मान प्रदान किया गया है।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से एस-सी० डी० उपाधि प्राप्त करने के कुछ ही वर्ष बाद १६३६ में लन्दन की रायल सोसाइटी ने भी आपको अपना फैलो मनोनीत किया। इससे पहिले यह सम्मान केवल चार भारतीय वैज्ञानिकों को और प्राप्त हो चुका था। स्वर्गीय श्री निवास रामानुजन् (गणित), सर जगदीशचन्द्र बोस (जैव भौतिक विज्ञान), सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन् (ज्योतिर्भौतिक विज्ञान) और डा० मेघनाथ साहा। इन चारों वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्र और उनके महत्वपूर्ण कार्यों के संक्षिप्त विवरण पाठक इस पुस्तक के पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। डा० साहनी को यह गौरवपूर्ण सम्मान दिलाने में आपके गुरु केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो० ए० सी० सेवार्ड एफ० आर०

एस० ने काफी दिलचस्पी ली। वास्तव में डा० साहनी का समस्त विज्ञान साधना और उसकी सफलता का अधिकांश श्रेय प्रोफेसर सेवार्ड को दिया जा सकता है। प्रो० सेवार्ड की प्रेरणा ही के फलस्वरूप डा० साहनी इतना उत्कृष्ट वैज्ञानिक कार्य करने में सफल हुए।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान

इंगलैंड और भारत के वैज्ञानिकों के अतिरिक्त जर्मनी, आस्ट्रेलिया हालैंड, बेलजियम और रूस प्रभृति देशों के वैज्ञानिक भी मुक्तकण्ठ से आपके वैज्ञानिक अन्वेषणों की मौलिकता, श्रेष्ठता और महत्ता को स्वीकार करते हैं। आस्ट्रेलिया के सिडनी विश्वविद्यालय के प्रो० जी० डी० आसबर्न आस्ट्रेलियन वनस्पतियों के विषय में आपसे कई बार परामर्श ले चुके हैं। प्रो० आसबर्न द्वारा प्रेषित कई गहन समस्याओं पर आपने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० गोथन आपके साथ कई महत्वपूर्ण समस्याओं पर अन्वेषण कार्य कर चुके हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान कांग्रेस * के दो अधिवेशनों—१९३० में केम्ब्रिज में होने वाले पाँचवें अधिवेशन तथा १९३५ में एमस्टर्डम में होने वाले छठे अधिवेशन—के आप उपसभापति मनोनीत किये जा चुके हैं। सितम्बर १९३५ में आप हीरलेन हालैंड में होने वाली वनस्पति विज्ञान कांग्रेस † में भी सम्मिलित हुए थे, और उक्त अवसर

---

* International Botanical Congress

† Second Congress of Carboniferous Stratigraphy Harlen, Holland

हिंदी-शब्द	पृष्ठ-संख्या	अँगरेज़ी-शब्द
अन्तर्जंघास्थि	७४	Tibia
अंतस्थल	६८	End Plates
अभिसरण	२४३	Osmosis
अमीनो अम्ल	२३०-२३८	Amino acids
अमीबा	८	Amoeba
अर्गोग्राफ	१११	Ergograph
अर्धचंद्राकार कपाट	१२२	Semilunar Valves
अलिंद	१२१	Auricle
अस्थायी दाँत	२१८	Deciduous or milk Teeth
अस्थ्यावरण	८८	Periosteum
अस्थिमज्जा	८६	Bone marrow
अस्थि-विकास	८२	Ossification
अस्थि-विकास-केंद्र	८२	Ossification Centre
अस्थि-संस्थान	४२	Skeletal System
आकर्षक बिंदु	१४	Centriole
आकर्षण मंडल	१४	Attraction sphere
आक्सीहीमोग्लोबिन	१४६-१४७	Oxyhaemoglobin
आक्सीजन	६,७	Oxygen
आंतरिक उद्रेचन	६०	Internal Secretion
आंत्रिक-रस	२३६	Succus Entericus
आंतरिक श्वास-कर्म	१६६	Internal Respiration
आप्सोनिन	१५३	Opsonins
आमाशय	२२०	Stomach

विज्ञान * विभाग के अध्यक्ष बनाये गये थे। १६४० ई० में विज्ञान कांग्रेस ने आपको अपने मद्रास में होने वाले वार्षिक अधिवेशन का सभापति निर्वाचित किया था।

वैज्ञानिक संस्थाओं के संस्थापक

विज्ञान कांग्रेस के अतिरिक्त आप लाहौर की फिलासफिकल सोसाइटी तथा अखिल भारतीय बोटेनिकल सोसाइटी तो आप ही के प्रयत्नों से स्थापित हुई है। बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भी आपकी खोजों के महत्व को स्वीकार कर चुकी है। इस सोसाइटी की ओर से आपको अनुसन्धान कार्य के उपलक्ष्य में बारक्ले स्वर्णपदक प्रदान किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त सोसाइटी आपको अपना सम्मानित फैलो भी निर्वाचित कर चुकी है।

इधर हाल में संगठित होने वाली नवीन वैज्ञानिक संस्थाओं इंडियन एकेडेमी आफ साइंस, नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंस, तथा नेशनल एकेडेमी आफ साइंस, के निर्माण, संगठन एवं संचालन में आप आरम्भ ही से प्रमुख भाग लेते रहे हैं। इन तीनों ही संस्थाओं ने नवीन होते हुए भी, अपने थोड़े ही कार्यकाल में देश-विदेश में यथेष्ट ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। इन तीनों ही संस्थाओं के आप उप-सभापति रह चुके हैं। नेशनल एकेडेमी के वैदेशिक मंत्री का कार्य भी आप कई वर्ष तक कर चुके हैं। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ही के समान नेशनल ऐकेडेमी भी आपकी खोजों की महत्ता को स्वीकार

---

* Geology section.

हिंदी-शब्द	पृष्ठ-संख्या	अंगरेज़ी-शब्द
ऐच्छिक पेशी	९६	Voluntary muscle
ऐड्रिनेलिन	२८६	Adrenalin
ऐंद्रिक	६	Organic
ऐमायलेज़	२३४	Amylase
ऐल्यमिनियम	६	Aluminium

हिंदी-शब्द	पृष्ठ-संख्या	अंगरेज़ी-शब्द
कटि	६६	Lumbar
कंठकास्थि	७१	Hyoid bone
कपाट	१२३	Valves
कर्पर	६४	Skull
कर्बोज	४२	Carbohydrate
कशेरुक	६५	Vertebra
कांडमूला धमनी	१२२	Innominate Artery
कारटिलेज	८०	Cartilage
कारबोहाइड्रेट	४२, ४८	Carbohydrate
कार्बन	६, ७	Carbon
कार्बन-डाइ ऑक्साइड	१८	Carbon di oxide
क्रियेटीन	२८१	Creatine
क्रियेटिनीन	२८१	Creatinine
केनेलीक्यूली	८९	Canaliculi
केंद्र	१३	Nucleus
केंद्राणु	१४	Nucleolus
केलशियम	६	Calcium
केलोरी	२५१	Calorie
केशिका	१२५	Capillaries

स्वदेशभक्त साहनी

वैज्ञानिक संस्थाओं के अतिरिक्त, समय मिलने पर आप देशोन्नति के दूसरे कार्यों में भी यथेष्ट रुचि लेते हैं। सार्वजनिक, सामाजिक एवं शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त समय समय पर देश में होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी आप की सहानुभूति रहती है। खद्दर और स्वदेशी के आप अनन्य भक्तों में हैं। स्वयं बराबर विशुद्ध खादी व्यवहार में लाते हैं और विदेशों की यात्रा करते समय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिषदों आदि में भाग लेते समय भी बराबर भारतीय वेषभूषा में रहते हैं। सफेद खद्दर की शेरवानी, सफेद खद्दर ही का चूड़ीदार पाजामा तथा गांधी टोपी और लाल पंजाबी जूता पहनने वाले डा० साहनी को देख कर राष्ट्रीय महासभा के किसी प्रमुख नेता का धोका हो जाता है। पहिली ही बार देखने वाले व्यक्ति को तो यह अनुमान करना भी कठिन हो जाता है कि शुभ्र उज्ज्वल खादी की सादी पोशाक धारण वाले डा० साहनी संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। उनका विनीत और शालीनता-युक्त व्यवहार इस संदेह को और भी अधिक बढ़ा देता है। परन्तु यह सन्देह क्षणिक ही होता है। अभ्यागत शीघ्र ही उनके भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हो उठता है और उसे यह समझने में अधिक देर नहीं लगती कि वह एक महापुरुष के सामने है।

स्वदेशी के साथ ही डा० साहनी कला और सौन्दर्य के भी प्रेमी हैं पुष्पों और वनस्पतियों के प्रति तो आपको विशेष आकर्षण है। आप अपने निवास स्थान को सुन्दर लता पुष्पों से कलापूर्ण ढंग से सजा कर रखते हैं। बाह्य आडम्बर से आप बहुत दूर हैं और बहुत सादगी

रुके। यह स्थान समुद्री धरातल से ६४०० फीट ऊंचा है। यहां एक घने जंगल में मील डेढ़ मील लम्बा चौड़ा एक घास का मैदान है। इस मैदान के बीचोबीच एक झील है और झील के चारों ओर दलदल है। इस झील के बीचोबीच झील के पानी में तैरता हुआ एक छोटा सा टापू है। यह टापू इस झील की सब से बड़ी विचित्रता है। इस टापू पर बड़े बड़े नरकुलों * का घना जंगल सा है। झील के चारों ओर विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के अलग अलग घेरे हैं। डा० साहनी इस दृश्य से बहुत प्रभावित हुए, विभिन्न घेरों की वनस्पतियों के नमूने आदि संग्रह करके उनकी वैज्ञानिक जांच की तथा तैरते हुए टापू के विषय में गवेषणा करके नवीन सन्धान किये। †

इसी तरह १६२२ की गर्मियों की छुट्टी में कलकत्ते के ईडन गार्डेन की सैर करते हुए आपने ज़मीन में गड़े हुए ‡ विभिन्न आकार प्रकार के लगभग एक दर्जन पेड़ों के तने देखे। ये सब के सब बर्मी पेगोडा के निकटवर्ती एक चट्टान के पास पड़े हुये थे। कुछ ज़मीन पर बेंड़े पड़े थे और कुछ ज़मीन के अन्दर धंसे हुये सीधे खड़े थे। ईडन गार्डन जैसे सार्वजनिक स्थान में

---

* Reeds—Phragmites.

† On the floating island & vegetation of Khajiar near Chamba in the N. W. Himalayas Journal of the Botanical Society, vol VI. No. 1, pp 1-7, 1927.

‡ Petrified

के अनुरोध पर आपने प्रचीन वनस्पतियों के अवशेषों के श्रेणी विभाजन सम्बन्धी विशेष उल्लेखनीय कार्य किये हैं।

सर्वे विभाग की ओर से १६ वीं शताब्दी के अन्त में (१८७७-८६) सुप्रसिद्ध बोहेमियन वैज्ञानिक ओ० फीजमेंटल * की देख रेख में कुछ कार्य हुआ था। फीजमेन्टल ने बड़े परिश्रम के साथ वनस्पतियों और पेड़ पौधों के पुराने अवशेषों का अध्ययन करके 'गोंडवाना सिस्टम की शिलाखचित वनस्पतियाँ', † नामक एक बृहत ग्रन्थ तैयार किया था। यह ग्रन्थ सर्वे विभाग की ओर से ४ भागों में प्रकाशित किया गया था। इसके बाद १६०२ ई० में सर्वे विभाग ने पेरिस के प्रो० जीलर ‡ और केम्ब्रिज के प्रो० ए० सी० सेवार्ड एफ० आर० एस० से फीजमेंन्टल द्वारा तैयार किये गये विवरण को फिर दोहरवाया और कुछ नवीन संकलित नमूनें की भी जांच कराई। इस काम में डा० साहनी ने अपनी विद्यार्थी अवस्था में ही डा० सेवार्ड की सहायता की थी। लखनऊ विश्वविद्यालय में नियुक्त होने के बाद सर्वे विभाग ने यह काम सरकारी तौर पर डा० साहनी के सुपुर्द किया। इस सम्बन्ध में आपने स्वतंत्र मौलिक गवेषणा करके धरती के भीतर गड़ी हुई भारतीय वनस्पतियों और पेड़ पौधों के अवशेषों का जो महत्वपूर्ण विवरण तैयार किया है वह अपने ढंग का अकेला है। वास्तव में फीजमेन्टल के बाद और

---

* O Feistmantel

† Fossil Flora of the Gondwana System.

‡ Pro. Zeiller

हिंदी-शब्द	पृष्ठ-संख्या	अँगरेज़ी-शब्द
रक्त-कण	१४५	Blood Corpuscles
रक्त-द्रावक	१५४	Hæmolysins
रक्त-परिभ्रमण	१२८	Circulation of blood
रक्त-वाहक-संस्थान	५५, ११६	Circulatory System
रचना-विभेदन	११	Differentiation of Structure
रंजन	१२	Staining
रसायनियाँ	१३१	Lymph Vessels
राजयक्ष्मा	१५८, १८०	Tuberculosis
रासायनिक आकर्षण	१५२	Chæmeotaxis
रिकेट्स	६०, ८८	Rickets
रेनिन	२३०	Renin
रोगक्षमता	१५८	Immunity

लाल कण	१४५	Red Corpuscles
लायपेज	२३०	Lipase
लाला	२१६,२२६	Saliva
लिनिन के सूत्र	१४	Linin Thread
लीव्यूलोज	२३०	Loevulose
लेकुनी	८५	Lacunae
लैंगरहैंस के द्वीप	२८४	Islets of Langerhans
लोह	६	Iron

वक्ष के कशेरुक	६७	Thoracic Vertebræ

इनके आधार पर डा० साहनी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल में * जबकि वर्त्तमान काश्मीर उपत्यका के स्थान पर विशाल करेवा झील का आधिपत्य था (१) इस करेवा झील के किनारे पर (२) उत्तरी पंजाब के मैदानों में तथा (३) विशालकाय हिमालय के उस पार मनुष्य आबाद हो चुके थे। विकासवाद की मनुष्यों की सभ्यता और संस्कृति केवल उतनी ही विकसित हुई थी, जितनी कि तत्कालीन यूरोपियन मनुष्य नीनडर्टल या मौसटेरियन मनुष्य की † अथवा सुदूरपूर्व में चीन में आबाद हो जाने वाले 'पेकिंग-मैन' की।

पुरातत्व अन्वेषियों को उत्तर भारत में जो औज़ार मिले हैं उनसे यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि हिमालय प्रदेश के दोनों ओर आबाद होने वाले मनुष्य बराबर परस्पर सम्पर्क में आते रहते थे। डा० साहनी का कहना है कि ऐसा केवल उसी दशा में सम्भव हो सकता था जब कि यह मान लिया जाय कि हिमालय के ऊँचे ऊँचे दर्रे और घाटियाँ उस अति प्राचीन काल में इतनी अधिक ऊँची न थीं जितनी कि वे आज हैं। ऊँचाई कम होने के कारण मनुष्यों का हिमालय पार करके इधर उधर आना जाना काफी सुगम था। मनुष्य के आगमन के बाद से यह ऊँचाई बराबर बढ़ती रही है और वृद्धि का यह क्रम अति प्राचीन प्रस्तर युग तक (प्लायस्टोसीन युग) और सम्भवतः उसके बाद भी बराबर जारी रहा

---

* Middle pleistocene time.

† Neandertal or Moustarian.

है। वास्तव में बहुत से भूतत्ववेत्ता तो यह विश्वास करते हैं कि यह क्रम अब भी जारी है।

गोंडवाना और अंगारा महाद्वीप

हिमालय के उत्थान के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण गवेषणायें करने के साथ ही आपने हिमालय के जन्म से बहुत पहले के गोंडवाना और अंगारा महाद्वीपों आदि के बारे में भी बहुत से उपयोगी तथ्य ज्ञात किये हैं। भूतत्ववेत्ताओं का कहना है कि हिमालय के जन्म से पूर्व महादेशों और सागरों का विभाग आज कल के समय से बहुत ही विभिन्न था। उन्हें अनेक प्रमाण ऐसे मिले हैं जिनसे मालूम हुआ है कि उस समय भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप पूर्व में आस्ट्रेलिया और पश्चिम में अफ्रीका से लगा हुआ था, अर्थात् आजकल जहाँ बंगाल की खाड़ी, अरब सागर और हिन्द महासागर हैं, वहाँ उस समय महादेश था। इस प्राचीन महादेश को गोंडवानालैंड कहा गया है। आज दिन जहाँ हिमालय की गगनचुम्बी पर्वत-श्रेणियाँ विद्यमान हैं वहाँ उन दिनों एक महासागर था। इस सागर को भूतत्ववेत्ताओं ने टेथिस * के नाम से पुकारा है। इस टेथिस महासागर के उत्तर में अंगारालैंड † और उत्तर पश्चिम में आर्कटिक महादेश माने गये हैं।

सुप्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक ज़लैस्की (Zalessky) ने अपनी खोजों

---

* Tethys

† Angara Land

से प्रमाणित किया है कि साइबेरिया में पाये जाने वाले अत्यन्त प्राचीन वनस्पति अवशेषों अर्थात् प्राचीन अंगारा महाद्वीप के वनस्पति अवशेषों तथा प्राचीन गोंडवाना महाद्वीप के वनस्पति अवशेषों में बहुत कुछ समानता पाई जाती है। इस समानता के आधार पर संसार के कतिपय सर्वश्रेष्ठ पुरा-वनस्पति विशारदों ने यह कल्पना की कि वास्तव में अति प्राचीन काल में वनस्पतियां गोंडवाना महाद्वीप से अंगारा महाद्वीप गई होंगी। इस कल्पना का समर्थन करने वालों में डा० साहनी के अतिरिक्त प्रो० सेवार्ड, जलेस्की, नेथेल, आर्बर तथा ग्राबू के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के साथ ही आपने गोंडवाना काल की भारतीय वनस्पतियों एवं चीन तथा साइबेरिया की वनस्पतियों के परस्पर सम्बन्ध के बारे में भी बहुत सी नवीन बातें ज्ञात की हैं।

पुरातत्व सम्बन्धी कार्य

पुरा वनस्पति-अन्वेषण तथा भूगर्भ सम्बन्धी कार्यों के साथ ही आपने पुरातत्व सम्बन्धी भी कई महत्वपूर्ण सन्धान किये हैं। जमुना की उपत्यका में रोहतक के पास खोकरा कोट के टीले का निरीक्षण एवं अध्ययन करके आपने यह सिद्ध किया है कि भारत में ईसा के बहुत पूर्व लोग सिक्के ढालना बखूबी जानते थे। इस टीले की खुदाई करने पर सिक्के ढालने के कई हज़ार ठप्पे मिले हैं। इनका निरीक्षण करके आपने उन दिनों की सिक्का ढालने की अति प्राचीन विधि पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है और बतलाया है कि वहां ईसा से १०० वर्ष पूर्व यौधेय राजाओं की

टकसाल रही होगी। इसका विस्तृत विवरण १९३९ में करेंट साइंस के चौथे भाग के ११ वें अंक में (पृष्ठ ७९६–८०१) प्रकाशित हुआ था इस लेख को प्रकाशित कराने के साथ ही अपना भारत सरकार से इस टीले की विधिवत जांच कराने की भी सिफारिश की। आपकी सिफारिश को मानकर अब भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने खोकरा कोट की खुदाई शुरू कर दी है। आशा की जाती है कि इस खुदाई से ईसा के तीन हज़ार वर्ष पूर्व की केवल हरप्पा सभ्यता ही के प्रमाण न मिलेंगे वरन् कुछ ऐसी सामग्री भी उपलब्ध होगी जिससे पूर्व ऐतिहासिक काल की संस्कृति और ऐतिहासिक काल के बीच के काल को शृङ्खला-बद्ध किया जा सकेगा।

संक्षेप में डा० साहनी ने वनस्पति विज्ञान के साथ ही भूगर्भ और पुरातत्व सम्बन्धी भी अनेक महत्वपूर्ण अन्वेषण किये हैं। पुरा वनस्पति विज्ञान के तो आप भारत ही नहीं संसार के कुछ चुने हुए विशेषज्ञों में गिने जाते हैं। आपने वनस्पति विज्ञान के प्रसार के लिए जो अन्वेषण किये हैं और आपके नेतृत्व में जो अन्वेषण कार्य हो रहे हैं उससे अभी बहुत कुछ आशायें हैं। स्वयं अन्वेषण कार्य में संलग्न रहने के साथ ही आपने अपने शिष्यों तथा दूसरे कार्य कर्त्ताओं को भी विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अपने अन्वेषण कार्यों से केवल अपने ही लिए नहीं अपनी मातृ भूमि के लिए भी अभी यथेष्ट यश और कीर्ति प्राप्त करेंगे।

डा० सरशान्ति स्वरूप भटनागर

[जन्म १८९४ ई०]

प्रख्यात रसायनिक

डा० सर शान्ति स्वरूप भटनागर

(जन्म १८६४ ई०)

डा० सर शान्ति स्वरूप भटनागर डी० एस-सी०, एफ० आई० सी०, एफ० आई० पी०, ओ० बी० ई० का जन्म २१ फरवरी १८६४ ई० को पंजाब के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान भेड़ा में हुआ था। भेड़ा को डा० भटनागर के अतिरिक्त डा० बीरबल साहनी जैसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक के जन्म स्थान होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। डा० भटनागर के पिता ला० परमेश्वरी सहाय भेड़ा के मूल निवासी तो न थे पर अस्थाई रूप से अपनी आजीविका के लिए वहाँ जाकर रहने लगे थे। कुछ दिन तक वह लाहौर के डी० ए० वी० हाई स्कूल में अध्यापक रहे और बाद में डा० बीरबल साहनी के पिता प्रो० रुचिराम साहनी की सिफारिश से भेड़ा के ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल में सेकेन्ड मास्टर नियुक्त हो गये थे। इसी स्कूल में अध्यापक का काम करते हुए उन्होंने बी० ए० की परीक्षा भी पास की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश बी० ए० पास करने के कुछ ही मास बाद उनकी मृत्यु हो गई। उस समय शान्ति स्वरूप केवल आठ मास के नन्हें से शिशु थे। उस समय किसी को स्वप्न में भी ध्यान न था कि यह पितृहीन बालक बड़ा होकर भारत का श्रेष्ठ वैज्ञानिक बनेगा।

बाल्यकाल और शिक्षा

पिता की मृत्यु के उपरान्त बालक शान्ति स्वरूप का लालन पालन

कुछ वर्ष तक उनके नाना मुंशी प्यारेलाल की देखरेख में सिकन्दराबाद में हुआ। इनकी पढ़ाई का श्री गणेशायनमः भी सिकन्दराबाद के ए० बी० हाई स्कूल में हुआ। आठ नौ साल की उमर तक यह इस स्कूल में पढ़ते रहे। बाद में इनके पिता के अनन्य मित्र (राय साहब) ला० रघुनाथसहाय ने इनकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया और पढ़ाई को सुचारुरूप से चलाने के लिए इन्हें अपने पास लाहौर बुला लिया ला० रघुनाथसहाय उन दिनों लाहौर के दयालसिंह हाईस्कूल के हेडमास्टर थे।

शान्तिस्वरूप बचपन ही से बहुत तेज़ थे। स्कूल में पढ़ते समय बाल की खाल निकाला करते थे। अपने अध्यापकों से तरह तरह के सवाल पूछते। पुरानी चाल के अध्यापक इनके इस व्यवहार से खीझ उठते थे और झुंझला कर हेडमास्टर से रिपोर्ट करते थे कि यह लड़का अपने अध्यापकों का समुचित सम्मान नहीं करता और उन्हें सवाल पूछ पूछ कर तंग करता है!

आठवें दर्जे में शान्तिस्वरूप ने अपनी योग्यता से सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की। विज्ञान से इन्हें छुटपन ही से विशेष प्रेम था और स्कूल में पढ़ने के दिनों ही में कबड़ियों के यहां से कुछ आनों में विज्ञान सामग्री खरीद लाते थे और जोड़ तोड़ करते रहते थे। कहा जाता है कि एक बार इन्होंने खेल खेल में टेलीफोन बनाया था और उससे अपने संरक्षक और स्कूल के हेडमास्टर ला० रघुनाथसहाय से कुछ देर तक बातें की थी। उन दिनों यह इसी तरह की बातों में अधिक दिलचस्पी लिया करते थे। पढ़ने लिखने में कम। परन्तु फिर भी कुशाग्र बुद्धि होने के

कारण स्कूल की प्रायः सभी परीक्षायें सम्मान पूर्वक पास कीं। १९११ ई० में इन्होंने पंजाब यूनिवर्स्टी की इंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। उसी वर्ष दयालसिंह कालेज लाहोर में भर्ती हो गये।

इस कालेज में यह सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० रुचिराम साहनी के निकट सम्पर्क में आये। प्रो० साहनी इनके पिता के मित्रों में थे और इनसे बचपन ही से विशेष स्नेह रखते थे। उनके सम्पर्क में आने से विद्यार्थी शान्तिस्वरूप का विज्ञानप्रेम और अधिक प्रगाढ़ हो गया और रसायन विज्ञान में विशेष रुचि हो गई। कालेज के प्रथम वर्ष में अध्ययन करते हुए शान्तिस्वरूप की महान् वैज्ञानिक आचार्य जगदीशचन्द्र बसु से भेंट हुई।

विज्ञानाचार्य बसु से भेंट

१९१२ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय ने आचार्य बसु को अपने अन्वेषणों पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया था। बसु महोदय प्रो० रुचिराम साहनी के यहां ठहरे थे।

उनके भाषणों की व्यवस्था और प्रबन्ध का काम भी प्रो० साहनी ही के सुपुर्द था। आचार्य बसु को यूनिवर्स्टी हाल में भाषण देते समय अपने प्रयोगों का प्रदर्शन करने में सहायता देने को कुछ विद्यार्थियों की ज़रूरत पड़ी। प्रो० साहनी ने ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों के साथ ही शान्तिस्वरूप को भी आचार्य बसु के पास भेजा। आचार्य बसु जन्म-जात वैज्ञानिक और कलाकार थे, वे गुणों के बड़े पारखी तथा सूक्ष्मदर्शी थे। उन्होंने सभी विद्यार्थियों की जांच की, और केवल शान्तिस्वरूप ही को अपने काम के उपयुक्त पाकर प्रदर्शन कार्य में सहायता देने के लिए

चुन लिया। इस घटना का विद्यार्थी शान्तिस्वरूप पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और उसके विज्ञान प्रेम को और अधिक प्रोत्साहन मिला। उस दिन से उसके भावी जीवन की नींव पड़ी और अपने देश के विज्ञान के सब से बड़े पण्डित से प्रोत्साहन पाकर उसका तरुण हृदय प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। अस्तु ला० परमेश्वरीसहाय जैसे विख्यात शिक्षाविद तथा प्रो० रुचिराम साहनी जैसे वैज्ञानिक की छत्रछाया में बढ़कर शान्तिस्वरूप को मानसिक उन्नति करने और निश्चिन्त होकर अध्ययन करने के बहुत अच्छे सुयोग मिले और इन्होंने इनका पूरा पूरा लाभ भी उठाया।

भटनागर पढ़ने में अपने दर्जे में बराबर सब से तेज़ रहते थे और प्रायः सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी में पास कीं। इनकी प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि पर इनके शिक्षक बराबर मुग्ध रहते थे। १९१४ में इन्होंने दयाल-सिंह कालेज से इन्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और बाद में एफ० सी० कालेज से बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० की परीक्षायें कायदे से इन्हें १९१३ ही में इन्टरमीडिएट पास कर लेना चाहिए था परन्तु विधि विडम्बना से आज का श्रेष्ठ रसायनिक शान्ति-स्वरूप उस वर्ष 'रसायन' में उत्तीर्ण न हो सका। इनकी इस असफलता से इनके प्रायः सभी शिक्षक हैरत में आ गये थे। बात थी भी आश्चर्य की, शान्तिस्वरूप का रसायन सम्बन्धी ज्ञान तथा जानकारी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि शिक्षक लोग दंग रह जाया करते थे। परन्तु किसी विषय का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेना तथा उस विषय की आज कल की परीक्षा पास करना दो अलग अलग बातें हैं।

विवाह

बी० एस-सी० क्लास में पढ़ते समय ही आपका विवाह रायसाहब ला० रघुनाथसहाय की सुपुत्री कुमारी लाजवन्ती देवी के साथ हो गया। ला० रघुनाथसहाय और शान्तिस्वरूप के पिता मुंशी परमेश्वरी सहाय की प्रगाढ़ मैत्री का ज़िकर पीछे किया जा चुका है। उसी मैत्री के नाते ला० रघुनाथसहाय ने शान्तिस्वरूप को आठ नौ बरस की आयु ही से अपने पास बुला लिया था और अपनी सन्तानवत स्नेह करते थे। कुमारी लाजवंती और शान्तिस्वरूप में भी बचपन ही से मैत्री भाव और प्रीति उत्पन्न हो गई थी। बड़े होने पर यह मैत्री भाव और प्रीति और अधिक बढ़ गई और उसने दोनों को विवाह बंधन में बांध दिया।

विदेशों में अध्ययन

एम० एस-सी० की परीक्षा पास करने के बाद भटनागर कुछ दिन तक मिशन कालेज और दयालसिंह कालेज में मामूली वेतन पर डिमान-स्ट्रेटर का काम करते रहे। परन्तु यह इतने से सन्तुष्ट न थे। अपने विद्यार्थी जीवन ही से इन्हें रसायन विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत जाने की बड़ी अभिलाषा थी। आपकी और आपके श्वसुर दोनों ही की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न थी कि विदेश यात्रा के खर्चे का प्रबन्ध किया जा सके। परन्तु आपको अधिक समय तक इन्तज़ार न करना पड़ा और १६१६ ई० में आपको दयालसिंह कालेज ट्रस्ट से विलायत जाकर अध्ययन करने के लिए एक छात्र-वृत्ति मिल गई।

अन्तःकोण-परिधेः चतुर्भिर्गुणितात्, बाह्यकोण-परिधेः त्रिलव चतुर्भिश्च $\frac{4}{3}$ गुणितात् फलं पूर्व्वोक्त परिधिषष्ठे वर्गित इत्यादिना यत् फलं, तत् स्व-गुणभाजितं, क्रमेण द्वाभ्यां, चतुर्भिः, त्रिलवचतुर्भिश्च भाजितात् फलं घनफलं भवति।

अत्रोपपत्तिः।

भित्तिसंलग्नराशेः, अन्तःकोणराशेः, बहिःकोणराशेश्च परिधयः पृथक् पृथक् क्रमेण २। ४। $\frac{4}{3}$ गुणिताः सर्व्वत्र समं वर्त्तुलपरिधिमानं स्यात्। तस्मात् साधितं फलं, वर्त्तुलपरिधेः फलं। भित्तिलग्ने राशौ तदर्द्धं धान्यं अत द्वाभ्यां विभज्यम्। एवं भित्त्योरन्तः कोणराशौ पादमितं धान्यं अतः चतुर्भिर्भागः। बहिःकोणस्थ-राशौ पादोनं धान्यं अतः सपादैकेन $\frac{4}{3}$ भजनं, यतः छेदं लवञ्च परिवर्त्त्येति नियमेन $\frac{4}{3}$ अनेन भजन एव पादोनं मानं स्यात्। अत उक्तं द्विवेदेति।

उदाहरणम्।

परिधिर्भित्तिलग्नस्य राशेस्त्रिंशत् करः किल।
अन्तःकोण स्थितस्यापि तिथितुल्य करः सखे॥
बहिःकोण स्थितस्याऽपि पञ्चघ्ननवसंमितः।
तेषां माचक्ष्व मे क्षिप्रं घनहस्तान् पृथक् पृथक्॥

में योग देने के लिए प्रवृत्त किया। कालेज के वक़्त के अलावा सुबह शाम भी आप घन्टों अपनी प्रयोगशाला में काम करते रहते। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप आपकी देखरेख में विश्वविद्यालय की प्रयोग-शालाओं में कई महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुए। इनके विवरण यूरोप की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इससे आपकी तथा आपके अनुसन्धानों की चर्चा भारत ही नहीं विदेशों में भी की जाने लगी। १६२३ में लिवरपूल में होने वाली ब्रिटिश वैज्ञानिकों की कानफरेंस * में आपने काशी विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया।

पंजाब विश्वविद्यालय में

लिवरपूल से स्वदेश लौटने पर १६२४ ई० में आपको पंजाब यूनि-वर्स्टी ने अपनी रसायनशालाओं में अन्वेषण कार्य का संचालन करने को आमंत्रित किया और अपने यहां भौतिक रसायन का १२५०) मासिक वेतन पर यूनिवर्स्टी प्रोफेसर और यूनीवर्स्टी की रसायनशालाओं का डाइरेक्टर नियुक्त किया यहां यह बतलाना अप्रसांगिक न होगा कि यह वही डाक्टर भटनागर हैं जो लगभग दस वर्ष पूर्व पंजाब यूनिवर्स्टी की एफ० ए० की परीक्षा में रसायन में फेल हो गये थे। दस साल के अन्दर आपने इतनी उन्नति कर ली और अपने रसायन ज्ञान को इतना उत्कृष्ट बना लिया कि यूनिवर्स्टी अधिकारियों को आपको साग्रह और सहर्ष अपने यहां बुलाना पड़ा।

---

* The British Association for the advaneement of Science.

पंजाब विश्वविद्यालय में पहुंच कर आपकी प्रतिभा और अधिक चमक उठी। अनुसन्धान कार्य का संचालन करने के साथ ही स्वयं अन्वेषण करने की भी यथेष्ट सुविधायें मिली। यहां रहकर आपने जो महत्वपूर्ण अनुसन्धान और अन्वेषण किये उनसे आपकी गणना भारत ही नहीं विज्ञान संसार के उत्कृष्ट रसायनिकों में की जाने लगी।

आप अपनी खोजों के लिए पंजाब के व्यवसायियों में भी प्रसिद्ध हो गये। सर गंगाराम, राजा दयाकिशन कौल, राजा हरीकिशन कौल, सर श्रीराम तथा श्री बिड़ला जैसे श्रेष्ठ व्यवसायी अपनी औद्योगिक समस्याओं के लिए आप से परामर्श लेने आने लगे। इस काम से आपको जो कुछ आय होती वह सब धन अपने निजी खर्च में लाने के बजाय यूनिवर्स्टी केमिकल सोसाइटी को दान कर देते।

वैज्ञानिक अनुसन्धान

डा० भटनागर ने लन्दन विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय ही उल्लेखनीय अनुसन्धान आरम्भ कर दिये थे। विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि मिलने के पूर्व ही आप के कई मौलिक खोज निबन्ध इंगलैंड और जर्मनी के प्रमुख वैज्ञानिक पत्रों * में प्रकाशित हो चुके थे। लन्दन विश्वविद्यालय में आपने पायस † सम्बन्धी जिस कार्य

---

* 1. Journal of the Chemical Society, 2. Jour. Soc. Chem. Ind. 3. Transactions Faraday Society, 4. Kolloid Zeitung,

† Emulsions.

का सूत्रपात किया था उसे आपने काशी विश्वविद्यालय में भी जारी रक्खा और स्वयं तथा अपने सहकारियों में विशेषकर श्री के० के० माथुर और डा० माताप्रसाद के साथ भौतिक विज्ञान सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण सन्धान किये। इनके विवरण इंडियन केमिकल सोसाइटी के जर्नल के अतिरिक्त इंगलैंड और जर्मन के वैज्ञानिक पत्रों में प्रकाशित हुए थे। पायस के बारे में काम करके आपने उनके आचरण के बारे में कई नवीन और उपयोगी नियम मालूम किये। पायसों की जाति उनकी विद्युतचालकता द्वारा मालूम करने की एक नवीन रीति ज्ञात की। ऐसे पायस जिनमें तेल का पानी में वितरण हुआ है काफी विद्युतचालकता दिखलाते हैं, परन्तु विरुद्ध प्रकार के पायसों में विद्युतचालकता नहीं के बराबर होती है। इस नवीन विधि की सहायता से डा० भटनागर ही को नहीं वरन् दूसरे वैज्ञानिकों को भी पायसों पर अपनी खोजें करने में बड़ी सुविधा मिली है।

लाहौर में आपने शुरू में भौतिक और साधारण रसायन की कई समस्याओं, विशेषकर प्रकाश रसायन पर काम किया। अणुओं और उनके चुम्बकीय गुणों पर आपके कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं अणुओं की रचना एवं गठन के बारे में भी कई नई बातों का पता लगाया है। इस सम्बन्ध में आपने मालूम किया कि कोयला जो अनुचुम्बकीय पदार्थ है किसी दूसरे पदार्थ के अधिशोषण करने पर विचुम्बकीय हो जाता है। अपने इस प्रयोग से आपने यह सिद्ध किया कि अधिशोषण एक रसायनिक क्रिया है।

अणुओं के चुम्बकीय गुण मालूम करने के लिए आपने एक नवीन

यंत्र (आला) भी तैयार किया है। अणुओं के चुम्बकीय गुण तथा रसायन सम्बन्धी चुम्बक विज्ञान का आपने विशेष रूप से अन्वेषण किया है इन विषयों में काम करने वाले आप भारत ही नहीं वरन् संसार के कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों में माने जाते हैं। इन विषयों पर आपके ८०-६० मौलिक गवेषणापत्र विभिन्न प्रतिष्ठित देशी एवं विदेशी वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। चुम्बकीय रसायन पर आपने अपने सहकारी प्रो० के० एन० माथुर के साथ एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ * लिखा है। यह ग्रन्थ लन्दन की मैकमिलन कम्पनी द्वारा १६३५ में प्रकाशित हुआ था। यह चुम्बकीय रसायन पर अँग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित होने वाला संसार में पहला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर आपको विज्ञान संसार में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई और इसकी महत्ता, उपयोगिता एवं प्रमाणिकता को पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया। अणुओं की रचना, उनके चुम्बकीय गुण तथा चुम्बकीय रसायन पर आपने इसके प्रकाशन के पूर्व जो कार्य किये थे उनकी इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के पूर्व भी इसी विषय पर आपकी एक पुस्तिका * १६२८ में लाहौर के उत्तरचन्द कपूर एंड संस द्वारा प्रकाशित की गई थी। भारत में

---

* Physical Principals & Applications of Magneto chemistry (Macmillan & Co Ltd., London, 1935.)

* Magnatic Properties of molecules constituting Electronic Isomers.

चुम्बकीय रसायन सम्बन्धी जो कुछ कार्य हुआ हैं उसका अधिकांश श्रेय आपको प्राप्त है। स्वयं इस दिशा में काम करने के साथ ही अपने सहकारियों और शिष्यों को भी इसके लिए प्रोत्साहित किया है और कई शिष्यों ने इस विषय में यथेष्ट सफलता भी प्राप्त की है। चुम्बकीय रसायन के अतिरिक्त आपने पायस, कलोद * तथा प्रकाश रसायन † पर भी उल्लेखनीय सन्धान किये हैं। संक्षेप में, आपने रसायन विज्ञान की जो सेवायें की हैं और जो नवीन सन्धान किये हैं उनके बल पर, आपकी गणना संसार के उत्कृष्ट रसायनिकों में की जाने लगी है। भारत के तो आप सर्वश्रेष्ठ रसायनिकों में गिने ही जाते हैं।

औद्योगिक सन्धान

डा० भटनागर का कार्यक्षेत्र केवल विशुद्ध विज्ञान ही तक सीमित नहीं है। आपने औद्योगिक महत्व के भी अनेक उपयोगी एवं व्यवहारिक अनुसन्धान किये हैं। रसायनिक उद्योगधन्धों की उन्नति के लिए बहुत सी नई और सुधरी हुई रीतियाँ मालूम की हैं। पंजाब के मिट्टी के तेल के कारखानों ने आपके अन्वेषणों की सहायता से लाखों रुपये का लाभ उठाया है। सुप्रसिद्ध धन कुबेर बिड़ला, दिल्ली के सर (लाला) श्रीराम, कानपुर के जुग्गीलाल कमलापत (जूट मिल्स) और सर जे० पी० श्रीवास्तव, लायलपूर के गनेश फ्लावर मिल्स, तथा बम्बई की टाटा आयल मिल्स कम्पनी लिमिटेड प्रभृति अनेक

---

* Emulsions and colloids.

† Photo-chemistry.

व्यवसायी आपकी खोजों के पेटेन्ट अधिकार खरीद कर समुचित लाभ उठा रहे हैं।

पेट्रोलियम रिसर्च का आयोजन

डा० भटनागर की औद्योगिक खोजों का लाभ सब से पहिले अटक आयल कम्पनी के संचालक लन्दन के मेसर्स स्टील ब्रादर्स नामक प्रसिद्ध फर्म ने उठाया। स्टील ब्रादर्स कम्पनी के संचालक आपकी पेट्रोलियम सम्बन्धी सन्धानों से बहुत प्रभावित हुए। इस उपलक्ष्य में उन लोगों ने आपको डेढ़ लाख रुपये प्रदान किये और आशा प्रगट की कि आप पेट्रोलियम सम्बन्धी और अधिक व्यवहारिक सन्धान करें और कम्पनी को उसके व्यवसाय संचालन में उचित परामर्श दें। आपने इस बड़ी रकम को निस्वार्थ भाव से पंजाब विश्वविद्यालय को दान कर दिया और इससे पेट्रोलियम रिसर्च के लिए विश्वविद्यालय में एक स्वतंत्र विभाग स्थापित कराया और इस विभाग में काम काम करने वाले विद्यार्थियों को १५०)—२००) मासिक की छात्रवृत्तियाँ देने का भी प्रबन्ध किया।

१९३४ ई० में इस योजना के अनुसार पंजाब विश्वविद्यालय में कार्य आरम्भ हो गया। दो वर्ष के अन्वेषण का आशातीत परिणाम निकला और १९३६ ई० में स्टील ब्रादर्स ने आपको अपने प्रधान कार्यालय लन्दन में आमंत्रित किया और आगे के अनुसन्धान के बारे में परामर्श किया। पिछले दो वर्षों की सन्तोषजनक प्रगति देख कर उन लोगों ने डा० भटनागर को २॥ लाख रुपये की रकम

बिना किसी शर्त के और दी। आपने इस धन को भी विश्वविद्यालय को दान कर दिया और इसकी आमदनी से अनुसन्धान कार्य करने वाले विद्यार्थियों को वजीफे देने का प्रबन्ध कर दिया।

डा० भटनागर की दानशीलता

डा० भटनागर के इस सात्विक दान की भारत में भूरि भूरि प्रशंसा की गई। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'करेंटसाइंस' ने अपने जनवरी १६३६ के अंक में डाक्टर साहब की उपमा उनके इस सात्विक दान के लिए फेराडे, डेवी और पास्त्योर प्रभृति उत्कृष्ट वैज्ञानिकों से की थी। डा० भटनागर का यह महत्वपूर्ण दान सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० ई० पी० ई० रौक्स के मुकाबिले का है। डा० रौक्स को डिपथीरिया रोग के इलाज के लिए एक विशेष इंजेक्शन तैयार करने के उपलक्ष्य में सुप्रसिद्ध ओसरिस पुरस्कार प्रदान किया गया था। इस पुरस्कार की कुल रकम उन्होंने पास्त्योर इंस्टिट्यूट को दान कर दी थी।

इस रकम के अतिरिक्त आपने बिड़ला ब्रादर्स से मिलने वाले २१०००) रुपये भी विश्वविद्यालय ही को दान कर दिये हैं। पेट्रोलियम व्यवसाय के बारे में आपने जो अनुसन्धान किये हैं, स्टील ब्रादर्स लिमिटेड ने उन्हें पेटेन्ट करा लिया है, परन्तु उन्हें काम में लाने से जो लाभ होता है उसमें से एक अच्छी रकम डा० भटनागर को रायल्टी के तौर पर मिलती रहती है। इस रायल्टी का भी आधा भाग आपने विश्वविद्यालय ही को दान कर दिया है। इस धन से सर हरबर्ट रिसर्च फन्ड की स्थापना की गई है।

इन बड़ी रकमों के अलावा भी डाक्टर साहब अपनी निजी आमदनी से भी बराबर अपने शिष्यों की आर्थिक सहायता किया करते हैं। आपके बहुत कम शिष्य ऐसे होंगे जो किसी न किसी रूप से आपसे उपकृत न हुए हों। अपने वेतन से आप प्रति मास सैकड़ों रुपये सफेदपोश विद्यार्थियों को चुपचाप देते रहते हैं। डाक्टर साहब और उस विद्यार्थी के अतिरिक्त किसी तीसरे को इस सहायता का पता भी नहीं लगने पाता। आप, इस प्रकार, विद्यार्थियों की जो सहायता करते हैं वह अपना कर्त्तव्य समझकर, यश और कीर्ति की अभिलाषा से प्रेरित होकर नहीं।

शिष्य मंडली

डा० भटनागर की प्रतिभा और असाधारण विद्वता से आकर्षित होकर दूर दूर के विद्यार्थी आपके पास शिक्षा ग्रहण करने और अनुसन्धान कार्य के लिए लाहौर जाते थे। अन्य श्रेष्ठ भारतीय वैज्ञानिकों के समान ही आप भी अपनी शिष्य मण्डली पर उचित गर्व कर सकते हैं। आपने स्वयं तन मन धन से विज्ञान की सेवा करने के साथ ही अपने कई शिष्यों को उच्चकोटि के अनुसन्धान कार्य में प्रवृत करने में भी सफलता प्राप्त की है। आपके शिष्यों में बम्बई रायल इंस्टिट्यूट के डा० माताप्रसाद, काशी विश्वविद्यालय के डा० एस० एस० जोशी, तथा डा० के० एन० माथुर, डा० बलवन्तसिंह, डा० एस० एल० भाटिया, डा० दीनानाथ गोयल, प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० जोशी और डा० माताप्रसाद तो अपने स्वतंत्र मौलिक सन्धानों से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे हैं।

नवीन औद्योगिक अनुसन्धान

डा० भटनागर ने और भी कई एक महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं। इन से भारत के उद्योगधन्धों को बहुत कुछ प्रोत्साहन मिलने की आशा है। स्टील ब्रादर्स के साथ आपने अपने जिन अन्वेषणों को पेटेन्ट कराया है उनमें से दो विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो मिट्टी के तेल की रोशनी की ताकत बढ़ाना और दूसरा बिना गंध की मोम तैयार करना। उद्योग धन्धों तथा बड़े बड़े मिलों और कारखानों के कूड़े करकट आदि को उपयोगी बनाने के बारे में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। कपड़े के मिलों के गूदड़ से पश्मीना सिल्क बनाने की नई तरकीब ढूंढ निकाली है। दिल्ली के सुप्रसिद्ध व्यवसायी सर लाला श्रीराम ने इस विधि के पेटेन्ट अधिकार ले लिए हैं। इसी तरह जूट के गूदड़ और बिनौले के तेल से आपने बेकलाइट प्रभृति कई उपयोगी चीजें तैयार करने की रीतियां मालूम की हैं। इनमें कांच के समान पारदर्शक प्लास्टिक विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वनस्पति तेलों के बारे में आपने और भी बहुत से अनुसन्धान किये हैं। वनस्पति तेलों की सहायता से रेल-गाड़ियों की धुरियों को चिकनाने वाले एक्सिल आयल सरीखे तेल बनाने में भी सफल हुए हैं। इनकी भारतीय रेलों में विधिवत परीक्षा भी की जा चुकी है। १९३९-४० के बजट के अवसर पर भारत सरकार के रेलवे सदस्य सर थामस स्टुअर्ट ने डा० भटनागर के इस अन्वेषण की विशेष रूप से चर्चा की थी। वनस्पति तेलों की गाद से आपने रेज़िन बनाने की भी तरकीब मालूम की है। शीरे से टाइल्स

और विद्युत अवरोधक पदार्थ, * चावलों के चूरे और ऐसी कनी को जो काम में न लाई जा सके फिर से चावलों का रूप देने में भी आप सफल हुए हैं। साबुनों के रंग और सुगन्ध को स्थाई बनाने में भी आपके प्रयोग उपयोगी एवं व्यवहारिक सिद्ध हुए हैं।

सरकार द्वारा सम्मानित

डा० भटनागर के इन औद्योगिक अन्वेषणों की महत्ता को व्यवसायियों के समान ही भारत सरकार ने भी स्वीकार किया है। १९३६ ई० में सरकार की ओर से आपको ओ० बी० ई० की उपाधि प्रदान की गई। १९४० ई० में वर्त्तमान महायुद्ध छिड़ने के कुछ ही मास बाद भारत सरकार ने आपको अपने 'बोर्ड आफ इन्डस्ट्रियल एण्ड साइंटिफिक रिसर्च' का डाइरेक्टर नियुक्त किया। युद्ध के कारण भारत में विदेशों से बहुत से रसायनिक पदार्थों तथा उद्योग व्यवसायों के लिए आवश्यक और दूसरी चीजों की आयात करीब करीब बंद सी हो गई है। इससे व्यवसायियो के सामने अनेक कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। इनके अतिरिक्त युद्ध के लिए सरकार को अपनी जरूरत के लिए बहुत सी नई चीजें भारत में तैयार करना पड़ रहा है। यह बोर्ड व्यवसायियों को इन समस्त कठिनाइयों को हल करने तथा नवीन रीतियां मालूम करके उन्हें व्यवसायियों को बतलाने का काम करता है। आजकल इस बोर्ड की अध्यक्षता में होने वाला समस्त अन्वेषण कार्य डा० भटनागर ही की देख रेख में हो रहा है। इस पद पर नियुक्त होने के बाद से

---

*Insulating materials.

सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में आपकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई है। इस पद पर नियुक्त होने के कुछ ही मास बाद जनवरी १६४१ ई० में आपको सरकार की ओर से 'सर' का खिताब भी दिया गया था।

सार्वजनिक सम्मान

डा० भटनागर को अपनी योग्यता और अन्वेषण प्रतिभा के लिए केवल व्यवसायियों एवं सरकारी अधिकारियों के ही द्वारा सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई है, भारत के अधिकांश विश्वविद्यालय, देहली, कलकत्ता, ढाका, बम्बई, ओसमानिया, मैसूर, मद्रास, लखनऊ, प्रयाग और पंजाब प्रभृति के विश्वविद्यालय उन्हें अपना सभा समितियों में विशेष रूप से आमंत्रित कर तथा अपनी विभिन्न समस्याओं के बारे में परामर्श लेकर सम्मानित कर चुके हैं। काशी विश्वविद्यालय के अब भी आप आनरेरी प्रोफेसर हैं। पंजाब और काशी विश्वविद्यालय दोनों ही आपको अपना आजन्म फैलो भी बना चुके हैं। विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त भारत की प्रायः सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं के संचालन तथा संगठन में भी आप बराबर उल्लेखनीय भाग लेते रहते हैं।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस में आप बराबर प्रमुख भाग लेते रहते हैं। एक बार १६२० ई० में मंत्री का काम भी कर चुके हैं। दो बार, १६२८ और १६३८ ई० में रसायन विभाग के अध्यक्ष भी बनाये जा चुके हैं। १६३८ ई० का अधिवेशन विज्ञान कांग्रेस का जुबिली अधिवेशन होने

के नाते विशेष महत्व का था और श्रेष्ठ ब्रिटिश वैज्ञानिकों का प्रतिनिधि मण्डल उसमें सम्मिलित होने भारत आया था। उस अवसर पर आपको भारत का श्रेष्ठतम रसायनिक समझ कर सभापति मनोनीत किया गया था।

विज्ञान कांग्रेस के अतिरिक्त आप इंडियन केमिकल सोसाइटी, नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंस, नेशनल एकेडेमी आफ साइंस और इंडियन एकेडेमी आफ साइंस प्रभृति अखिल भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं में भी सक्रिय भाग लेते रहते हैं। इंडियन केमिकल सोसाइटी की पंजाब शाखा के आप कई वर्ष तक सभापति भी रह चुके हैं। दूसरी संस्थाओं में भी आप कई बार विभिन्न पदों को सुशोभित कर चुके हैं। बंगलोर की इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस की जाँच के लिए वायसराय ने सर जेम्स इर्विन की अध्यक्षता में जो कमेटी नियुक्त की थी उसके आप एक प्रमुख सदस्य थे। पंजाब केमिकल रिसर्च फन्ड के भी आप सभापति हैं। पंजाब सरकार अपने यहां के उद्योग धन्धों की समस्याओं के बारे में बराबर आप से परामर्श लेती रहती है। अपने यहां की खनिज सम्पत्ति को सदुपयोग में लाने के लिए आपकी अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी। बिहार और युक्तप्रान्तीय सरकारों ने शीरे से 'पावर अलकोहल' बनाने की योजना पर विचार करने के लिए तथा उसे व्यवहारिक स्वरूप देने को जो कमेटी बनाई थी उसके भी आप एक सदस्य नियुक्त किये गये थे। कलकत्ते के इंडियन साइंस न्यूज एसोसिएशन में भी आप सक्रिय भाग लेते हैं और 'करेंट साइंस' के सम्पादकीय मण्डल में हैं।

केमिकल सोसाइटी के फैलो

आपकी खोजें और मौलिक अन्वेषण विदेशों में भी यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। लन्दन की संसार प्रसिद्ध केमिकल सोसाइटी ने इन अन्वेषणों के उपलक्ष्य में आपको अपना फैलो बनाया है। केमिकल सोसाइटी के साथ ही इंगलैंड की इंस्टिट्यूट आफ फिजिक्स (भौतिक विज्ञान परिषद) ने भी आपके कार्यों की महत्ता को स्वीकार करके अपना फैलो मनोनीत किया है। लन्दन की फैराडे सोसाइटी के भी आप सम्मानित सदस्य हैं मई १६३८ में रोम में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय रसायन विज्ञान कांग्रेस में भी आप भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हो चुके हैं। १६२३ में आप ब्रिटिश एसोसिएशन फार दि एडवांसमेंट आफ साइंस के लिवरपूल अधिवेशन में, १६३१ में इसी एसोसिएशन के शताब्द उत्सव में तथा उसी वर्ष फैराडे शताब्दि उत्सव में भी भारत के प्रतिनिधि बनकर शामिल हुए थे।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों का मत

आप के रसायन सम्बन्धी मौलिक कार्यों से इंगलैंड के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक भी प्रभावित हुए हैं। वहां की रायल सोसाइटी के प्रमुख सदस्य भी आपके कार्यों में दिलचस्पी लेने लगे हैं और उन्हें प्रशंसा की दृष्टि से देख रहे हैं। आशा है कि आप शीघ्र ही रायल सोसाइटी के फैलो मनोनीत किये जायंगे। आप पहले भारतीय रसायनिक होंगे जिन्हें यह गौरवपूर्ण सम्मान दिया जायगा

भारतीय विज्ञान कांग्रेस की रजतजयन्ती के अवसर पर इंगलैंड

के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों का जो प्रतिनिधिमण्डल भारत आया था उसने डा० भटनागर की प्रयोगशाला में होने वाले कार्यों की बड़ी प्रशंसा की थी। इंगलैंड के संसारप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० जे० ई० लेनार्ड आपकी प्रयोगशाला देखकर विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। उन्होंने एक निजी पत्र लिखकर आपके अन्वेषण कार्य की महत्ता को स्वीकार किया था और लिखा था कि 'भारतीय उद्योग धन्धों की समस्याओं को सुलझाने के लिए भौतिक और रसायन विज्ञान के सिद्धान्तों का इतना अच्छा सदुपयोग देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं सारे भारत और विशेष कर लाहौर को आप सरीखे मौलिक कार्यकर्त्ता को पाने के लिए बहुत भाग्यवान समझता हूं।'

लन्दन की सुविख्यात केमिकल सोसाइटी के प्रेसिडेंट प्रो० एफ० जी० डोनन, जो आपके गुरू भी रह चुके हैं, ने भी आपके कार्यों की यथेष्ट प्रशंसा की है। अपने एक निजी पत्र में उन्होंने लिखा था—'मैं आपको भारत का श्रेष्ठ वैज्ञानिक समझता हूं। सर जेम्स इर्विन की भी यही राय है। मेरी राय में और आप स्वयं भी इसे जानते होंगे कि आपके कार्य केवल सिद्धान्तों ही तक सीमित नहीं है, आप उन्हें व्यवहारिक रूप देने और कार्य रूप में परिणत करने में भी विशेष दक्ष हैं। आपने अपने सहकारियों की सहायता से अनुसन्धान कार्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण अन्वेषण संस्था का निर्माण किया है। इसका इतना अच्छा संगठन हुआ है और यह आपकी देख-रेख में इतना अच्छा काम कर रही है कि इसकी तुलना संसार की किसी भी उत्कृष्ट अन्वेषण संस्था से की जा सकती है।'

इधर भारत सरकार के औद्योगिक एवं वैज्ञानिक अन्वेषण बोर्ड के डाइरेक्टर नियुक्त होने के बाद से आपने भारत की औद्योगिक समस्याओं को बहुत ही सफलता के साथ सुलझाया है। बोर्ड द्वारा होने वाले अन्वेषण कार्य का आपने इतने अच्छे ढंग से नेतृत्व किया है कि भारत सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली के नवम्बर १९४१ के अधिवेशन में अन्वेषण कार्य के लिए दस लाख की सहायता देना स्वीकार किया है। यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि यह सहायता प्राप्त करना डा० भटनागर ही की कार्यकुशलता का फल है।

राष्ट्र निर्माण समिति में

कांग्रेस की ओर से संगठित की जाने वाली राष्ट्र निर्माण कमेटी (नेशनल प्लानिंग कमेटी) के आयोजन एवं संगठन में भी आपने प्रमुख भाग लिया था। परन्तु कहा जाता है कि पंजाब की दकियानूसी और कांग्रेस विरोधी सरकार को यह सह्य न हुआ। उसने आपको इस राष्ट्रीय महत्व की कमेटी में काम करने की अनुमति नहीं दी। कमेटी के अध्यक्ष पं० जवाहर लाल नेहरू ने सारी परिस्थिति को समझ कर आपको केवल दो उपसमितियों का सदस्य रहने दिया—रसायन उपसमिति और औद्योगिक शिक्षा एवं अनुसन्धान उपसमिति।

साहित्य-सेवा

श्रेष्ठ वैज्ञानिक होने के साथ ही आपने उल्लेखनीय साहित्य सेवा भी की है। आपकी सुप्रसिद्ध अँग्रेजी पुस्तक 'चुम्बकीय रसायन' का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त आपने

उर्दू में विद्युत विज्ञान पर 'इल्मउल् बर्ग' नामक एक श्रेष्ठ पुस्तक और लिखकर प्रकाशित कराई है। उच्च कोटि के गद्य लेखक होने के साथ ही आपकी काव्य साधना भी विशेष महत्व की है। आपको हिन्दी और उर्दू दोनों ही की कविताओं से प्रेम है और स्वयं भी अच्छी कविता करते हैं। काशी विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध 'विश्वविद्यालय गान' * 'मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सारी विद्या की राजधानी' के रचयिता भी आप ही हैं।

उर्दू कविता से तो आपको बचपन ही से शौक रहा है। स्कूल में पढ़ने के दिनों ही में आप उर्दू की अच्छी नज़में बनाने लगे थे। कालेज में पहुंच कर तो आपकी शायरी की काफी शोहरत होगई और लोग उसे खूब पसन्द करने लगे। और वास्तव में डा० भटनागर जब लिखते हैं तो खूब लिखते हैं। १९१२ में जब आचार्य जगदीशचन्द्र बसु लाहौर गये थे तो उनके स्वागत में जो कविता लिखी थी वह बहुत पसन्द की गई थी। उसके दो शेर यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

लो नक़ाब अब्र में अब जलवा दिखलाने लगी,
माहराने बर्क़ से खुद बर्क़ शरमाने लगी।
जोशे इस्तक़बाल से किस शख़्स पर लाली नहीं,
रोशनी इल्म है गो आज दीवाली नहीं॥

१९१९ में उन्होंने एक कविता 'दरिया का समुन्दर से खिताब' शीर्षक लिखी थी। उसमें नदी समुद्र से अपने दुखड़े रोती है और

* Almameter Song

समुद्र को बेदर्द और बेवफा बतलाती है। समुद्र की ओर से इस शिकवे (शिकायत) का जो जवाब दिया जाता हैं वह निम्न प्रकार है:—

तू यह कहती है कि मैंने तुझ को बेघर कर दिया,
नासमझ मैंने तो क़तरे को समुन्दर कर दिया।
तूने इक क़तरा भी जो मुझ पर निछावर कर दिया,
तेरे इस क़तरे को मैंने दिल में गौहर कर दिया॥

तू फना समझी है जिसको है बक़ा की इब्तिदा।
इन्तिहाये इश्क़ है तर्जे वफा की इब्तिदा॥

आप अक्सर हास्य रस की कवितायें भी लिखने हैं। आपकी 'हरदिल अज़ीज़ मरीज़' नामकी नज़्म हास्यरस की उच्च कोटि की कविता समझी जाती है। 'काले रंग' की तारीफ में भी कुछ शेर लिखे हैं उनमें भी हास्य का अच्छा पुट है:—

स्याह पोशी से हसीनों पे ज़िया आती है,
शाने अंजुम शबे तारीक से बढ़ जाती है।
गर न दुनियाँ में, कोई शक्ल भी होती काली,
कैसे पहचानता कोई सूरत भोली भाली॥

आपकी एक और कविता 'आ मुफलिसी कि तुझको गले से लगाऊँ मैं' का उल्लेख करके यह प्रसंग समाप्त किया जायगा। इस कविता में आपकी उन भावनाओं का अच्छा परिचय मिलता है जिन से प्रभावित होकर आपने लाखों रुपये विज्ञान के अन्वेषण में तथा निर्धन विद्यार्थियों की सहायता में दान कर दिया है:—

आ मुफलिसी कि तुझको गले से लगाऊँ मैं

आँखों पे सर पे प्यार से तुझको बिठाऊँ मैं।

ज़र से है तुझको लाग तो ले आज बेधड़क,

ज़र फेंक फांक कर तुझे अपना बनाऊं मैं।

पाकर तुझे रहूँ सितम हाय रोज़गार,

जी चाहता है रंज मुसीबत उठाऊं मैं।

होता नहीं ख़्याल से दौलत के पस्त मैं।

तू ही मेरी रफ़ीक़ है दुनियाए हस्त में॥

तेरी करीह शक्ल से नफरत नहीं मुझे,

पोशाक ज़ाहरी से अदावत नहीं मुझे।

फिक्रे हसूल सीम रहे मेरा मशग़ला,

इतनी सफेद रंग की चाहत नहीं मुझे।

अज्ज़ और इंकसार का रुतबा बुलंद है,

दौलत है कुछ ज़रियए इज़्ज़त नहीं मुझे।

मैं जानता हूँ जो तेरी क़ीमत है मुफलिसी।

ज़र मुफलिसी है और तू दौलत है मुफलिसी॥

ज़र वह है जिसने भाई से भाई लड़ा दिये,

जलते हुए चिराग़ घरों के बुझा दिये।

यह वह बला है जिसकी हविस ने जहान में,

रहरो बहुत से रहज़न व क़ातिल बना दिये॥

झगड़े, मुक़द्दमात, ख़ुराफ़ात वारदात।

दौलत के अरदली हैं यह मानी हुई है बात॥

रसायनिक डाक्टर भटनागर ने अपनी एक कविता में परम पिता परमात्मा को भी रसायनिक बतलाया है और कण कण में उसकी कीमियागीरी को स्पष्ट देखा है:—

है फूल पात में अयाँ खुदा की कीमियागीरी,
जरा से तुख़्म में निहाँ खुदा की कीमियागीरी।
निहाँ अयाँ यहाँ वहाँ खुदा की कीमियागीरी,
फसूँ तराज़ दो जहाँ खुदा की कीमियागीरी ॥
अज़ल के राज़ में निहाँ तहे मर्कबात में।
खुदा की हो तलाश अगर तू ढूंढे घास पात में ॥

दाम्पत्य जीवन

डाक्टर भटनागर के समान उनकी धर्मपत्नी लेडी लाजवन्ती भी बहुत उदारमना है। संयोग की बात है कि लेडी लाजवन्ती और डा० भटनागर दोनों ही का जन्म स्थान भेड़ा है। विवाह के बाद आर्थिक कठिनाइयों के दिनों में लाजवन्ती देवी ने जिस खूबी से गृहस्थी का निर्वाह किया वह भारतीय महिलाओं के प्राचीन आदर्श के सर्वथा अनुकूल रहा है। अतिथि सत्कार के कार्य में तो पति-पत्नी दोनों ही निपुण हैं। अपने पति ही के समान यह भी निर्धन एवं असहाय विद्यार्थियों की सहायता में सदैव तत्पर रहती हैं और दूसरे लोकोपयोगी कार्यों में अभिरुचि लेती रहती हैं। अपने पति के साथ दो बार विलायत भी हो आई हैं। विलायत यात्रा ने उनकी उदारता को और अधिक बढ़ा दिया है।

आज कल आपके चार बच्चे हैं, दो लड़के और दो लड़कियाँ। श्री आनन्द कुमार भटनागर आपके सबसे बड़े लड़के हैं। इनकी उमर इस समय २२ वर्ष है। १९४० में इन्होंने रसायन में एम० एस-सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की है। देवेन्द्रस्वरूप सबसे छोटा बच्चा है और उसकी उमर १० वर्ष है। बड़ी लड़की सन्तोषकुमारी की उमर १८ वर्ष है और वह बी० ए० में पढ़ रही है। उसकी छोटी बहन सुधारानी की आयु इस समय १४ वर्ष है और वह इंट्रेंस में पढ़ती है।

अनुकरणीय चरित्र

एक साधारण स्थिति के परिवार में जन्म लेकर, अपने परिश्रम प्रतिभा और अदम्य उत्साह से उच्च कोटि का ज्ञान और यथेष्ट धन पैदा करके आपने यह सिद्ध कर दिखाया है कि सफलता और प्रसिद्धि केवल बड़े और सम्पन्न घरों ही तक सीमित नहीं है। डा० भटनागर के जन्म के समय उनके पिता एक हाई स्कूल में अध्यापक थे और उन्हें ५०) मासिक वेतन मिलता था। भटनागर पूरे साल भर के भी न हो पाये थे कि पिता की मृत्यु हो गई। बाल्यकाल ही से अपनी प्रतिभा से दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और अपने पिता के मित्रों के स्नेहभाजन बने। पढ़ने लिखने सदैव सबसे आगे रहे और आज दिन अपने अध्यवसाय से सफलता के उच्च शिखर पर पहुंच चुके हैं, और निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं। वास्तव में डा० भटनागर ने साधारण स्थिति के परिवारों में जन्म लेने

वाले युवकों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया है। आशा है आपका अनुकरण कर अनेक नवयुवक अपनी अपनी विज्ञान सेवाओं से भारत को गौरवान्वित करेंगे और उसकी कीर्ति पताका देश देशान्तरों में फहराने में सफल होंगे।

प्रो० कार्यमाणिक्कम् श्रीनिवास कृष्णन्

[जन्म १८९८ ई०]

प्रो० कार्यमाणिक्कम् श्रीनिवास कृष्णन् डी० एस-सी०, एफ० एन० आई०, एफ० आर० एस०, विज्ञानाचार्य सर चन्द्रशेषर वेङ्कट रामन् के श्रेष्ठतम शिष्य हैं। इन्होंने बहुत थोड़ी अवस्था में अपनी विज्ञान साधना आरम्भ की थी बाइस तेईस वर्ष की आयु में कलकत्ता के साइंस कालेज से विज्ञान की उच्च शिक्षा समाप्त कर तथा अन्वेषण कार्य का श्रीगणेश करके यह दो वर्ष तक मद्रास क्रिश्चियन कालेज में रसायन विभाग में डिमान्स्ट्रेटर का काम करते रहे। उसके बाद पाँच वर्ष तक नवम्बर १९२३ से दिसम्बर १९२८ तक आचार्य रामन् की देख रेख में कलकत्ते के सुविख्यात 'इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टिवेशन आफ साइंस' में भौतिक विज्ञान में अन्वेषण किया। थोड़े समय के बाद ही आपकी खोजों की वैज्ञानिक क्षेत्रों में चर्चा होने लगी। इस बीच में रामन् महोदय ने जो महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये उनमें डा० कृष्णन् ने पूरी सहायता पहुंचाई। इधर तो इन्होंने अपने स्वतन्त्र अन्वेषण से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है और इनकी गणना श्रेष्ठ भौतिक विज्ञानवेत्ताओं में की जाती है।

श्रीनिवास कृष्णन् का जन्म ४ दिसम्बर १८९८ ई० को दक्षिण भारत के वात्रप नगर में साधारण मध्यम श्रेणी के परिवार में हुआ था।

प्रो० कार्यमाणिक्कम् श्रीनिवास कृष्णन्
[जन्म १८९८ ई०]

आरम्भिक शिक्षा वात्रप और श्रवल्लिपुत्तुर के हाई स्कूलों में हुई। मदुरा के अमेरिकन कालेज से इन्टरमीडियेट की परीक्षा पास की और मद्रास के क्रिश्चियन कालेज मे यूनिवर्स्टी की विज्ञान की परीक्षायें। विज्ञान की और ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए सुदूर मद्रास से कलकत्ता आये और कलकत्ता विश्वविद्यालय के नवस्थापित साइंस कालेज में आचार्य रामन् के पास अध्ययन एवं अन्वेषण करके १६२१ में वहाँ की शिक्षा समाप्त की। कलकत्ते में इन्हें आचार्य रामन् के अतिरिक्त अपने देश के कतिपय सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने का संयोग मिला और इनका विज्ञान प्रेम अधिक प्रगाढ़ हो गया तथा विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक कार्य करने की भावनायें जागृत हुईं। आचार्य रामन् के सम्पर्क में आने से आप भौतिक विज्ञान की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए।

साइंस कालेज में अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद, दो वर्ष तक मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में रसायन विभाग में डिमान्स्ट्रेटर का काम करते हुए इन्हें रसायन विज्ञान का भी अच्छा अध्ययन करने का अवसर मिला। परन्तु इससे इनकी विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक कार्य करने की भावनायें संतुष्ट न हो सकीं। अपना काम मनोयोग से करते हुए मौलिक कार्य करने के लिए उचित अवसर की तलाश करने लगे। अधिक दिनों तक इसकी प्रतीक्षा में न रहना पड़ा। आचार्य रामन् इनके अध्ययनकाल ही में इनकी प्रतिभा से प्रभावित हो चुके थे और वे स्वयं भी ऐसे अवसर की तलाश में थे कि अपने योग्य शिष्य को उसके अनुकूल कार्य सौंप सकें।

डा० अमृतलाल सरकार की मृत्यु के उपरान्त प्रो० रामन् साइंस एसोसिएशन के अवैतनिक मंत्री नियुक्त किये गये। इससे उन्हें एसोसिएशन में स्वयं अनुसन्धान कार्य करने तथा अपने शिष्यों से अनुसन्धान कार्य कराने के लिए और अधिक सुविधायें प्राप्त हो गईं। अपनी प्रथम विदेश यात्रा से भारत वापस आने पर उन्होंने एसोसिएशन में इस कार्य को विशेष रूप से आयोजन किया। कई शिष्यों को छात्रवृत्तियाँ देकर अपनी देख रेख में दत्तचित्त होकर अनुसन्धान कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

अनुसन्धान कार्य का श्रीगणेश

आचार्य रामन् की इस योजना का कृष्णन् ने भी पूरा पूरा लाभ उठाया और नवम्बर १९२३ ई० में मद्रास क्रिश्चियन कालेज की नौकरी छोड़कर अपने आचार्य की देख रेख में एसोसिएशन में अन्वेषण कार्य आरम्भ किया। पाँच वर्ष तक यह बराबर एसोसिएशन में काम करते रहे। कुछ वर्ष तो रिसर्च स्कालर के पद पर काम किया और बाद में एसोसिएशन के प्रथम रिसर्च एसोसिएट बना दिये गये।

इस बीच में आचार्य रामन् ने जो महत्वपूर्ण अन्वेषण किये प्रायः उन सभी में कृष्णन् ने सहकारी का काम किया और उनके साथ प्रकाश के परिक्षेपण तथा तत्सम्बन्धी अन्य घटनाओं के बारे में कई मौलिक खोज निबन्ध प्रकाशित किये। सर रामन् के साथ उनके विश्वविख्यात आविष्कार 'रामन् प्रभाव' सम्बन्धी अन्वेषण कार्य में भी आपको उनके सहकारी रहने का गौरव प्राप्त हुआ।

रामन् महोदय के साथ काम करने से उनके साथ ही आपकी भी ख्याति फैलने लगी और देशी एवं विदेशी वैज्ञानिकों में आपके कार्यों की भी चर्चा की जाने लगी। आचार्य रामन् के साथ संयुक्त कार्य करने के साथ ही आप बराबर अपने स्वतंत्र मौलिक कार्य भी करते रहे। इन स्वतन्त्र अनुसन्धानों के बारे में आपके दस बारह खोज निबन्ध फिलासफिकल मेगजीन, इंडियन जर्नल आफ फिज़िक्स, साइंस एसोसिएशन के बुलेटिन और नेचर प्रभृति वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आपके इस काल के कार्यों में रामन् प्रभाव सम्बन्धी अन्वेषण विशेष उल्लेखनीय हैं। रामन् प्रभाव के अतिरिक्त आपने रसायन और भौतिक विज्ञान की स्फटिक एवं चुम्बक शाखाओं * पर भी महत्वपूर्ण कार्य किये। आगे चलकर इन्हीं कार्यों के लिए आपको विज्ञान संसार में विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

ढाका में प्रोफेसर

एसोसिएशन में पूरे पाँच वर्ष तक अनुसन्धान कार्य करने के बाद दिसम्बर १९२८ ई० में आप ढाका विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के रीडर नियुक्त किये गये। ढाका में आपको अपना अन्वेषण कार्य पूर्ववत् जारी रखने के लिए और अधिक सुविधायें प्राप्त हुईं। वहाँ आप गणित और भौतिक विज्ञान के सुप्रसिद्ध आचार्य सत्येन्द्रनाथ बसु के निकट सम्पर्क में आये। उनसे आपने बहुत कुछ सीखा तथा मौलिक कार्य करने के लिए और अधिक प्रोत्साहन प्राप्त किया। सत्येन्द्र बाबू

---

* Magnetic & crystal Physics & chmistry

के साथ आपने जितने दिन बिताये उनकी, ढाका विश्वविद्यालय से चले आने के बाद भी, आप बड़े गर्व से चर्चा करते हैं। ढाका में आपने स्वयं अनुसन्धान करने के साथ ही कई तरुण उत्साही छात्रों को एकत्रित करके अनुसन्धान कार्य के लिए अनुप्राणित किया और स्वयं तथा अपने विद्यार्थियो के साथ 'स्फटिकों के चुम्बकीय गुण', सम्बन्धी प्रसिद्ध अन्वेषण किये। इन अन्वेषणों के विवरण बाद में रायल सोसाइटी के फिलासफिकल ट्रांजेक्शन्स में एक विशेष लेखमाला के रूप में प्रकाशित हुए।

फिर एसोसिएशन में

१६३३ में आचार्य रामन् के कलकत्ते विश्वविद्यालय से इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस बंगलोर के डाइरेक्टर नियुक्त होकर जाने के बाद कलकत्ते के साइंस एसोसिएशन में अन्वेषण कार्य की देखरेख करने के लिए आपको ढाका से फिर कलकत्ता बुला लिया गया। एसोसिएशन में इस कार्य के लिए 'अन्वेषण आचार्य' की विशेष गद्दी का आयोजन किया गया और इस पद पर आपकी नियुक्ति की गई। एसोसिएशन में होने वाले अन्वेषण कार्य का नेतृत्व डा० कृष्णन् के हाथ में पहुंचने पर ढाका के इनके पुराने शिष्य इनके पास कलकत्ता आगये और फिर से अपने आचार्य के पास अनुसन्धान कार्य करने लगे। भारत के दूसरे प्रान्तों से भी अनेक जिज्ञासु नवयुवक आपके पास आकर विज्ञान साधना में लग गये। इन सबको संगठित करके प्रो० कृष्णन् ने एसोसियेशन को भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषण कार्य करने वाली

एक अत्यन्त कर्मण्य और प्रतिष्ठित संस्था का रूप दिया है। कृष्णन् के पहिले इस संस्था को जो प्रतिष्ठा और सम्मान इनके गुरू आचार्य रामन् के सहयोग से प्राप्त हुआ था उसे इन्होंने अक्षुण्ण बनाये रखने में सफलता प्राप्त की है।

एसोसिएशन में दुबारा आने के बाद से प्रो० कृष्णन् के नेतृत्व में चुम्बक, प्रकाश विज्ञान, एक्स किरण, स्फटिक भौतिक और रसायन सम्बन्धी विशेष उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं। इन अन्वेषणों की चर्चा भारत ही नहीं वरन् विदेशों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों में भी आदर से की जाती है। इनसे प्रो० कृष्णन् की प्रतिष्ठा और सम्मान में भी यथेष्ट वृद्धि हुई है।

विदेशों में सम्मान

१६३६ ई० में प्रो० कृष्णन् को वारसा (पोलैंड) में होने वाली वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय कानफरेंस * में आमंत्रित किया गया। वहां आपने सुरभित परमाणुओं की चमक † के बारे में अपना एक उत्कृष्ट अन्वेषण निबन्ध पढ़ा तथा वहां होने वाले वैज्ञानिक वाद-विवाद में प्रमुख भाग लिया १६३७ में आपने यूरोप की यात्रा की और केम्ब्रिज की कवेंडिश विज्ञानशाला लन्दन की रायल इंस्टिट्यूट और लीज की भौतिक विज्ञानशाला ‡ में अपने अन्वेषणों के बारे में भाषण

---

* International Conference on Photoluiniscence.

† Fluorescence of aromatic molecules.

‡ Physical Institute in Leige.

दिये। लीज विश्वविद्यालय की ओर से आपको एक विशेष पदक भी प्रदान किया गया। आपने इस अवसर पर यूरोप की और भी प्रमुख विज्ञानशालाओं एवं अन्वेषण केन्द्रों की यात्रा की।

राष्ट्र संघ द्वारा सम्मानित

१९३९ ई० में आपको राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) की ओर से आयोजित इन्टरनेशनल इंस्टिट्यूट फार इंटेलैक्चुअल कापरेशन (अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग समिति) की कार्यवाही में भाग लेने को यूरोप बुलाया गया। इससे पहिले आचार्य जगदीशचन्द्र बसु राष्ट्र संघ की इस समिति के कई वर्ष तक सदस्य रह चुके थे। इस समिति की ओर से स्ट्रासबर्ग में चुम्बक विज्ञान पर एक विशेष कानफरेंस का आयोजन किया गया था। इस कानफरेंस में भाग लेने के अतिरिक्त आपने इस बार फिर इंगलैंड तथा यूरोप के कई प्रमुख विश्वविद्यालयों में भाषण दिये।

रायल सोसायटी के फैलो

इन यात्राओं से प्रो० कृष्णन् को पाश्चात्य संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने के अच्छे सुयोग प्राप्त हुए आपके यश और कीर्ति में भी विशेष वृद्धि हुई और आपकी गणना संसार के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में की जाने लगी। लन्दन की रायल सोसाइटी के अधिकारी भी आपके कार्यों से विशेष रूप से प्रभावित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय चुम्बक कानफरेंस में सम्मिलित होकर स्वदेश वापस आने के कुछ ही मास बाद मार्च १९४० ई० में रायल सोसायटी ने डा० कृष्णन् को अपना

अथ रूपशुद्धौ गुणाप्ती ८ । ६ । एते पञ्चगुणे स्वहारतष्टे च जाते १० । ११ । एवं सर्व्वत्र ।

अथ ग्रहगणिते उपयोगस्तदर्थं किंचिदुच्यते ।

कल्पाऽथ शुद्धिर्विकलाऽवशेषं
षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः ॥७३॥
तज्जं फलं स्युर्विकला गुणस्तु
लिप्ताग्रमस्माच्च कला लवाग्रम् ।
एवं तदूर्द्ध्वं च तथाधिमासा-
वमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वोः ॥७४॥

अथ कुट्टकस्य ग्रहगणिते महानुपयोगस्तदर्थं किंचिदुपजात्युत्तरार्द्धाऽन्योपजातिभ्यामाह कल्पेति । विकलावशेष दर्शनादेव ग्रहाहर्गणयो रानयने विकलावशेषं शुद्धिः ऋण क्षेपः, षष्टिः भाज्यः (षष्टिरित्युपलक्षणं तेन राश्याद्यानयने त्रिंशद्द्वादि भाज्यः) कुदिनानि च हारः कल्प्यः । तज्जं तेभ्यो भाज्य-हार-क्षेपेभ्यः कुट्टकविधिना जातं फलं लब्धिः विकलाः स्युः, गुणस्तु लिप्ताग्रं कलाशेषम् स्यात् । अस्मात् लिप्ताग्रात् कुट्टकविधिना लब्धिः कलाः, गुणः लवाग्रम् । एवं अनेन प्रकारेण तदूर्द्ध्वं च कार्यं क्रमेणांश-राशि-भगणाऽहर्गणाः स्युः । तथा अधिमासाऽवमाग्रकाभ्यां

सोसायटी के समक्ष मानी जाती है और केवल कुछ खास वैज्ञानिक ही निश्चित संख्या में इसके फैलो मनोनीत किये जाते हैं।

उत्कृष्ट मौलिक कार्य

डा० कृष्णन् ने अपने गुरू आचार्य रामन् के श्रेष्ठतम् शिष्य होने के अनुकूल ही विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी कार्य कुशलता तथा प्रखर प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। आपके अन्वेषण से भौतिक विज्ञान के चुम्बक, प्रकाश, एक्सकिरण तथा स्फटिक भौतिक के अतिरिक्त रसायन विज्ञान के प्रकाश रसायन, चुम्बकीय रसायन तथा स्फटिक रसायन प्रभृति अंग भी बिशेष रूप से लाभान्वित हुए हैं। यह ठीक है कि विज्ञान साधना आरम्भ करते हुए आपको जो प्रसिद्ध मिली उसका बहुत कुछ श्रेय आचार्य रामन् के साथ संयुक्त कार्य को प्राप्त है, परन्तु बाद में आपने जो स्वतंत्र मौलिक अन्वेषण किये उनकी महत्ता और प्रतिष्ठा भी किसी प्रकार से कम नहीं है। विदेशों में आपको जो सम्मान प्राप्त हुआ है वह आपके निजी मौलिक कार्यों ही के बल पर। रायल सोसाइटी ने भी आपकी मौलिक गवेषणाओं के उपलक्ष्य ही में आपको अपना फैलो मनोनीत किया है।

आप अपने गुरू, अपने सहकारियों और शिष्यों के साथ तथा स्वयं अब तक करीब करीब १०० मौलिक अन्वेषण निबन्ध प्रकाशित करा चुके हैं। ये निबन्ध भारत, इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। रवों के चुम्बकीय गुणों के बारे में तो आपके अनुसन्धान बहुत ही उत्कृष्ट सिद्ध हुए हैं।

यह कार्यक्षेत्र आपने तथा अपने शिष्यों तथा दूसरे कार्यकर्त्ताओं के लिए स्वयं तैयार किया है। आपके इन अन्वेषणों की विश्वविख्यात वैज्ञानिकों ने भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इन अन्वेषणों का पूरा विवरण 'भौतिक विज्ञान की प्रगति की रिपोर्ट, के पाँचवें खण्ड * में प्रकाशित हुआ है।

प्रो० कृष्णन् ने अत्यन्त न्यून तापक्रमों पर तापगति सिद्धान्त † के बारे में भी उल्लेखनीय कार्य किये हैं। ये तापक्रम निरपेक्ष शून्य या केल्विन शून्य ‡ के निकटवर्ती हैं। आपको इस विषय में विशेष अभिरुचि है और आपकी हार्दिक अभिलाषा है कि यदि समुचित आर्थिक सहायता का प्रबन्ध हो सके तो एक ऐसी प्रयोगशाला बनाई जाय जिसमें इतने न्यून तापक्रम पर [साधारण बरफ के तापक्रम से २७३ डिगरी नीचे] विभिन्न पदार्थों के गुणों का अध्ययन किया जा सके।

परन्तु यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि ऊँचे से ऊँचा सम्मान मिलने पर भी वैज्ञानिकों को आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा नहीं मिलता। ब्रिटिश साम्राज्य में मिलने वाली विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ उपाधि पा लेने के बाद भी प्रो० कृष्णन् की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। आप अब भी अपनी योग्यता तथा प्रतिभा की तुलना

---

* Report on the Progress of Physics, vol V.

† Thermodynamics of very low temperatures.

‡ Absolute Zero.

में, साधारण से वेतन पर कलकत्ते के साइंस एसोसियेशन में पूर्ववत बड़ी निष्ठा के साथ अन्वेषण कार्य में संलग्न हैं। परन्तु डा० कृष्णन् एक महान् वैज्ञानिक ही की भाँति आर्थिक कठिनाइयों की चिन्ता किये बिना, अनवरत रूप से अपनी विज्ञान साधना में लगे हुए दिन रात मानव ज्ञान भण्डार की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

आचार और व्यवहार में कृष्णन् पूर्णतया भारतीय हैं। ऊपरी दिखावे से आपको नफरत है। बड़ी सादगी के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अनेक बार विदेशों की यात्रायें कर लेने के बाद भी आपके सादे रहन सहन में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। अपनी विदेश यात्राओं के अवसर पर भी आप बराबर भारतीय ढंग की पोशाक में रहते हैं आत्मविज्ञापन से आप बहुत दूर हैं। प्रसिद्धि की दौड़ में में अपने समकालीन अनेक वैज्ञानिकों से आगे बढ़े हुए होने पर भी अपनी प्रसिद्धि की आपको तनिक भी चिन्ता नहीं है। आप जिस खूबी के साथ एसोसियेशन में अनुसन्धान कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं और जिस लग्न के साथ विज्ञान साधना में लगे हुए हैं वह आपके उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अपने मौलिक कार्यों से मानव ज्ञान भण्डार की पूर्ति में प्रमुख भाग लेते हुए भारत की कीर्ति और प्रतिष्ठा को और अधिक व्यापक बनाने में सफल होंगे।

———

डा० होमी जहांगीर भाभा एफ० आर० एस०
[जन्म १९०९ ई०]

उदीयमान वैज्ञानिक

डा० होमी जहाँगीर भाभा एफ० आर० एस०

[जन्म १९०९ ई०]

विविध गुणों से सम्पन्न होना, बहुधा महापुरुषों की प्रतिभा का एक लक्षण समझा जाता है। परन्तु इस तरह अनेक गुणों से युक्त होते हुए भी, सभी अपने इन गुणों को पूर्णतया विकसित करने अथवा उन्हें स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सफल नहीं होते हैं। कुछ तो इन गुणों के बहुविधि नैपुण्य ही से अभिभूत हो जाते हैं। वे विज्ञान, शास्त्र या कला अथवा संगीत के साथ क्रीड़ा करते हैं और अपना बहुमूल्य समय जो एकाग्रतापूर्वक किसी विषय विशेष का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने में लगाना चाहिए था, वृथा गवाँ देते हैं। कुछ परिस्थितियों के अनुकूल न होने से आगे नहीं बढ़ पाते और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए अनिवार्य, समुचित चरित्रबल के अभाव में उन्नति पथ पर अग्रसर होने में असमर्थ हो जाते हैं। अस्तु, इटली के लिओनार्डो डा० विंसी की सी सर्वतोमुखी प्रतिभा को व्यक्त करने वाले विरले ही महापुरुष देखने में आते हैं। लिओनार्डो डा० विंसी एक साथ ही उत्कृष्ट कलाकार, शिल्पी मूर्तिकार, आविष्कारक और कवि था।

आधुनिक युग के प्रतिभाशाली पुरुषों में डा० होमी भाभा की तुलना, उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के लिए, इसी महान इटालियन लिओनार्डो

डा० विंसी से की जा सकती है। इकत्तीस वर्ष की आयु में ही आपको टिश विज्ञान संसार का सर्वोत्कृष्ट सम्मान एफ० आर० एस० प्रदान करने के लिए मनोनीत किया गया। भारत में प्रसिद्ध गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन् के बाद आप प्रथम भारतीय हैं जिन्हें इतनी कम आयु में यह महान् प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। *

डा० भाभा को केवल विज्ञान ही का उत्कृष्ट सम्मान नहीं प्राप्त हुआ है। डा० भाभा श्रेष्ठकलाकार भी हैं। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध पारखी और आलोचक मि० राजर फ्राई ने आपके चित्रों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और आपको परामर्श दिया था कि आप चित्रकला की साधना ही में अपना जीवन लगा दें। विज्ञान और चित्रकला के साथ ही साथ आप संगीत में भी बड़े निपुण हैं। पाश्चात्य रागरागनियों पर आपको अच्छा अधिकार है और 'बीथोवेन' के सुप्रसिद्ध स्वर संवादों † में आपको विशेष रुचि है। आपका विचार है कि यदि आपने संगीत का विशेष ज्ञान प्राप्त करने में अपना समय लगाया होता तो सम्भवत: संगीत रचना द्वारा आपकी वास्तविक अभिव्यक्तियों के प्रकट होने का अच्छा अवसर मिला होता।

डा० होमी भाभा का जन्म ३० अक्टूबर १९०९ ई० को बम्बई में एक सुप्रसिद्ध शिष्ट और संस्कृत पारसी परिवार में हुआ था। आपके

---

* रामानुजन् को जिस समय रायल सोसाइटी का फैलो बनाया गया था, उनकी आयु केवल तीस वर्ष ही थी।

† Beethoven Symphony.

पितामह डा० हुरमुस जी जहाँगीर भाभा (सीनियर) एम० ए०, डी० लिट्, जे० पी०, सी० आई० ई०, कई वर्ष तक मैसूर राज्य के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर रह चुके थे और अपनी उदार शिक्षानीति के लिए विशेष प्रसिद्ध थे। आपके पिता श्री जे० एच० भाभा बम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टरों में थे। बाद में वे टाटा की हाइड्रो एलेक्ट्रिक पावर सप्लाई कम्पनी में उच्च पद पर नियुक्त हो गये और अभी तक प्रतिष्ठा के साथ वहीं काम कर रहे हैं। आपकी बुआ का विवाह टाटा के समस्त व्यापार और व्यवसायों के स्वामी सर दारोब जी टाटा के साथ हुआ है।

अस्तु, बाल्यकाल ही से होमी भाभा बड़े आदमियों के सम्पर्क में रहे। सर दोराब टाटा के यहाँ आपको अपने परिवार के अतिरिक्त और दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलने और उनकी बातें—बड़े व्यवसायों, कारखानों तथा अन्य उपयोगी आयोजनों के सम्बन्ध की—सुनने के सुयोग प्राप्त हुए। आपकी बुआ लेडी टाटा को, जो महिला संस्थाओं के सफल संचालन और महिला आन्दोलन के सुयोग्य नेतृत्व के लिए भारत भर में प्रख्यात हैं, बाल्यकाल ही से आपके प्रति विशेष अनुराग था। उन्होंने बालक भाभा की शिक्षा दीक्षा में भी खास दिलचस्पी ली। बड़े होने पर जब भाभा बम्बई के सुप्रसिद्ध कैथेड्रल हाई स्कूल में पढ़ने जाने लगे तो स्कूल के निकट ही नित्यप्रति अपनी बुआ के घर दोपहर का खाना खाते। इस तरह से बचपन ही से आप पर आपके माता पिता के अतिरिक्त आपकी बुआ और फूफा सर दारोब टाटा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। भाभा हैं भी, बचपन ही से, बड़े कुशाग्र

बुद्धि। १५ वर्ष की आयु में इन्होंने कैथेड्रल हाई स्कूल से सीनियर केम्ब्रिज की परीक्षा सम्मानपूर्वक पास कर ली थी।

भाभा की माता भी बहुत सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार की हैं। भाभा के नाना श्री० एफ० डी० पांडे पुराने रीति रिवाज को मानने वाले पारसी थे। उनके सम्पर्क में रहने से भाभा पारसी सम्प्रदाय की अति प्राचीन परम्पराओं से भी भली भाँति परिचित हो गये और पारसी समाज की व्यापार कुशलता तथा लोकहितैषिता के अनुकरणीय गुणों को भी हृदयंगम करने में समर्थ हुए। अपनी माता के साथ भाभा बम्बई के सुप्रसिद्ध पेटिट परिवार के भी निकट सम्पर्क में आये। इन चारों परिवारों के स्वास्थ्यप्रद वायुमण्डल ने भाभा के मानसिक विकास में बड़ी सहायता पहुंचाई।

शिक्षा समाप्त करने के बाद अपने ही परिवार के किसी काम में लग जाना भाभा के लिए बहुत आसान बात थी। विद्यार्थी जीवन में और उसके बाद भी उन्हें कभी आर्थिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। किसी भी प्रकार का परिश्रम किये बिना वे अपनी श्रेणी के दूसरे नवयुवकों की भाँति आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। उनके लिए एक सफल व्यापारी बनना तथा अपने पूर्वजों ही की भाँति लोकहितैषी कार्य करके एक प्रतिष्ठित एवं पूर्णतया सफल नागरिक बन सकना बहुत साधारण सी बात होती। परन्तु अपनी परिस्थितियों से प्रतिकूल भाभा का विकास सर्वथा भिन्न दिशा में हुआ। भाभा इस नवीन, मौलिक और विलक्षण कार्यक्षेत्र में कैसे प्रवृत्त हो सके? यह एक आश्चर्यजनक बात मालूम होती है! प्रश्न है भी

वास्तव में गम्भीर, परन्तु इसका उत्तर बाल्यकाल में उनको माता-पिता से मिलने वाली शिक्षा में निहित है। भाभा के माता-पिता ने इनके व्यक्तित्व को पूरी तौर पर विकसित होने देने का दृढ़ संकल्प कर लिया था और उन्होंने इस उद्देश्य से इन्हें बचपन ही से प्रत्येक सुविधा देने की उचित व्यवस्था भी की थी।

भाभा के पिता ने आक्सफोर्ड के न्यू कालेज में शिक्षा पाई थी। उन्हें प्राच्य संस्कृति के साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का भी अच्छा ज्ञान था और उन्होंने दोनों ही के श्रेष्ठतम गुणों को अपनाया था। उन्होंने निश्चय किया कि उनके लड़के की शिक्षा का सूत्रपात, जन्मभूमि भारतवर्ष में हो और उसके चरित्र का निर्माण हो जाने के बाद उसकी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध यूरोप के प्रमुख विश्वविद्यालयों में किया जावे। इतना ही नहीं, भाभा के माता-पिता दोनों ही इस बात में दृढ़ विश्वास रखते थे कि बच्चों पर घरेलू आचार व्यवहार और रहन सहन का बहुत प्रभाव पड़ता है। अस्तु माता ने होमी का लालन पालन बड़ी मृदुता, सौम्यता और वात्सल्यतापूर्वक किया। होमी के व्यक्तित्व के विकास में इससे बड़ी मदद मिली।

कैथेड्रेल हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद होमी एलफिन्स्टन कालेज में भर्ती हुए और वहाँ से १६२६ ई० में एफ. वाई. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। अगले वर्ष इन्होंने रायल इंस्टिट्यूट आफ साइंस में अध्ययन करके बम्बई विश्वविद्यालय की आई. एस-सी. परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में सम्मानपूर्वक पास की। रायल इंस्टिट्यूट में अब भी आपका नाम वहाँ के सम्मानीय छात्रों की सूची में अंकित है।

१७ वर्ष की आयु में ही भाभा अपनी प्रतिभा और शिक्षा सम्बन्धी असाधारण सफलताओं के लिए बम्बई और उसके विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाली प्राय: सभी शिक्षा संस्थाओं में यथेष्ट प्रसिद्ध हो गये थे। स्कूल और कालेज तथा रायल इंस्टिट्यूट आफ साइंस के तो सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली छात्रों में थे ही। भाभा की यह असाधारण सफलता केवल शिक्षाक्रम ही तक सीमित न थी।

भाभा बाल्यकाल ही से वरन् किसी हद तक अपनी शैशव अवस्था से संगीत से प्रेम करने लगे थे। ननिहाल में अपनी मामी के सम्पर्क में रहने से इनका संगीत प्रेम और भी अधिक बढ़ गया था। मामी को गाना सुनने का बड़ा शौक था और वे ढूंढ ढूंढ कर बढ़िया से बढ़िया रेकार्ड लाकर अपने ग्रामोफोन में बजाया करती थीं। इस तरह से भाभा को संसार के श्रेष्ठतम संगीत का ज्ञान स्वाभाविक रूप से अपने आप होगया। बचपन ही में भाभा ने बीथोवन के सुप्रसिद्ध स्वरसंवादों को अनेक अनेक बार सुना। संगीतशालाओं के श्रेष्ठतम गाने तथा संसार के महान् कलाकारों के गायन और वाद्य सुनने के भी सुयोग प्राप्त हुए। ध्यानपूर्वक गाने सुनने के साथ ही इन्हें आप ही आप श्रेष्ठ संगीत को परखने की भी धीरे धीरे अच्छी शिक्षा मिलती रही। और आज तो शिक्षाक्रम में संगीत के महत्व और उपयोगिता को शिक्षाविद भी स्वीकार करने लगे हैं। इस संगीतमय वायुमण्डल ने भाभा की सुसुप्त कोमल भावनाओं को जाग्रत सा कर दिया। बाल्यकाल का यह संगीत प्रेम बराबर बढ़ता ही गया। आज दिन भी यह पूर्ववत् विद्यमान है और उनके आनन्द और आह्लाद का प्रमुख

साधन है तथा वैज्ञानिक भाभा के जीवन में माधुर्य की सृष्टि करता रहता है।

संगीत के साथ ही भाभा में चित्रकला का व्यसन भी बचपन ही से उत्पन्न हुआ। इसमें भी उनके घर के वायुमण्डल का बहुत कुछ हाथ है। घर के पुस्तकालय के चित्र संग्रह को देख कर इन्हें स्वयं भी चित्र तैयार करने का शौक पैदा हुआ। बचपन में इन्होंने गौशाला में क्रीड़ा करते हुए गाय और बछड़े का एक चित्र बनाया। इसी चित्र को देखकर इनके माता पिता को इनकी इस रुचि का पता लगा। वे इस चित्र को देखकर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने शीघ्र ही चित्रकला की शिक्षा दिलाने का भी उचित प्रबन्ध कर दिया। प्रति शनिवार और रविवार को भाभा बम्बई के सुप्रसिद्ध चित्रकार लाल काका के पास चित्रकला सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे जाने लगे। लाल काका ने इन्हें चित्रकला के मूल सिद्धान्तों से भली भाँति परिचित करा दिया। अब तो विज्ञान के साथ ही चित्रकला और संगीत आपके जीवन के दो प्रमुख अंग बन गये हैं और कभी कभी तो इन दोनों ही के सम्मुख आपका विज्ञान प्रेम भी पीछे रह जाता हुआ प्रतीत होता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है भाभा प्रतिभाशाली और कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी थे। १५ वर्ष की आयु में इन्होंने आयन्स्टीन के सुप्रसिद्ध सापेक्षवाद सिद्धान्त का अध्ययन कर लिया था और संगीत के स्वरसंवाद के विषय में एक श्रेष्ठ निबंध भी लिखा था। इनकी उन दिनों की दिनचर्या को ध्यान में रखते हुए यह बड़ा आश्चर्य

जनक मालूम होता है कि तरुण भाभा उतने सब काम किस तरह से इतनी खूबी से करते रहे होंगे। भाभा में छुटपन से बड़े बड़े काम करने की उत्कट अभिलाषा थी। यह किसी भी दिन अपना रत्ती भर समय वृथा नष्ट नहीं करते थे। इनका मस्तिष्क अपने आस पास घटित होने वाली घटनाओं और बातों के प्रति पूर्णतया जागरूक रहता था। जिन विषयों अथवा व्यक्तियों के प्रति इन्हें विशेष अनुराग होता था उनकी बातें होने पर तो प्रसन्नता के मारे इनके नेत्र चमक उठते थे। उन दिनों इनके माता पिता इनकी कितनी देखरेख रखते थे इस विषय का भाभा ने स्वयं अच्छा वर्णन किया है। पाठकों की जानकारी के लिए उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"मेरे माता पिता ने मेरी स्वाभाविक और आन्तरिक प्रवृत्तियों को विकसित होने देने के लिए यथा सम्भव सभी प्रयत्न किये। मेरे पिता अपनी साप्ताहिक छुट्टियाँ मेरे साथ खिलौने खेलने में बिताते थे। ये खिलौने केवल साधारण खेल की चीजें न होते थे। इन्हें खेलने और इनसे काम लेने में यथेष्ट हस्तलाघव, चातुर्य और प्रयत्न की आवश्यकता होती थी। कुछ अधिक बड़े होने पर हम लोग मैकेनो (यांत्रिक खिलौना विशेष) से खेला करते थे और मुझे अच्छी तरह याद है कि जब कोई प्रतिमा (माडेल) बनकर तैयार हो जाती थी, उसे छिन्न-भिन्न करके उसके प्रत्येक भाग को यथा स्थान रखवाने के लिए मेरे पिता विशेष ध्यान देते थे, मेरे माता-पिता मुझे चित्र खींचने के लिए भी बराबर प्रोत्साहित करते थे और इसके लिए उपयुक्त सामग्री रंग, स्टेंसिल और पेस्टल आदि बराबर मँगाकर देते थे। एक दिन तीसरे पहर इसी सामग्री

से मैंने अपनी गोशाला को देखकर गाय और बछड़े का चित्र बनाया। यह चित्र काफी अच्छा बना था। मेरे घर वालों ने इस चित्र को देखकर ही मुझे एक अच्छे चित्रकार से ड्राइंग और चित्रकला सिखाने का निश्चय किया। उस चित्रकार ने मुझे चित्रकारी की कला और उसके मूल सिद्धान्तों की अच्छी शिक्षा दी। उसके बाद जब मैं इंगलैंड पहुंचा तो वहाँ महान् चित्रकारों के द्वारा बनाये चित्रों का अध्ययन करके मैंने स्वाध्याय से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की। मैं अपनी छुट्टी के दिनों में घंटों यूरोप की प्रसिद्ध चित्रशालाओं में बिता देता और इन चित्रशालाओं को देखने के लिए बड़े शौक से दूर दूर की यात्रायें करता।"

होमी भाभा के लिए अपने पिता का अनुकरण करके आक्सफोर्ड के न्यू कालेज में अध्ययन करना स्वाभाविक होता। वहाँ इनका अपने पिता के पुत्र के नाते अच्छा स्वागत भी हुआ होता। परन्तु गणित विज्ञान के अध्ययन के लिए केम्ब्रिज अधिक उपयुक्त समझा गया और अपनी इच्छा के प्रतिकूल भाभा को केम्ब्रिज में इंजीनियरिंग का अध्ययन करने और उसकी डिगरी प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त किया गया। एक साल के अध्ययन के बाद ही १६२६ में भाभा ने गणित में ट्राइपास परीक्षा का प्रथम खण्ड पास किया। दूसरे वर्ष १६३० में इंजीनियरिंग ट्राइपास का द्वितीयखण्ड भी प्रथम श्रेणी में पास किया। १६२६ की वार्षिक छुट्टियों में रगबी के ब्रिटिश टामसन हूस्टन वर्क्स में—यह इंजीनियरिंग की व्यवहारिक शिक्षा पाने के उद्देश्य से—अप्रैंटिस का काम करते रहे।

इंजीनियरिंग की इस उच्च परीक्षा को सम्मानपूर्वक पास कर लेने के बाद डा० भाभा को अपनी इच्छानुसार सैद्धान्तिक भौतिक विज्ञान का अध्ययन करने दिया गया। इस विषय में आपको अपने स्कूल जीवन से विशेष अनुरक्ति थी। इंजीनियरिंग की ट्राइपास परीक्षा में आपने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था। आपके परीक्षा पास कर लेने के कई वर्ष बाद तक केम्ब्रिज में इसकी चर्चा होती रही थी। इस परीक्षा में ६ विशेष विषय होते हैं और परीक्षार्थी को इनमें से केवल तीन विषयों की परीक्षा देनी होती है परन्तु भाभा ने छहों विषयों की परीक्षा दी और सभी में उच्च अंक प्राप्त किये।

केम्ब्रिज में भाभा कैयस * कालेज के विद्यार्थी थे। कालेज अधिकारियों ने आपकी इस असाधारण प्रतिभा के लिए आपको दो वर्ष के लिए विशेष छात्रवृत्ति दी और गणित एवं भौतिकविज्ञान का विशेष अध्ययन करने को प्रोत्साहित किया। १६३० और १६३१ में भाभा भौतिक विज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित प्रो० पी० ए० एम० डाइरेक और एन० एफ० माट के पास इन विषयों का अध्ययन करते रहे। आधुनिक सैद्धान्तिक भौतिकविज्ञान का पाठ भाभा ने इन्हीं विज्ञान मनीषियों से पाया।

केम्ब्रिज में विज्ञान के अध्ययन में व्यस्त रहते हुए भी भाभा संगीत का गम्भीर अध्ययन करने के लिए बराबर कुछ न कुछ समय अवश्य निकाल लेते थे और संगीत रचना एवं तौर्यसम्वाद † का

* Caius College † Composition and Counter points

अध्ययन विशेष रूप से करते थे। इसी बीच में इन्हें अपने मित्र प्रो० रूथम की कृपा से विश्वविद्यालय आर्केस्ट्रा (वाद्यस्थान) के परिचालन के भी सुयोग प्राप्त हुए। संगीत रचना में प्रवृत्त होने की उनकी हार्दिक अभिलाषा थी, परन्तु संगीत का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेने से भाभा यह बात अच्छी तरह जानते थे कि संगीत में पारंगत होने के लिए अपना सारा समय संगीत के अभ्यास में लगाना अनिवार्य है। अब भी कुछ मित्रों को आशा है कि समय मिलने पर भाभा अपनी संगीत रचना की अभिलाषा को कार्य रूप में परिणत करने में अवश्य सफल होंगे।

जब भाभा केम्ब्रिज में चौथे वर्ष में अध्ययन कर रहे थे, चित्रकला के सुप्रसिद्ध पारखी और आलोचक राजर फ्राई—जिन्हें इंगलैंड में भाववादी * चित्रों का सूत्रपात करने का श्रेय प्राप्त है, केम्ब्रिज में चित्र-कला के बारे में भाषण देने आये। भाभा ने उन्हें अपने कुछ चित्र दिखलाये। इन चित्रों को देखकर राजर फ्राई बहुत प्रभावित हुए और भाभा को एक पत्र लिखकर आपकी चित्रकला की यथेष्ट प्रशंसा की। आपकी आँख और हाथ को बहुत सच्चा बतलाया और आपको परामर्श दिया कि आप अपनी चित्रकला द्वारा भारत में प्राचीन भित्ति-चित्रों † का पुनरुद्धार करें। वास्तव में राजर फ्राई भाभा के चित्रों से बहुत ही अधिक प्रभावित हुए। बाद में वे जब कभी केम्ब्रिज आते तो भाभा से अवश्य मिलते, उनके चित्रों को देखते तथा उनके बारे में

---

* Impressionists

† Frcoco Pantings

उचित परामर्श देते। मि० फ्राई ने आपको चित्रकला ही को अपने जीवन का प्रमुख कार्य बनाने के लिए भी कई बार जोर दिया।

१९३२ में भाभा को उच्चगणित का अध्ययन करने के लिए ट्रिनिटी कालेज से एक और छात्रवृत्ति* प्राप्त हुई। इस छात्रवृत्ति द्वारा आपको यूरोप की यात्रा करने का बहुत अच्छा सुयोग मिला। एक वर्ष तक (१९३२-३३) ज्यूरिच में प्रो० डब्ल्यू पालि के पास यह गणित का अध्ययन करते रहे। यहीं इन्होंने अपना प्रथम मौलिक अन्वेषण निबन्ध † तैयार किया। अगले वर्ष १९३३-३४ में यह कुछ समय तक रोम में प्रोफेसर ई० फर्मी के पास और बाद में यूट्रेक्ट में प्रो० एच० ए० क्रेमर्स के पास अध्ययन करते रहे। उच्चगणित और भौतिक विज्ञान का अध्ययन करने के साथ ही इस सुयोग का इन्होंने यूरोप के प्रायः सभी देशों की चित्रकला का भी यथावकाश भली भाँति अध्ययन करके पूर्ण सदुपयोग किया।

इस छात्रवृत्ति के समाप्त होते ही भाभा को १९३४ में तीन वर्ष के लिए सर आइज़क न्यूटन छात्रवृत्ति प्रदान की गई। और इसके बाद ही १९३७ ई० में आपको १८५१ ई० की प्रदर्शिनी की उच्चतर छात्रवृत्ति ‡ भी फिर तीन वर्ष के लिए प्रदान की गई। यह सम्मान पाने

---

* Rouse Ball Travelling Studentship in Mathematics

† Zur Absorption der Hohenstrahlung

‡ The senior Studentship for Great Britain of the Exhibition of 1851

वाले आप अभी तक एकमात्र भारतीय हैं। इस बीच में (१९३६–३७) में आपने कोपेनहेगेन स्थित नील्स बोहर की भौतिक विज्ञानशाला में भी पाँच महीने बिताये और भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के बारे में अन्वेषण करते रहे।

१९३५ से १९३९ तक भाभा केम्ब्रिज में विद्युत और चुम्बक विज्ञान के साधारण पाठ पढ़ाने के अतिरिक्त भौतिक विज्ञान के नवीन अंगों पर भी, विशेषकर कास्मिककिरण-प्रसरण न्यूक्लियर फिजिक्स (परमाणु विज्ञान) तथा सापेक्षवाद सम्बन्धी गहन समस्याओं पर उच्च कोटि के भाषण देते रहे। अक्टूबर १९३७ में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर मैक्स बार्न द्वारा आमंत्रित किये जाने पर इन्होंने एडिनबरा में कास्मिक किरण प्रसरण के बारे में कई भाषण दिये। आपके कास्मिक किरण सम्बन्धी कार्यों से प्रभावित होकर १९३९ ई० में रायल सोसाइटी ने अपने मांड फंड से आपको मैंचेस्टर स्थित प्रो० ब्लेकैट की कास्मिक किरण अनुसन्धानशाला में सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्रज्ञ के पद पर काम करने तथा मैंचेस्टर और केम्ब्रिज में अपने स्वतन्त्र मौलिक अन्वेषण जारी रखने के लिए विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की। अक्टूबर १९३९ ई० में ब्रुसेल्स में कास्मिक किरण सम्बन्धी मौलिक कार्य करने वाले वैज्ञानिकों की एक विशेष कानफरेंस (सालवे कानफरेंस) का आयोजन किया गया था। इस कानफरेंस में सम्मिलित होने के लिए डा० भाभा को भी आमंत्रित किया गया था। परन्तु वर्त्तमान महायुद्ध छिड़ जाने के कारण यह कानफरेंस अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई।

केम्ब्रिज में डा० भाभा की कला को व्यक्त होने के लिए एक नवीन साधन नाट्यशालाओं के डिज़ाइन तैयार करने के रूप में मिला। इस बारे में डाक्टर भाभा ही के कुछ शब्द यहां उद्धृत किये जाते हैं—'केम्ब्रिज के अपने अन्तिम कुछ वर्षों में मैंने नाट्यशालाओं के लिए बहुत से डिज़ाइन तैयार किये। स्पेनिश सोसाइटी के लिए कालड्रन के दो नाटकों * की नाट्यशालाओं की सजावट, रचना और विन्यास के बारे में व्यवहारिक योजनायें तैयार की। उसके बाद मैंने हैंडल के एक नाटक का अभिनय करने के लिए उपयुक्त नाट्यशाला की रंग सज्जा तैयार की और १६३६ में मोज़ार्ट के एक नाटक की। इन दोनों ही नाटकों के केम्ब्रिज के सुप्रसिद्ध आर्ट्स थियेटर में अभिनय किये गये।' 'डेली टेलीग्राफ' और 'टाइम्स' के कला आलोचकों ने इन नाटकों के संगीत के साथ ही स्टेज सेटिंग्स की भी बड़ी प्रशंसा की। आम तौर पर ये पत्र स्टेज सेटिंग्स की प्रशंसा करना तो दूर अपनी आलोचनाओं में उनका उल्लेख भी नहीं करते। मोजार्ट के नाटक की स्टेज सेटिंग्स को तो इतना अधिक पसन्द किया गया कि केम्ब्रिज थियेटर कंसर्ट्स के आयोजकों ने इस बार उस नाटक को लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के एक नाट्य डाइरेक्टर की देख रेख में खेलने का निश्चय किया और डा० भाभा से फिर स्टेज सेटिंग्स तैयार करने का अनुरोध किया। यह नाटक भी अक्टूबर १६३६ में खेला जाने वाला था परन्तु युद्ध के कारण इस आयोजन को स्थगित कर देना पड़ा। डा० भाभा से लन्दन में अपने चित्रों की प्रदर्शिनी करने का भी

---

* Life is a dream & The Grand Theatre of the world

बहुत अनुरोध किया गया था परन्तु यह चित्र प्रदर्शिनी भी युद्ध के कारण अनिश्चित समय के लिए स्थगित कर दी गई।

केम्ब्रिज तथा यूरोप के दूसरे देशों में अध्ययन और अन्वेषण करते हुए भाभा वार्षिक छुट्टियों में बराबर भारत आते रहते थे। वर्तमान महायुद्ध शुरू हो जाने के बाद आप फिर इंगलैंड वापस नहीं गये और भारत में बंगलौर की इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस में अन्वेषण कर रहे हैं। विज्ञान, चित्रकला एवं संगीत के संसार के उत्कृष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में बराबर आते रहना भाभा का सौभाग्य रहा है। भाभा ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों के साथ रह कर विज्ञान का अध्ययन और अन्वेषण किया है। इसके साथ ही उनमें स्वयं स्वतन्त्र मौलिक कार्य करने की उल्लेखनीय क्षमता और प्रतिभा है। इधर कुछ वर्षों में 'कास्मिक किरण' अन्वेषण का महत्व बहुत बढ़ गया है। इन किरणों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने तथा इनके बारे में अनुसन्धान करने के लिए वैज्ञानिकों ने उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिण तक सारे संसार की यात्रायें की हैं। कुछ लोग ऊर्ध्वआकाश में वायुमण्डल के अति उच्च स्तरों के अभियान भी कर चुके हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने गहरी से गहरी खानों और झीलों में अपने यंत्र एवं उपकरण भेजकर इन किरणों का हाल जानने के प्रयत्न किये हैं। हम भारतीयों के लिए यह बड़े गर्व की बात है कि इन्हीं कास्मिक किरणों के सम्बन्ध में डा० भाभा के अन्वेषण अत्यन्त उच्च कोटि के सिद्ध हुए हैं।

संसार को विस्मय विमुग्ध करने वाली कास्मिक रश्मियों की विशद विवेचना और व्याख्या करने में अग्रणी डा० होमी भाभा जैसा सुपुत्र

पाना भारतमाता का परम सौभाग्य है। डा० भाभा के नेतृत्व का लाभ उठाकर भारत के अनेक तरुण वैज्ञानिक बंगलोर की इंस्टिट्यूट में इन रहस्यमय रश्मियों के अध्ययन एवं अन्वेषण में संलग्न हैं।

भाभा परिवार की एक मित्र मिस एवलिन गेज के शब्दों में—'इस महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् युद्ध से व्यथित और पीड़ित राष्ट्रों को अपनी शक्तियों को पुनः प्राप्त करके फिर से मानव ज्ञान भण्डार की पूर्ति में संलग्न होने में बहुत काफी समय लग जायगा। अस्तु इस बात की पूरी सम्भावना है कि भारत संसार में वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रमुख केन्द्र हो जाय। उस समय डा० भाभा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक के नेतृत्व में भारत में होने वाले अन्वेषणों और आविष्कारों से भारत के साथ ही समस्त संसार उपकृत होगा। यातायात के अति शीघ्रगामी साधनों के आविष्कार से दुनियाँ दिन प्रति दिन छोटी होती जा रही है और संसार के दूर दूरस्थ देश एक दूसरे के निकट आते जा रहे हैं इससे भारत में होने वाले वैज्ञानिक अनुसन्धानों के संसार भर में प्रचार होने में विशेष सहायता मिलेगी। यह भी आशा की जा सकती है कि भाभा अपनी विज्ञान, कला और संगीत साधना द्वारा मानव भण्डार की पूर्ति के साथ ही अपनी प्रतिभा और असाधारण ज्ञान द्वारा संसार में शान्ति स्थापित करने में सहायक होंगे।'—

(मिस एवलिन गेज)